CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

1 . 2

गीताविज्ञानभाष्य-आचार्य-रहस्यान्तर्गत

[द्वितीयखण्ड]

सत्यकृष्ण रहस्य

पं० मोतीलाल शास्त्री
वेदवीथी पथिक

प्रकाशक :
राजस्थान पत्रिका लिमिटेड,
केसरगढ़, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, जयपुर ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

गीताविज्ञानभाष्य-आचार्य-रहस्यान्तर्गत

[द्वितीयखण्ड]

सत्यकृष्ण रहस्य

पं० मोतीलाल शास्त्री
वेदवीथी पथिक

प्रथम संस्करण]

मूल्य : २५ रुपये

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रकाशक :
राजस्थान पत्रिका प्रा० लिमिटेड,
केसरगढ़, जवाहरलाल नेहरू मार्ग,
जयपुर ।

© सर्वाधिकार लेखकाधीन

मुद्रक :
श्री बालचन्द्र यन्त्रालय,
"मानवाश्रम", दुर्गापुरा रोड
जयपुर–१५

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वेदवाचस्पति पं० मोतीलालजी शास्त्री

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रकाशकीय

गीता के आचार्य-काण्ड के आधार पर स्व० पं० मोतीलाल शास्त्री ने कृष्णतत्त्व विषयक जो नौ पुस्तिकाएँ लिखी हैं, उसी क्रम में सत्यकृष्ण-रहस्य का प्रकाशन करते हुए मुझे अतीव प्रसन्नता है। इससे पूर्व परमेष्ठी-कृष्ण, चाक्षुषकृष्ण, ज्योतिकृष्ण और प्रतिष्ठाकृष्ण-रहस्य पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

सत्यकृष्ण-रहस्य में शास्त्रीजी ने कृष्ण के सत्य-स्वरूप पर विस्तृत चर्चा की है। इस प्रसंग में उन्होंने सत्य को मन, प्राण, वाक् की समष्टि भी कहा है और सृष्ट, प्रविष्ट एवं प्रविविक्त ब्रह्म का स्वरूप भी बताया है। अव्यय की आनन्द-विज्ञान कलाओं से युक्त मन, प्राण, वाक् रूप सत्य के साथ संहिति से सच्चिदानन्द का स्वरूप भी प्रस्तुत किया गया है। अस्ति-भाव ही सत् है। चेतन या विज्ञान भाव ही चित् है और आनन्द सभी का मूल है। यह इतना गूढ़ विषय है कि पाठक एकाग्रभाव से इसे ग्रहण करके ही इसकी अनुभूति कर सकते हैं।

राजस्थान विश्वविद्यालय के सेवा–निवृत्त एसोसिएट प्रोफ़ेसर डॉ० मदनगोपाल शर्मा, जो स्वर्गीय शास्त्रीजी प्रणीत ग्रन्थों के प्रकाशन रूपी ज्ञान-यज्ञ से प्रारम्भ से अद्यतन जुड़े रहे हैं, साधुवाद के पात्र हैं कि उन्होंने, भाषा-सम्पादन एवं शुद्ध पाठ–निर्धारण कर अपनी देख-रेख में इसके प्रकाशन के दायित्व का मनोयोगपूर्वक निर्वाह किया है। स्वर्गीय शास्त्रीजी के सुयोग्य पौत्र श्री प्रद्युम्नकुमार ने सन्दर्भों के उद्धरण देने का दुरूह और अथक श्रम कर इसके तत्पर एवं सुरुचिपूर्ण मुद्रण का स्तुत्य प्रयास किया है।

श्री हीरालाल गहलोत सन्दर्भ एवं प्रूफसंशोधन में सहायक रहे हैं। आशा है, भविष्य में भी हमें उनकी सेवाएँ सुलभ रहेंगी।

यह लघु पुस्तिका यदि सहृदय एवं निष्ठावान् पाठकों का ध्यान आकर्षित कर सकी तो इसके प्रकाशन का परिश्रम सार्थक सिद्ध होगा।

जन्माष्टमी
सं० २०४६ वि०

—कर्पूरचन्द 'कुलिश'

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सत्यकृष्णरहस्य

यस्यप्रतिष्ठोर्वन्तरिक्षं यस्माद्देवा जज्ञिरे भुवनं च सर्वे ।
तत्सत्यमर्चंदुपयज्ञं न आगाद् ब्रह्माऽऽहुतीरूपमोदमानम् ।।
(तैं०ब्रा० ३।१२।३३)

संसार में जो सत्य पदार्थ है उसे ही हम "कृष्ण" कहने के लिए तैयार हैं। सत्य किस पदार्थ का नाम है, यह आगे के प्रकरण से यद्यपि स्फुट हो जाएगा तथापि थोड़ा सा स्वरूप बतला देते हैं।

संसार के प्राणिमात्र में हम एक प्रकार की नियति देखते हैं। पानी सदा नीचे की ओर ही जाता है। अग्नि की गति सदा ऊपर की ओर ही होती है। वायु सदा तिर्य्यक् ही चलता है, इसी को नियति कहते हैं। यही सत्य का स्वरूप है। जो पदार्थ कभी नहीं बदलता उसी का नाम सत्य है। लाखों वर्ष पहले भी जल की गति निम्न ही थी, निम्न ही रहेगी। आग का ऊर्ध्वगमन सृष्टि के प्रारम्भ से वैसा ही था एवं वैसा ही रहेगा। इसी को सत्य कहते हैं। हरिण के सींगों पर दृष्टि डालिए। जितने नाप का इधर का सींग है उतनी ही नाप का उधर का सींग है। जितने अलसेटे (चक्र) इधर के सींग में हैं उतने ही उधर के में हैं। जहां से सींग उगे हैं, वहां से दोनों सींगों का अन्तर एक डोरे से नापते चले जाइए। आपको दोनों सींग समान अन्तर पर मिलेंगे। दक्षिण का सींग मस्तक से दक्षिण की ओर जितना झुका हुआ है, उतना ही उत्तर का; इसमें कभी फर्क हो ही नहीं सकता। एक झाड़ी-बोर को देखिए। उसमें मूल के ऊपर दो काँटे रहते हैं। उन दोनों में से एक काँटा वक्रित रहता है, एक अ-वक्रित रहता है। बस, यही "नियतिः सत्य" के साक्षात् दर्शन हैं। "नियतिः" कहते हैं प्रकृति को, 'नेचर' को। यह

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रकृति-सत्य अर्थात् नियति-सत्य, चेतनामिश्रित है, चिदनुगृहीत है। चिदनुगृहीत नियति-सत्य का ही "कृष्ण" से सम्बन्ध है। चिदनुगृहीत नियति-सत्य को ही हम "कृष्ण" कहने के लिए तैयार हैं। अर्थात् नियति-सत्य से ही जगत् का निर्म्माण होता है, परन्तु वह निर्म्माण चिदनुगृहीत है। सारा काम ऐसा नपा हुआ होता है, क्या मजाल उसमें जरा भी फर्क रह जाए। अर्थात् प्रकृति निर्म्माण करती है परन्तु चेतना को साथ लेकर। सारा निर्म्माण सोच-समझ के साथ होता है। यही चित् का अनुग्रह है। बस, इसी चिदनुगृहीत नियति-सत्य को हम "कृष्ण" कहने के लिए तैयार हैं—

यदिह सत्यं स कृष्ण इति प्रतिपद्यामहे

वह सत्यकृष्ण एक है, अद्वितीय है। वह एक ही तत्त्व—इस जगत्—जिसे आप देख रहे हैं के प्राग्भाव से प्रारम्भ कर वासुदेव पर्य्यन्त क्रम-क्रमशः उतरता हुआ स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य्य, चन्द्र, पृथिवी आदि स्थान-भेद से भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न रूप से विद्यमान है। वही सत्य क्रम-क्रमशः उतरता हुआ वासुदेव श्री कृष्ण में उतरा है। चूंकि वह कृष्णसत्य वासुदेव विश्वक्सेन में उतरा है, अतएव उसे कृष्ण नाम से व्यवहृत करते हैं एवं अवतार बतलाते हैं—

"स एक एवार्थो विश्वप्राग्भावादारभ्य वासुदेवकृष्णपर्य्यन्तं भिन्न-भिन्नरूपेणानुवर्त्तते।"

भगवान् श्री कृष्ण इसी सत्य के कारण महापुरुष कहलाए। सत्य का उतरना ही भगवान् श्रीकृष्ण की महापुरुपता में प्रधान कारण है। क्रम-क्रमशः उतरता हुआ यह सत्य वासुदेव में ही क्यों उतरा? संसार में करोड़ों आदमी थे, उनमें क्यों नहीं उतरा? एकमात्र यह प्रश्न बाकी रह जाता है। बस, भगवान् श्रीकृष्ण के परमपुरुषहेतुभूत सत्यावतार बतलाने के पहले, "सत्य" कहते किसे हैं, यही बतलाते हैं—

"तत्रादौ अस्य भगवतः श्रीकृष्णस्य परमपुरुषहेतुभूतसत्यावतारत्वं दर्शयिष्यता तावत् सत्यस्वरूपं निरूप्यते।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

श्रुति कहती है–"ब्रह्मैवेदंसर्वम्" । ब्रह्म ही सब कुछ है, यही श्रुति का तात्पर्य्य है । ब्रह्म ही को सत्य कहते हैं । इसी ब्रह्म सत्य से सारा विश्व उत्पन्न हुआ है । यह सारा प्रपञ्च उसी एक ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है । एक से ही नाना भाव उत्पन्न हुआ है । ब्रह्म, सत्य का प्राग्-भाव है । विश्व ही सत्य का उत्तर भाव है । सृष्टि और संहार—ये दो ही भाव रहते हैं । इन्हीं दोनों को वैदिक परिभाषा में सञ्चर-प्रतिसञ्चर कहते हैं । सत्य ब्रह्म ही सृष्टि स्वरूप में परिणत होता है । ब्रह्म ही सञ्चर क्रम से जगत् बना हुआ है । इसी सञ्चर क्रम को, इसी सृष्टि को बतलाती हुई श्रुति कहती है—"ब्रह्मैवेदंसर्वम्" । यह श्रुति, ब्रह्म ही से सारा जगत् बना हुआ है, वह एक ही ब्रह्म नाना भाव में, विश्व भाव में परिणत हो रहा है, यह बतलाती है । इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।

(क० उ० २।८)

एक ही अग्नि जैसे संसार निर्म्माण प्रक्रिया में प्रविष्ट होकर काष्ठ, कोयला, इत्यादि नाना भावों में, नाना रूपों में परिणत हो जाता है, वैसे ही एक ही आत्मा एक ही ब्रह्म, अखिल भूतों का अन्तरात्मा सञ्चर-क्रिया में परिणत होकर, नाना भावों में परिणत हो गया है । एक ही, सञ्चर क्रम में नाना बना हुआ है । इसी का स्पष्टीकरण करते हुए महर्षि कण्व कहते हैं—

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्य्यो विश्वमनुप्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभति एकं वा इदं विबभूव सर्वम् ।।

(ऋ. वे. ८।५८।२)

यहाँ भी अग्नि प्रज्वलित हो रहा है, कलकत्ते में भी अग्नि प्रज्वलित हो रहा है, बम्बई में भी हो रहा है । इस प्रकार से सर्वत्र भिन्न-भिन्न अग्नि प्रज्वलित हो रहा है । क्या यह अग्नि नाना है ? कहने को नाना है, वास्तव में एक ही अग्नि नाना स्थानों में, भिन्न-भिन्न स्वरूपों में परिणत हो रहा है । एक ही सूर्य्य सारे विश्व में अभिव्याप्त हो रहा है । १०० घड़े भिन्न-भिन्न स्थानों में रख दीजिए । १०० वों पर सूर्य्य का प्रतिबिम्ब पड़ेगा । प्रत्येक में

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पृथक्-पृथक् सूर्य्य दिखलाई पड़ेगा। परन्तु क्या वास्तव में सूर्य्य १०० हो गए ? हर्गिज नहीं। एक ही सूर्य्य नाना भावों में परिणत हो रहा है। पृथिवी के ऊपर ४८ कोस तक एक भूवायु-स्तर है, जिसे कि वेद में "एमूषावराह" कहते हैं, ज्योतिष में आवह[1] कहते हैं एवं पाश्चात्य जगत् "एटमास-फियर" कहता है, व्याप्त रहता है। प्रातःकाल जब सूर्य्य क्षितिज से बीस कोस नीचे रहता है, अर्थात् पृथिवी—पिण्ड के केन्द्र से ठीक सीधा रहता है, उस समय उसकी किरणें ऊपर की ओर चलती हैं। वायु, पानी की तरह तरल पदार्थ है। वे ऊपर जाती हुई सूर्य्य रश्मियाँ भूवायु पर जा कर वलयष्टिवत् पसर जाती हैं, वक्रित हो जाती हैं बस, उस प्रतिफलित सूर्य्य रश्मि का जो प्रकाश पृथिवी-पृष्ठ पर बैठे हुए हमारे पास आता है, उसी प्रकाश को "गायत्री" कहते हैं। इस गायत्री के पांच मुँह बतलाये जाते हैं, जैसा कि गायत्री के ध्यान में स्पष्ट है·—

"मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्र्यक्षणैः"

सूर्य्योदय से १-१॥ घण्टे पहले आप छत पर चले जाइए। वहां जाकर आसमान पर दृष्टि डालिए। उस समय आकाश का वर्ण आपको एकदम मोतियारंग का दिखलाई पड़ेगा। थोड़ी देर बाद वैदूर्य्यमणि सदृश लाली लिए हुए मालूम पड़ेगा। तदनन्तर एक साथ सारा आकाश एकदम सुवर्ण के रंग में बदल जाएगा। यहां तक तारों की स्थिति रहती है। तदनन्तर तारे अस्त हो जाते हैं एवं आकाश एकदम नीला हो जाता है। थोड़ी देर बाद आकाश सफेद हो जाता है। बस, भगवती गायत्री के ये ही पांच मुख हैं। बस, जितनी देर गायत्री रहती है. उतनी ही देर उषा रहती है। उषा का समय निम्न-लिखित श्लोक से स्पष्ट हो जाता है—

"पञ्चपञ्च उषः कालः। पञ्चपञ्चाशद्घटिकोत्तरमारभ्य सूर्यार्धोदयपर्यन्तः कालः। (वाचस्पत्यम्)

सूर्य्य ज्यों—ज्यों पूर्व से पश्चिम की ओर आता रहता है, त्यों—त्यों उषा आगे—आगे बढ़ती जाती है। यह उषा, सूर्य्य के प्रतिफलित प्रकाश से

१—भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्वः स्यादुद्वहस्तदनु संवहसंज्ञकश्च।

—सिद्धांतशिरोमणि (वाचस्पत्यम्)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उत्पन्न होती है, । अतएव यह सूर्य्य की लड़की भी कहलाती है । सूर्य्य द्युलोक के अधिष्ठाता हैं, अतएव इसे द्युलोक की लड़की भी कहते हैं । जैसा कि श्रुति कहती है—

एषा दिवोदुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनोति ।।
(ऋक्—१।१२४।३)

सूर्य्य प्रजापति अपनी लड़की उषा की तरफ प्रतिदिन पीछे–पीछे चलते रहते हैं, इसी विज्ञान को कथा-रूप में परिणत कर, सरल तरीके से समझाने के लिए **"प्रजापतिर्वाचां दुहितरमभ्यधावत् दिवं वा उषसं वा"**—कहा जाता है । ब्रह्माजी अपनी लड़की के पीछे दौड़े, इस कथा का यही प्राकृतिक रहस्य है । सूर्य्य से सारे पदार्थ उत्पन्न होते हैं, अतएव वह प्रजापति है, ब्रह्मा है । यह उषा के, अपनी किरणों से ही उत्पन्न लड़की के, पीछे-पीछे दौड़ा करते हैं । उषा सूर्य्य के आगे रहती है, सूर्य्य उषा के पीछे–पीछे अनुक्रमण करता रहता है । बस, वैदिक आख्यान ऐसे-ऐसे गहन वैज्ञानिक तत्त्वों से भरे हुए समझने चाहिए । बतलाना इस सारे प्रपञ्च से हमें यही है कि उषा वास्तव में एक है, वह एक ही प्रतिबिन्दु पर नाना भावों में नाना स्वरूपों को धारण करती रहती है । बस, उसी प्रकार वह एक ही सत्यब्रह्म सब कुछ बना हुआ है, इसीलिए **"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"** कहा जाता है । एक ही ब्रह्म नाना बन गया—यही **"ब्रह्मै वेदंसर्वम्"** का तात्पर्य्य है । इस श्रुति से संचरपक्ष सिद्ध होता है । श्रुति ब्रह्म की तरफ दृष्टि दिलवा कर कहती है कि वह एक ब्रह्म ही, यह सारा जगत् बना हुआ है । इस प्रकार एक ही ब्रह्म का सर्वत्व विधान करने वाला जो संचरपक्ष है, सृष्टिक्रम है, एक का नानाभाव में परिणत होना है, उसे ही **"ब्रह्मै वेदंसर्वम्"** यह श्रुति बतलाती है । एक ब्रह्म से ही सारा जगत् बना हुआ है, इस प्रकार एक ब्रह्म की ओर से हमें नाना-भाव–स्वरूप जगत् की ओर यह श्रुति ले जा रही है । बस, इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"ब्रह्मै वेदंसर्वम्—इति ब्रह्मणः सर्वत्वविधानं सञ्चरःपक्षः" ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हमने बतलाया था कि सारा प्रपञ्च सञ्चर और प्रतिसञ्चर—इन दो भावों में वँटा हुआ है। संचर कहते है सृष्टि को, प्रतिसञ्चर कहते हैं प्रलय को, संहार को। सृष्टि-स्वरूप—प्रतिपादिका श्रुति बतला दी गई। अब जो श्रुति संहारस्वरूप बतलाती है, प्रतिसञ्चर विद्या सिखलाती है, वह श्रुति बतलाते हैं। श्रुति कहती है—"सर्वंखल्विदं ब्रह्म" आँख खोलने पर घट—पट—मकान—सूर्य्य—चन्द्र—नक्षत्र—आकाश—नदी—सरोवर—तड़ाग—वन-उपवन—वृक्ष—पत्र—वृन्त—शाखा—वायु—अग्नि इत्यादि जो अनन्तानन्त पदार्थ दिखलाई पड़ते हैं, वे सारे के सारे वास्तव में ब्रह्म ही हैं। अर्थात् जितने तुम नानाभाव (अनेकतायें) देखते हो, वास्तव में एक ब्रह्म ही है। प्रतिसञ्चर क्रम में सारा नानात्त्व एक बन जाता है। दस हजार मिट्टी के बने हुये नाना पात्र रखे हैं। कोई घड़ा कहलाता है, कोई ठीकरी. कहलाती है कोई मांगा कहलाता है, कोई झाल कहलाती है। आप इन सब को फोड़ दीजिए। सब मिट्टी ही है। एक ही चीज है। सबको फोड़ते ही नानाभाव हट जाता है। मिट्टी नामक एक ही वस्तु रह जाती है। मिट्टी अनेक बलों की गांठों से बनी हुई है। पानी पर जब बलग्रन्थि-बन्धन होता है, तो वह पानी ही मिट्टी बन जाता है। पानी में एक अग्निस्वरूप रुद्र वायु घुसता है। उसी वायु के घुस जाने से पानी में बुद्बुद उठ जाता है परन्तु पानी का बुद्बुद चूंकि गोल होता है, अतएव उसके ऊपर का स्तर इधर-उधर लुढ़क जाता है तो वह अन्तः प्रविष्ट वायु फक् से बाहर निकल जाता है। परन्तु यदि वायु का आक्रमण बार—बार होता रहता है, तो वह पानी और हवा दोनों मिल कर तीसरी अवस्था में परिणत हो जाते हैं, जोकि 'फेन' (झाग) कहलाने लगते हैं। और भी आक्रमण से वही झाग उषा (खार) बन जाता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर दबाव से, एक से एक के ग्रन्थि-बन्धन से वही पानी आप, फेन, उषा, सिकता, शर्करा, अपः, अश्मा, अयः (लौह) और हिरण्य अर्थात् सोना—इन आठ स्वरूपों में परिणत हो जाता है। यही पृथिवी की जिसे कि अग्निसम्बन्धेन गायत्री भी कहते हैं, आठ व्याहृतियां (नाम) हैं। इसीलिये "अष्टाक्षरा वै गायत्री" कहा जाता है। कहने का तात्पर्य्य यही है कि गांठ—पर—गाँठ, लगने से वह पानी ही मिट्टी बना हुआ है। आप प्रतिसञ्चर क्रिया से उन गांठों को

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

खोल दीजिये, मिट्टी पानी बन जाएगी। एवमेव जल की गांठों को खोल दीजिए, जल अग्नि बन जायगा। अग्नि की गांठों को खोल दीजिये, अग्नि वायु बन जायगा। वायु की गांठों को खोल दीजिए, वायु आकाश अर्थात् वाक् बन जायगा। उसकी भी गाँठें तोड़ दीजिए, वह प्राणस्वरूप में परिणत हो जायगा। उसकी भी गांठें तोड़ दीजिए, वह मन बन जायगा, जो मन कि श्वोवसीयस नाम से प्रसिद्ध है। इसी मन को अव्ययमन भी कहते हैं। यही मन, अर्थात् यही आत्मा, यही ब्रह्म, सञ्चर क्रम में उत्तरोत्तरग्रन्थि–बन्धन के कारण मिट्टी बन जाता है। ग्रन्थि–मोचन से वही मिट्टी-ब्रह्म अपनी असली हालत में आ जाता है। पानी से मिट्टी बनी है, इसीलिए हम कह सकते हैं–सब पानी ही पानी है–"**सर्वमापोमयंजगत्**"। अग्नि से पानी बना है, इसलिए हम कह सकते हैं–"**अग्निर्वा इदं सर्वम्**"। वायु से ही अग्नि बना है, इसीलिए हम कह सकते हैं–सब वायु ही वायु है। वाक् अर्थात् आकाश से ही यह सारा भूत-प्रपञ्च बना है, अतएव हम कह सकते हैं—"**अथोवागेवेदंसर्वम्**"।

मन–प्राण स्वरूप आत्मा से ही वाक् अर्थात् आकाश उत्पन्न हुआ है, अतएव हम कह सकते हैं—"**आत्मैवेदंसर्वम्**", "**ब्रह्मैवेदंसर्वम्**"। इसी सञ्चर-क्रम को, सृष्टि-क्रम को बतलाती हुई श्रुति कहती है—

"तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।" इति।

बस, यही सञ्चरक्रम है। एवमेव यह सारा प्रपञ्च, यदि गाँठें तोड़ते जाओगे तो ब्रह्म ही में जाकर मिल जायगा। इस संहार क्रम को, प्रतिसञ्चर-क्रम को बतलाती हुई श्रुति कहती है–"**सर्वंखल्विदं ब्रह्म**"। इदं पर दृष्टि है। जगत् की तरफ इशारा है। यहां से, अर्थात् सारे जगत्–प्रपञ्च से ब्रह्म की ओर ले जाना, यही "**सर्वंखल्विदं ब्रह्म**" का तात्पर्य्य है। जगत् से ब्रह्म की ओर ले जाना, यह संहारक्रम है एवं ब्रह्म से जगत् की ओर ले आना, यह संचरक्रम है। सृष्टि को सञ्चर कहते हैं, संहार को प्रतिसञ्चर कहते हैं। जैसे '**ब्रह्मैवेदंसर्वम्**' यह श्रुति ब्रह्म से जगत् की ओर, नाना भाव की ओर लाती हुई सृष्टि–क्रम–सञ्चरविद्या बतलाती है; एवमेव "**सर्वंखल्विदंब्रह्म**" यह श्रुति जगत् की ओर से, नानाभाव की ओर से उस ब्रह्म की ओर,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

एकत्व की ओर ले जाती हुई संहारक्रम अर्थात् प्रतिसञ्चर विद्या बतलाती है। बस इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"सर्वंखल्विदंब्रह्म—इति सर्वस्य ब्रह्मत्वविधानं प्रतिसञ्चरः पक्षः"। सञ्चर और प्रतिसञ्चर के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं—कारण से कार्य्योत्पत्ति का जो क्रम है, उसे ही सञ्चर अर्थात् सृष्टि कहते हैं एवं सारे कार्य्यों का अपने कारण में विलीन होने का जो क्रम है, उसे ही प्रतिसञ्चर कहते हैं। मिट्टी से घड़े बनने का, सूत से वस्त्र बनने का, सुवर्ण से कटक-कुण्डल आदि बनने का जो क्रम है, वही सञ्चरक्रम कहलाता है। एवं घड़े के मिट्टी में परिणत होने के क्रम को, वस्त्र के वापस सूत्र बनाने के क्रम को, कटक-कुण्डलादि के वापस सुवर्ण बनाने के क्रम को प्रतिसञ्चर कहते हैं। मिट्टी से घड़ा बनना सृष्टि है, घड़े का फूटकर अपने कारण मिट्टी में मिल जाना प्रलय है। ब्रह्म से जगत् का बनना यह सृष्टि है, यही सञ्चर कहलाता है एवं सारे जगत् का अपने कारण ब्रह्म में लीन हो जाना, प्रलय, संहार किंवा प्रतिसञ्चर कहलाता है। सृष्टिक्रम में एक ही नाना (अनेक) बन जाता है, प्रलयक्रम में, परम अव्ययेश्वर में जा कर सारे जीवाव्यय एक हो जाते हैं। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु।
कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥

अपि च—

"यथानद्यः स्यन्दमाना समुद्रेऽस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥
(मु० उ० ३।२।७-८)

कहना हमें यही है कि कारण से कार्य्योत्पत्ति होना यह सञ्चर कहलाता है एवं कार्य्य का कारण में लीन होना ही प्रतिसञ्चर कहलाता है—

"कारणात् कार्य्योत्पत्ति क्रमः सञ्चरः।
कार्य्याणां कारणस्वरूपसंपत्तिः प्रतिसञ्चरः ॥"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अथवा इस सञ्चर और प्रतिसञ्चर का विचार हम ज्ञान और विज्ञाना-पेक्षया भी कर सकते हैं। "ब्रह्मैवेदंसर्वम्"—इस प्रकार ब्रह्म ही का सर्वत्व-विधान करने वाली जो श्रुति है, वह विज्ञाम पक्ष की द्योतक है एवं "सर्वंखल्विदंब्रह्म"—इस प्रकार सारे जगत् को एक ब्रह्म पर ले जाने वाली श्रुति ज्ञान पक्ष का प्रतिपादन कर रही है। एक से अनेक की तरफ आना विज्ञान है, अर्थात् एकत्वप्रतियौगिक और अनेकत्वानुयौगिक "विज्ञान" है। अनेकों की जो "एकत्व" प्रतिपत्ति है, वही ज्ञान है। अर्थात् अनेकत्वप्रतियौगिक और एकत्वानु-यौगिक ज्ञान है। कारण से कार्य्य की ओर झुकना—यही विज्ञान पक्ष है, सञ्चर पक्ष है, सृष्टिक्रम है एवं कार्य्यों का कारण की ओर झुकना—यही ज्ञान है, प्रति सञ्चर है, संहार है। एक वृक्ष आपके सामने खड़ा है। उस एक में हजारों टहनियां हैं। प्रत्येक टहनी में हजारों शाखाएं हैं, प्रतिशाखा में सैकड़ों पत्ते हैं, प्रति पत्ते में कई सफेद धाराएं हैं, इस प्रकार एक वृक्ष का जो नाना भाव से विचार करना है, वही विज्ञान है। एवं वृक्ष एक है, पत्ते-टहनी वगैरः सब मिला कर एक है, यही ज्ञान है। आपको गन्धक की डली दी जाती है। आप इसका विशकलन करके बतलाइए कि इसमें कितने पदार्थ हैं। बतलाइए, पृथिवी में कितनी चीजें हैं, बतलाइए कि हमारे शरीर में कितने स्नायुतन्तु हैं, कितनी शिराएं हैं, कितनी धमनियां है—बस, यही विज्ञान है। एक से अनेक की तरफ जाना विज्ञान है, अनेक से एक की ओर आना ज्ञान है। कारण से कार्य्य की ओर झुकना विज्ञान है, कार्य्यों से कारण की ओर उन्मुख होना ज्ञान है। बस, इस ज्ञान और विज्ञान के अर्थात् कारण और कार्य्य के अलावा और कुछ बचता ही क्या है? कारण ब्रह्म है, कार्य्य विश्व है। ब्रह्म और विश्व के अतिरिक्त और है ही क्या? ब्रह्म से अर्थात् कारण से आप कार्य्य की तरफ आ जाइए, कि कैसे ब्रह्म कार्य्य रूप में परिणत हुआ है, इस विद्या को, इस सञ्चरक्रम को पहचान जाइए एवं विश्व से अर्थात् कार्य्य से ब्रह्म तक चले जाइए। विश्व कैसे ब्रह्मरूप में परिणत हो जाता है—इस प्रतिसञ्चर विद्या को पहचान जाइए, फिर बाकी बचा ही क्या है? ज्ञान और विज्ञान के अलावा और जानने की वस्तु है ही क्या? इसी अभिप्राय से भगवान् कहते हैं—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ इति। (गी० ७।२)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बस इसी अभिप्राय से कहते हैं—

अपिवा विज्ञानं प्रथमः पक्षः। ज्ञानं द्वितीयः पक्षः। एकस्यानेकत्वोपपादनं विज्ञानम्। अनेकेषामेकत्व प्रतिपत्ति र्ज्ञानम्। करणात्कार्य्यानुगति र्विज्ञानम्। कार्य्याणां कारणानुगतिर्ज्ञानम्।

जिस कारण से कार्य्य उत्पन्न होते हैं, वह कारण एक है एवं कारण से उत्पन्न होने वाले कार्य्य अनेक हैं। वृक्ष को उत्पन्न करने वाला बीज एक है एवं उससे उत्पन्न होने वाले पत्ते, शाखा, जड, टहनी, वल्कल इत्यादि कार्य्य अनेक हैं। कारण–स्वरूप मृत्तिका एक है एवं उसी से पैदा होने वाले कार्य्य घटादि अनन्त हैं। पिता एक है, उससे उत्पन्न होने वाले कार्य्य अर्थात् पुत्रादि अनेक हैं। कारणस्वरूप पानी एक है, उससे उत्पन्न होने वाले झाग, खार, सिकता, शर्करा, अश्मा, अयः, हिरण्यादि कार्य्य अनेक हैं। सुवर्ण एक है, उससे उत्पन्न होने वाले कटक-कुण्डलादि अनेक हैं। जो वस्तु एक होती है, जिसका भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालों में अबाध रहता है, वही वस्तु सत्य है, वही नित्य है। वह सिवाय कारण के और क्या हो सकती है? मिट्टी से अनेक घड़े बनते हैं। परन्तु घड़ा अभी है, थोड़ी ही देर में न रहेगा, पहले भी नहीं था। परन्तु मिट्टी, घड़ा नहीं बना था तब भी थी, घड़ा बन गया तब भी है, घड़ा फूट जाएगा तब भी रहेगी। मिट्टी का तीनों कालों में अबाध है। घड़ा अभी है, अभी नही है। भला, वह कैसे सच्चा हो सकता हैं? सत्य जो वस्तु है, उसका अभाव कभी थोड़े ही हो सकता है? यदि घड़ा अभी है और दो घण्टे बाद नहीं है, तो वह सत्य कैसे हो सकता है? सत्य तो वही है जो सदा एक रस रहता हो, जिसका कभी अभाव न हो, जो 'नास्ति' से अलग हो। सदा 'अस्ति' सम्पत्ति से युक्त हो, वही सत्य है। इसीलिए वेद भगवान् कहते हैं—

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। (छा०उ०६।१।४)

तात्पर्य्य कहने का यही हैं कि कारण एक है, कार्य्य अनेक हैं। एवं कारण सत्य है, । वही सत्य सञ्चरक्रम से विश्वरूप में परिणत हो

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जाता है। वह सत्य कृष्णस्वरूप है.एवं विश्व शुक्लस्वरूप है। कृष्ण तीन प्रकार का होता हैं—१. अनुपाख्य, २. अनिरुक्त एवं ३ निरुक्त। सृष्टि के प्राग्भाव में जो कृष्ण रहता है, जो कि सृष्टि के बाहर की वस्तु है, वही अनुपाख्य कृष्ण है, वही सत्य कहलाता है। सृष्टि के प्राग्भाव कृष्ण को ही "अनुपाख्यकृष्ण" कहते हैं, यही प्रकृत में अभिप्रेत है। इस सृष्टि के मूलकारणस्वरूप अनुपाख्य सत्यकृष्ण के लिए भगवान् मनु कहते हैं—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।।

(मनु० १।५)

बस, वही कृष्ण, वही अनुपाख्य सत्य तत्त्व इस शुक्लरूप में, इस विश्वरूप में परिणत हो गया है। जो सर्वथा अनुपाख्य था, अवर्णनीय है, या तर्क से परे है; वही विश्वरूप में परिणत हो गया है। उसी कृष्ण से यह विश्व उत्पन्न हुआ है। विश्व नहीं था, तब भी यह कृष्ण था एवं विश्व की वर्त्तमान अवस्था में भी यह कृष्ण इसके अन्दर छुपा हुआ है, अन्तःप्रविष्ट है, सर्वभूतों का अन्तरात्मा है, हृत्प्रदेश में स्थित है एवं जब सारा जगत् प्रतिसञ्चर क्रिया से इसमें लीन हो जाएगा, तब भी यह रहेगा। भूत-भविष्यत्-वर्तमान-तीनों में इसका अबाध है, अतएव हम इस कृष्ण को "सत्य" कहने के लिए तैय्यार हैं। आँख खोलने के साथ ही सारा विश्व चमक पड़ता है। सारा विश्व शुक्लज्योति से युक्त है। इसी के अन्तःप्रविष्ट इस विश्व का संचालन करता हुआ, वह काला अनुपाख्य कृष्ण बैठा हुआ है। इस योगमाया ने, अर्थात् विश्व ने, कार्य्य प्रपञ्च ने, उसे ढँक रखा है, अतएव वह सब को नज़र नहीं आता। इसीलिए भगवान् कहते हैं—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायामुपाश्रितः। (गीता० ७।२५)

देवताओं में वर्ण–वर्ण के अधिष्ठाता देवता का नाम पूषा है। संसार भर में काला, नीला, पीला, हरित जितने भी रंग हैं, उनका अधिष्ठाता पूषा प्राण है जिसका कि विशद विवेचन "चाक्षुष-कृष्ण-रहस्य" में किया जाएगा। यही पूषा प्राण वर्णों का अधिष्ठाता है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ।।
(ऋग्वेद, अष्टक ४।८।२४)

विश्व में अन्तःप्रविष्ट उस सत्यकृष्ण के, जिसके लिए कि भगवान् "नाहं प्रकाशः सर्वस्य" कहते हैं, इसी पूषा प्राण को पहचान लेने पर दर्शन हो जाते हैं। जैसा कि वेद भगवान् कहते हैं—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्म्माय दृष्टये ।। (ईशो० १५)

हमें प्रकृत में केवल इतना ही कहना है कि कारण एक है, कार्य्य अनेक हैं। इनमें जो कारण है, वही सत्य है, क्योंकि वह सदा रहता है। जो वस्तु सदा रहती है, उसे ही "सत्य" कहते हैं। उसी सत्य से, जिसे कि हम अनुपाख्य कृष्ण कहेंगे, यह कार्य्यस्वरूप जगत् उत्पन्न होता है—

एकं हि कारणम् । अनेकानि कार्य्याणि । तदिदं कारणं सत्यम् । कार्य्याणि विश्वम् ।

सामान्य मनुष्य, लौकिक मनुष्य, सारे प्रपञ्च को सत्य और विश्व–दो भागों में विभक्त समझते हैं। उनकी दृष्टि से सत्य अलग है एवं विश्व अलग है। सत्य चेतन है, विश्व जड़ है। इस प्रकार वे द्वैत सम्पत्ति की ही उपासना करते हैं। इस पर, उनके द्वैत भाव को नष्ट करने के लिए शास्त्र उपदेश देता कि तुमने जो सत्य और विश्व–ये दो भाव मान रखे हैं, द्वैत भाव को सच्चा समझ रखा है, यह तुम्हारी भूल है। वास्तव में दोनों दो नहीं हैं, एक वस्तु है, दोनों एक भाव्य है। उसी के प्राग्भाव को सत्य कहते हैं, एवं उत्तर भाव को विश्व कहते हैं। तुम जो कारण और कार्य्य समझते हो, यह बात गलत है। वास्तव में कार्य्य और कारण दो चीजे नहीं हैं। कार्य्य-कारणभाव अनेक प्रकार के हुआ करते हैं। एक कार्य्य-कारणभाव तो भिन्नसत्ताक कहलाता है, जैसे पिता पुत्र का। पिता ही पुत्र का उपादान कारण है, उसको उत्पन्न करने वाला है। परन्तु पिता से पुत्र उत्पन्न हो जाता है तो उस पुत्र की सत्ता

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पिता से एकान्ततः पृथक् हो जाती है। अब चाहे कारण का, पिता का, नाश हो जाए, अर्थात् पिता मर जाए, परन्तु इससे पुत्र का कुछ नहीं बिगड़ता। बस, यही भिन्न सत्ता का कार्य्य कारण भाव कहलाता है। दूसरे, कार्य्य-कारण भाव का नाम है अभिन्नसत्ताक कार्य्य-कारणभाव, जैसे घड़ा और मिट्टी, वस्त्र और सूत, कटक और सुवर्ण। मिट्टी घट का कारण है परन्तु घट की सत्ता मिट्टी की सत्ता से पृथक् नहीं है। आप मिट्टी को नष्ट कर दीजिए, घट स्वयं नष्ट हो जाएगा। पिता के मरने से जैसे पुत्र का कुछ नहीं बिगड़ता सो बात मिट्टी-घट में नहीं है। जहां मिट्टी नष्ट हुई कि घड़ा पहले नष्ट हुआ। मिट्टी की सत्ता ही घट की सत्ता है। घट की सत्ता पुत्रवत् पृथक् नहीं है। बस, शास्त्र लौकिक मनुष्यों को उपदेश देता है कि तुम ब्रह्म और जगत् का कार्य्य-कारणभाव पिता–पुत्रवत् "भिन्नसत्ताक" मत समझो अपितु मृद्घटवत् अभिन्नसत्ताक ही कार्य्यकारण भाव समझो। यह विश्व उस कारण ब्रह्म का विवर्त्त मात्र है। विवर्त्त कहते हैं झूठे कार्य्य-कारण भाव को। मिट्टी कारण है, घट कार्य्य है। इस प्रकार मिट्टी–घट में कार्य्य-कारणभाव अवश्य है, परन्तु विवर्त्त मात्र है। वास्तव में घट मिट्टी ही है। एवमेव ब्रह्म और विश्व का कार्य्य-कारणभाव अवश्य है परन्तु अभिन्नसत्ताक है। ब्रह्म ही जगत् बना हुआ है। मिट्टी ही घट बना हुआ है। जो उस ब्रह्म का प्राग्भाव है उसी को तो 'सत्य" कहते हैं एवं उत्तर भाव को "विश्व" कहते हैं। अवस्था-भेद मात्र से एक ही ब्रह्म सत्य और विश्व दो भावों में परिणत हो जाता है। एक लड़के पर दृष्टि डालिए। अभी वह दस वर्ष का है। थोड़े दिनों में वह जवान हो जाता है। फिर कुछ दिनों के बाद बिना मूँछों वाला वही लड़का वृद्ध हो जाता है एवं पलितकेश हो जाता है। उसके बाल-युवा-वृद्ध तीनों स्वरूप सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं। तथापि उसके लिए "स एवायं"—यह वही है—यह व्यवहार किया जाता है। हम कहते हैं कि ऐसा क्यों? जो हाड़-मांस बालक के शरीर में थे वे युवा शरीर में नहीं हैं, जो युवा शरीर में थे वे वृद्ध में नहीं हैं, ऐसी हालत में "स एवायं देवदत्तः" —यह व्यवहार क्यों? बस, इसी प्रकार विश्व उसकी अवस्था विशेष मात्र है, वास्तव में वह एक ही है। जो विश्व है, वह भी वही है। भेद–प्रतिपत्ति मिथ्या है। "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"—यही शास्त्र का अन्तिम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उपदेश है। एक ही मनुष्य पिता भी है, पुत्र भी है, श्वसुर भी है, भानजा भी है, काका भी है, बाबा भी है। सब कुछ वह एक ही है। अपने पुत्र का तो वह पिता है एवं पिता का पुत्र है। लड़की के पति का श्वसुर है तो मामा का भानजा है। वही अपने भतीजे का काका है एवं अपने पोते का बाबा है। सब कुछ वह एक ही मनुष्य है। एवमेव विश्व भी वही ब्रह्म अथवा सत्य है, सत्य भी वही है। कहने को घड़ा मिट्टी से पृथक् है, वास्तव में मिट्टी और घड़ा दोनों एक ही चीज है। कहने को विश्व और सत्य दो वस्तु हैं परन्तु वस्तुतस्तु सत्य और विश्व दोनों एक ब्रह्म भाव हैं; यही अन्तिम सिद्धान्त है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"यदन्विह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥"
(क०उ० २।१।१०)

इसी अभिप्राय से कहते हैं—"सत्यं च विश्वंचेत्येवं द्वैभाव्यं प्रतिपद्यन्ते लोकाः। तत्रेदमुपदिशति शास्त्रं। एकभाव्ये सत्येव सत्यमिति प्राग्भावः विश्वमित्युत्तरभाव इत्येव द्वैभाव्यं कल्प्यते। वस्तुतस्तु सत्यं च विश्वं चेत्युभयं खल्वयमेको ब्रह्मभाव इति सिद्धान्तः।"

पूर्व प्रकरण से सिद्ध हो जाता है कि वह सत्य ब्रह्म ही जगत् का मूल कारण है। उसी से सारा विश्व बनता है। तो बस, इस सृष्टि क्रम में (सञ्चर क्रम में) जिस प्रकार सत्य ब्रह्म जगत् स्वरूप में परिणत हो जाता है, पहले यही बतलाते हैं—

"तत्र यथेदं सत्यंरूपं विश्वरूपाय कल्पते तदुपव्याख्यास्यामः।"

इस सत्य ब्रह्म के अमृत और मृत्यु—ये दो स्वरूप हैं। इस ब्रह्म प्रजापति का आधा भाग अमृत है और आधा मर्त्य है। इसीलिए—

"अर्द्धम् प्रजापतेरात्मनोमर्त्यमासीदर्द्धममृतम्"—कहा जाता है। जो आधा मर्त्य भाग है, उसे ही कर्म्म कहते हैं एवं अमृतभाग को ब्रह्म कहते हैं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ब्रह्म-कर्म्म समष्टि का नाम ही प्रजापति है। शंकराचार्य कहते हैं कि वह ईश्वर, (ब्रह्म) ही निरस्त-समस्त-प्रपञ्च-स्वरूप है, हम कहते हैं कि वह ब्रह्म संगृहीत-समस्त-प्रपञ्च-स्वरूप है। जिस कर्म्म को, जिस मृत्यु को शंकराचार्य्य माया कह कर पुकारते हैं एवं जिसे मिथ्या बतलाते हैं, उसी कर्म्म को हम सर्वथा सत्य मानते हैं। जैसे अमृत एक नित्य पदार्थ है, वैसे ही हमारी दृष्टि में मृत्यु भी नित्य ही है। मृत्यु, बिना अमृत के कभी रहती ही नहीं। भला अमृत की एक बूंद जब मनुष्य को अजर-अमर बना देती है तो फिर जो मृत्यु रात-दिन उस ब्रह्मामृत में ही रहती है, वह कैसे मर सकती है! यदि हम जरा ध्यान से संसार के पदार्थों पर दृष्टि डालते हैं, तो वे हमें प्रतिक्षण बदलते दिखलाई पड़ते हैं। यद्यपि प्रतिक्षण होने वाला यह परिवर्त्तन मंद बुद्धियों की समझ में नहीं आ सकता, उनकी दृष्टि में संसार के पदार्थ स्थिर ही प्रतिभासित होते हैं, तथापि जो-जो वैज्ञानिक मनुष्य हैं, पदार्थ तत्त्वज्ञ हैं, वे सहज ही प्रति-क्षण होने वाले इस वैलक्षण्य का अनुभव कर लेते हैं। सामान्य बुद्धि वाले मनुष्यों के भी यह परिवर्तन समझ में अवश्य आ जाता है, परन्तु थोड़े समय के अनन्तर। वे देखते हैं कि दूध में जो कि अनुष्णशीत है, दही का आतञ्चन (जांवण) देने पर दूसरे दिन वह दही के रूप में परिणत हो जाता है। तब वह कहने लगते हैं कि देखो, जो कल दूध था, वही आज दही स्वरूप में परिणत हो गया है। इस विषय में पूछना यहां रह जाता है कि दूध, दही रूप में परिणत हो गया, दूध से दही एक विलक्षण पदार्थ तो बन गया परन्तु आप यह बतलाइए कि दूध, दही बना किस क्षण में? जिस समय आपने उसे दही स्वरूप में परिणत देखा, क्या उसी समय अथवा उसके कुछ और पहले ही वह दूध, दही बना है! हर्गिज नहीं। यह उत्तर आपका कभी समीचीन नहीं माना जा सकता। क्योंकि यदि किसी नियत क्षण में ही दूध, दही बनता है, तो फिर वह क्षण दूसरे दिन क्यों आया? दही के डालते ही उसके दूसरे क्षण में ही सारा दूध, क्यों न दही बन गया? क्या इस असामञ्जस्य का उत्तर है? आपको बाध्य होकर यही कहना पड़ेगा कि नहीं, इस विलक्षण भावोत्पत्ति का कोई नियत क्षण नहीं है, अपितु जिस समय दूध में दही डाला जाता है, उसी समय से उसमें परिवर्तन क्रिया होने लगती है। होते-होते जब वह विलक्षणता किसी खास स्वरूप पर पहुँच जाती है, तो उसे

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ही हम दही कहने लगते हैं। विश्वास करें, जो दही आपने जिस क्षण में जिस स्वरूप का देखा था, उसके उत्तरक्षण में ही वह पूर्व से विलक्षण हो जाता है। इसी विलक्षणता के कारण दूध, दही हो जाता है। यह विलक्षणता की धारा अनवरत चलती ही रहती है। यही परिवर्तन मीठे दही को थोड़े ही समय के बाद खट्टा बना देता है। इसी विलक्षणता के कारण खट्टा दही फफूंद आ कर सड़ने लगता है। सड़ते-सड़ते जब वह पराकाष्ठा में पहुंच जाता है तो रास्ते में फेंक दिया जाता है। वहां पर भी वह परिवर्तन क्रिया चलती ही रहती है। वह रास्ते में पड़ा हुआ दही परिवर्तन के कारण धीरे-धीरे सूखता हुआ मिट्टी बन जाता है। वही मिट्टी वर्षा के कारण वनस्पति के रूप में परिणत हो जाती है। उसी घास को जब गाय खाती है तो वह घास, गाय के पेट में जाकर पुनः दूध बन जाती है। कहने का तात्पर्य यही है कि यह परिवर्तन प्रतिक्षण होता रहता है। दही तो दूर की वस्तु है। आप अपने शरीर पर ही दृष्टि डालिए। आप बालकपन में बिल्कुल छोटे से थे। आज इतने बड़े हो गए। बतलाइए, यह परिवर्तन किसी एक नियत क्षण में हुआ या अनवरत परिवर्तन से, खून, हड्डी, मेदा, मज्जादि ने प्रतिक्षण परिवर्तित हो कर आपके शरीर को बड़ा बना दिया, अथवा किसी एक नियत क्षण में ही आप बच्चे से जवान एवं जवान से बुड्ढे हो गए ? आपको नतमस्तक हो कर मानना पड़ेगा कि नहीं, किसी नियत क्षण में मेरी अवस्थाओं का परिवर्त्तन नहीं हुआ है, अपितु इसका कारण प्रतिक्षण होने वाला परिवर्त्तन ही है। बस, इन दो उदाहरणों से आपको सिद्धान्त समझ लेना चाहिए कि विश्व के यच्चयावत् पदार्थ प्रतिक्षण परिवर्त्तित होते रहते हैं। आज से १० वर्ष पहले जो हाड, मांस, चर्बी वगैर हमारे शरीर में थे, विश्वास करें इसी परिवर्तन की महिमा से आज वे सर्वथा गायब हैं। महाभारत के समय में जो वृक्ष थे, मनुष्य थे, पशु थे, आज उनमें से इसी परिवर्तन के कारण एक भी नहीं है, सारी सृष्टि नई है। कहां तक कहें, पर्वत-नदी-सरोवर-तालाब-घट-पट-वन-उपवन-हाथी-घोड़ा-सूर्य्य-चन्द्र-नक्षत्र-गाय-बैल-श्वान-औषधि-वनस्पति इत्यादि विश्वान्तर्गत जितने भी पदार्थ हैं, वे सारे के सारे प्रतिक्षण होने वाले इस परिवर्त्तन की डोर से बँधे हुए हैं। इस प्रकार,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जो वस्तु प्रतिक्षण बदल रही है, परिवर्त्तन के कारण जो प्रतिक्षण स्वरूपान्तर में परिणत हो रही है, वह क्या है ? इस प्रश्न का एकमात्र उत्तर है–"बल"। जिसके ये परिवर्तन हो रहे हैं, उसी का नाम "बल" है। यही बल मृत्यु, कर्म्म, अभ्व, माया इत्यादि अनेक नामों से व्यवहृत होता है। इस प्रकार प्रतिक्षण विलक्षण स्वरूप में परिणत होने वाला जो पदार्थसमूह है, उसे हम "बल" शब्द से ही पुकारेंगे। यह "बल" चूं कि अपने स्वरूप से प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है, मरणधर्मा है, अतएव इसे "मृत्यु" कहते हैं।

यद्यपि यह बल प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है, अतएव नहीं के समान है, तदापि इसका "घटोऽस्ति पटोऽस्ति" इत्यादि प्रकारेण सत्ता-रूप से हम प्रत्यक्ष करते हैं, अतएव अभूत्वाभाति (नहीं हो कर भी भासता है) इस व्युत्पत्ति से इस बल को अभ्व भी कहते हैं। चूं कि यह बल क्रिया-स्वरूप है, अतएव इसे कर्म्म भी कहते हैं। अपि च उस व्यापक रस को यही बल, यही मृत्यु, परिच्छिन्न (लिमिटेड, महदूद) बना देता है, अतएव "मीयते अनया" इस व्युत्पत्ति से इसी बल को "माया" भी कहा करते है। अब तक कहने का सारांश यही हुआ कि हम जितने भी पदार्थ देखते हैं, वे प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहते हैं एवं इन सारे पदार्थों को "बल" किंवा "अभ्व" किंवा "कर्म्म" किंवा "माया" शब्देन व्यवहृत किया करते हैं। बस, इसी अभिप्राय से बल का स्वरूप बतलाते हुए श्री गुरु कहते हैं–

"सततं सर्वभावानां विविधं परिवर्त्तनम् ।
दृश्यते तद् विजानीमः सर्वमेतद् बलं बलम् ।।"

इस प्रकार जब सारे पदार्थों को प्रतिक्षण विनश्यत् मान लिया जाता है, एक बड़ा भारी प्रश्न होता है, वह यही है कि जब प्रत्येक पदार्थ क्षणान्तर में नष्ट हो जाता है, जो पदार्थ पहले क्षण में था, दूसरे क्षण में वह सर्वथा विलुप्त हो जाता है, तो फिर हमें "इदमस्ति" यह घड़ा है, यह वस्त्र है, यह मकान है इस प्रकार की प्रतीति क्यों कर एवं कैसे होती है ? जो घड़ा आज से १० दिन पहले हमने देखा था, आपके हिसाब से आपके क्षणिकवाद के अनुसार तो वह दूसरे क्षण में ही नष्ट हो गया। ऐसी हालत में १० रोज

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बाद भी जो आप "स एवायं घटोऽस्ति" (यह वही घड़ा है जो हमने १० दिन पहले देखा था), यह वही मनुष्य है जिसको हमने एक साल पहले कलकत्ते में देखा था" इत्यादि कह रहे हो, वह किस आधार पर ? जब कि एक क्षण के अलावा किसी वस्तु की सत्ता ही नहीं रहती, तो फिर "घटोऽस्ति, पटोऽस्ति", "स एवायं देवदत्तो यो मथुरायां दृष्टः" इत्यादि ज्ञान कैसे हो सकता है ? होना तो नहीं चाहिए, परन्तु होता है। संसार के यावन्मात्र मनुष्य "इदमस्ति" रूपेण व्यवहार किया करते हैं। इस लोकसिद्ध व्यवहार को भी झूठा क्यों कर बतलाया जा सकता है ? सारे के सारे पदार्थ नित्यस्वरूप हैं, यह भी नहीं कह सकते जबकि विज्ञान हमें प्रतिक्षण होने वाले परिवर्त्तन को मनवाने के लिए बाध्य कर रहा है। ऐसी हालत में प्रश्न जोर पकड़ लेता है कि संसार के पदार्थों के प्रतिक्षण विनश्यत् होने पर भी "अस्ति (है) " की जो प्रतीति हो रही है, इसका क्या कारण है ?

बस, इस प्रश्न को हल करने के लिए हमें बाध्य होकर इस बल के अतिरिक्त एक और नित्य तत्त्व मानना पड़ता है जो कि संसार के यावन्मात्र बलों में सत्ता रूपेण "अस्ति (है)"— रूपेण अनुस्यूत हो रहा है। बाध्य होकर मानना पड़ता है कि इसका अर्थ यह नहीं हैं कि इसको मानकर पीछा छुड़ाते हैं, चाहे वह हो या न हो। नहीं–नहीं, जो विज्ञान हमें जगत् को परिवर्तन-शील मनवाता है, वही एक अपरिवर्तनीय पदार्थ भी मनवाता है। कपड़ा है, तभी वह रँगा जाता है। खूंटी है, तभी उस पर वस्त्र रखा जाता है। भींत (भित्ति, दीवार) है, तभी उसमें खूंटी ठहर सकती है। पत्थर और चूना है, तभी भींत बन सकती है। जमीन है, तभी पत्थर–चूना उपलब्ध हो सकता है। तात्पर्य्य यही है कि किसी कार्य के लिए पहले उसका आधार अवश्य ही कोई मानना पड़ता है। सारे पदार्थ बल–स्वरूप हैं। बल ही का नाम क्रिया है। क्रिया प्रतिक्षण परिवर्त्तित होती रहती है, हर लमहे में बदलती रहती है। इसका यह बदलना, इस परिवर्तनशील क्रिया का परिवर्तन, तब तक नहीं बन सकता जब तक कि इसका कोई अपरिवर्तनीय एवं नित्य आधार न मान लिया जाए। 'स्व' का 'स्व' आधार नहीं हो सकता। मृत्यु क्रिया है; क्रिया, क्रिया का आधार नहीं बन सकती। इसका आधार कोई निष्क्रिय ही मानना पड़ेगा। बस, उसे ही हम "अमृत" कहते हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बस, इस नित्य तत्त्व के कारण ही जो कि ग्रमृतस्वरूप है, विनश्यत् पदार्थ भी "ग्रस्ति" रूप में विद्यमान दिखलाई पड़ते हैं। जैसे रेल में बैठ जाने से हमारी गति रेल के माफिक हो जाती है, रेल की गति का धर्म्म हमारे में ग्रनुस्यूत हो जाता है, तद्वत् उस नित्य तत्त्व के कारण, उसकी ग्रस्तिता, इस विनश्यत् पदार्थ में अनुस्यूत हो जाती है। यही ग्रमृत बल इन सब बलों का आलम्बन है, आधार है। चूं कि वह स्वयं सत् है. ग्रतएव हर वक्त नष्ट होने वाले अतएव असार बलों को भी सत्रूपेण, "घटोऽस्ति-पटोऽस्ति" रूपेण, दिखलाया करता है। यह सत् पदार्थ, बलों का ऐसा ग्रटल आधार है कि चाहे बल किसी भी रूप में परिणत हो जाए, परन्तु वह कभी भी "ग्रस्ति (है)" से खारिज नहीं हो सकता।

उदारणार्थ, जब तक घट विद्यमान है, तब तक यह सत् घड़े को पकड़े हुए है, उस समय तक वह सत् घड़े का ग्राधार है, इसीलिए 'घटोऽस्ति' यह व्यवहार होता है। यदि घड़ा फोड़ दिया जाता है तो फिर हमें "मिट्टी" —यह कहना पड़ता है। मिट्टी नष्ट होकर यदि पानी में परिणत हो जाती है तो "पानी है"—यह कहना पड़ता है। ग्रस्ति किसी हालत में बल का साथ नहीं छोड़ती। कदाचित् कहो कि घड़ा तो अब नहीं है, मिट्टी तो नहीं है, ऐसी हालत में तुम क्यों कर "है" को सर्वत्र एकरूपेण बतलाते हो ? इसका उत्तर हम स्वयं न दे कर उन घटाभाव एवं मृत्तिकाभाववादियों के मुंह से ही दिलवाते हैं कि भाई, जब तुम घड़े का एवं मिट्टी का ग्रभाव बतलाना चाहते हो, तो घड़ा नहीं 'है," मिट्टी नहीं "है"—यही तो कहते हो। तो बस, ग्रभाव बतलाते हुए, 'नहीं' के ग्रागे जो तुम एक 'है' ग्रौर लगाते हो, वह सत्ता नहीं है, तो ग्रौर क्या है ? विश्वास करो, इस सत्ता से, इस ब्रह्म से एक ग्रणुमात्र भी स्थान खाली नहीं है। घड़ा नहीं है, तो मिट्टी है, मिट्टी नहीं है तो मिट्टी का ग्रभाव है। यह 'है' सर्वथा सर्वत्र ग्रव्यभिचारेण विद्यमान है। घड़ा कपड़े से भिन्न वस्तु है, कपड़ा मकान से सर्वथा भिन्न है, मनुष्य मकान से एकदम भिन्न पदार्थ है। इस प्रकार यच्चयावत् पदार्थ जो कि बलस्वरूप हैं, सारे के सारे परस्पर एक दूसरे से एकान्ततः भिन्न हैं। इस प्रकार इन सबके भिन्न-भिन्न होने पर भी "है" यह अस्तित्व सब में समान रूप से घुसा हुग्रा है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यद्यपि घट-पटादि सर्वथा भिन्न हैं तथापि घड़ा भी "है," कपड़ा भी "है," मकान भी "है"—यह "है" सर्वत्र अव्यभिचारेण मौजूद है।

बस, इन नष्ट होने वाले बलों में जो एक "अस्ति" की अव्यभिचारेण प्रतीति हो रही है, वही "रस" नाम से व्यवहृत किया जाता है। यही रस इन बलों का आश्रय है। जिस प्रकार बल, स्व-स्व-रूप से सर्वथा अनित्य है, विनाशी है, ठीक इसके विपरीत रस नित्य है, अविनाशी है एवं सत्तास्वरूप है। वही रस "ब्रह्म", "आभू", "अमृत" नामों से प्रसिद्ध है। यह रस अविनाशी रहता हुआ सारे जगत् को, अर्थात् बलों को, अपने ऊपर धारण करता है; अतएव "बिभर्ति" इस व्युत्पत्ति से इसे "ब्रह्म" कहते हैं। यह सारे जगत् को धारण करता है एवं उसका पोषण करता है, अतएव बिभर्ति इस व्युत्पत्ति से इस महा आलम्बन को "भर्म्म" कहते हैं। इसी भर्म्म का निरुक्त-क्रम से "ब्रह्म" यह रूप बन जाता है।

अपिच यह रस संसार में आसमन्तात् व्याप्त है, अतएव 'आसमन्तात्-भवति' इस व्युत्पत्ति से इसी रस को "आभू" कहा जाता है।

अपिच चूंकि वह कभी भी नष्ट नहीं होता—सदा एकरस रहता है, मृत्यु से अलग है, अतएव इसे "अमृत" भी कहते हैं।

इसी अभिप्राय से ब्रह्मसमन्वय में कहा जाता है—

"विनश्यत्सर्वमस्तीदं 'न नास्तीति' रसस्थितिः
बलेषुज्ञायते तद्धि बलानामवलम्बनम् ।। १ ।।

भिन्नं भिन्नं बलं भाति, भातिचास्तीत्यभिन्नवत् ।
एकः सत्तारसः सोऽयं सर्वत्र प्रतिभाति नः ।। २ ।।

(ब्रह्म समन्वय)

कहने का तात्पर्य्य यही है कि सम्पूर्ण विश्व में रस और बल ये दो ही पदार्थ हैं। दोनों ही नित्य हैं। दोनों को मिला कर ब्रह्म का स्वरूप है। उसी प्रजापति के शरीर में आधा भाग मृत्यु का है एवं आधा भाग अमृत का है। बस

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इसीलिए हमने "अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीदर्द्धममृतम्" कहा है। इस रस की, इस अमृत की जो अव्याकृत अवस्था है, उसी का नाम ब्रह्म है एवं व्याकृत अवस्था का नाम कर्म्म है। जो रस सृष्टि के पहले, अर्थात् बलोत्पत्ति के पहले सर्वथा व्यापक एवं अव्याकृत था वही रस आज घट-पटादि मृत्युओं से व्याकृत किया जा रहा है। एक ही स्वरूप को जो विविधाकार में परिणत करना है, उसी का नाम व्याकरण है। जो रस सृष्टि के पहले अर्थात् बलोदय के पहले सर्वथा व्याकरण-रहित था, अर्थात् घट है, पट है, मनुष्य है-इत्यादि विविधाकारों से शून्य था, सृष्टि-अवस्था में वह एक ही रस, एक ही सत्ता, एक ही अस्ति घट, पट, मनुष्य, पशु, पक्षी, मकान, हाथी, घोड़ा, सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, इत्यादि अनन्तानन्त आकारों से व्याकृत की जा रही है, अर्थात् जो रस सृष्टि के पहले एकस्वरूप था, वही आज सृष्ट्यवस्था में नाना भावों में परिणत हो रहा है, जो कि नाना भाव "विश्व" नाम से व्यवहृत होता है। बस, इस नानाभाव में परिणत हो जाना ही उस अव्याकृत रस की व्याकृति है।

इस प्रपञ्च से बतलाना हमें यही है कि यह रस, जो कि सृष्ट्यवस्था में व्याकृत हो जाता है, वही रस सृष्टि के पहले सर्वथा अव्याकृत रहता है। सारे बल जब रस में उद्बुद्ध हो जाते हैं, अर्थात् बल-समष्टि रस को अपने पेट में ले कर आप स्वयं उल्वण हो जाते हैं, बस तभी वह रस नाना स्वरूपों में परिणत होता हुआ व्याकृत हो जाता है। जो रसवद् बल है, वही रस की व्याकृत अवस्था है। जब रस को बल अपने पेट में लेकर उद्बुद्ध हो जाता है तो वह अपरिच्छिन्न रस भी बल के परिच्छेद के कारण परिच्छिन्न हो जाता है। बलों के पेट में जाते ही यह रस बल के अधीन हो जाता है। बलों के पेट में जाते ही, रस बल के अधीन हो जाता है। बल चूंकि नाना हैं, अतः रस को बाध्य होकर नानाभाव में परिणत होना पड़ता है। परन्तु ठीक इसके विपरीत बल सर्वात्मना जब उस रस में सो जाते हैं, प्रतिसञ्चर क्रिया या सारे बलों का जब रस में '**अव्यय**' हो जाता है तो उस समय वह रस "**अव्याकृत**" कहलाता है। चूंकि रस को नानाभाव में परिणत करने वाला बल-समूह बल में सो रहा है, अतएव रस अव्याकृत रहता है। यह रस अपने प्रातिस्विक स्वरूप से सर्वथा अनिर्वचनीय है। सारे बल जब रस में

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

समा जाते हैं तो फिर रस का निर्वचन करे कौन ? अतएव जो–जो सर्व-बल विशिष्ट रस है वह अव्याकृत कहलाता है। कदाचित् कोई प्रश्न करे कि "वह रस सर्वबलविशिष्ट है" एवंरूपेण जब आप उसका प्रत्यक्ष में निर्वचन कर रहे हैं तो फिर वह अनिर्वचनीय कैसे हुआ ? ऐसी अवस्था में आप उसे अव्याकृत क्यों कर बतला सकते हैं ? इसका उत्तर यही है कि जो वस्तु स्वरूप–लक्षण से बतलाई जाती है, जिसका यह काली है, गोल है, खट्टी है, मीठी है इत्यादिरूपेण स्वरूप से निर्वचन किया जाता है, वही निर्वचनीयता की कोटि में आती है। परन्तु जिसका तटस्थलक्षणेन निर्वचन किया जाता है, वह वस्तु कथमपि व्याकृत नहीं कहला सकती। प्रकृत में-रस का, "सर्वबल विशिष्ट रस ही का नाम ब्रह्म है"—यह जो निर्वचन है, वह "अस्ति कश्चित् सर्व-बल-विशिष्टात्मकोऽव्याकृतोऽर्थः" एवंरूपेण तटस्थलक्षण से ही है, न कि वह गोल है, सर्वधर्म्मा हैं, सर्वकर्म्मा है, काला है, पीला है, इत्यादि स्वरूप–लक्षण से। इस प्रकार तटस्थलक्षण से जो रस का निर्वचन करना है, वह उस सर्वबलविशिष्टस्वरूप रस के अव्याकृतत्व में बाधा नहीं डाल सकता। हम उस रस का स्वरूपलक्षण से निर्वचन नहीं कर सकते परन्तु "अस्तिकश्चित्" इस तटस्थलक्षण से उसे मानने के लिए तैयार हैं।

यह सर्वबलविशिष्ट रस ही ब्रह्म है। यह रस दिग्देशकालावच्छेदेन अनन्त है। यहां तक है, इतनी दूर में है, इतनी देर तक ठहरने वाला है—यह रस इन भावों से सर्वथा दूर है। दिग्देशकाल उसका परिच्छेद नहीं कर सकते एवं यह बल दिग्देशकाल से तो परिच्छिन्न है परन्तु संख्या में अनन्त हैं। मृत्यु के लिए, अर्थात् बलों के लिए वेद में यह प्रश्न किया गया है कि मृत्यु एक है अथवा अनेक—"तदाहुर्मृत्युरेकोऽनेकोवेति"। इसके उत्तर में श्रुति ने कहा है कि मृत्यु, मृत्युत्वेन सर्वथा एक है एवं जगत्–स्वरूपेण अनन्त है। इस प्रकार एक भी है और अनेक भी है।

यह रस देशकाल से अनन्त (अपरिच्छिन्न) है एवं संख्या में एक है। परन्तु बल, देशकाल से परिच्छिन्न है जबकि संख्या में अनन्त हैं। इसीलिए कहा जाता है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

देशतः कालतोऽनन्तो रसः संख्यात एकवत् ।
मृत्यवः संख्ययाऽनन्ताः साद्यन्ता देशकालयोः ।।

जो बल सर्वात्मना रस में प्रविष्ट हैं, यद्यपि वे अनन्त हैं, असंख्यात हैं, इन बलों की गणना करना असंभव है तथापि इन अनन्तानन्त बलों के जो खजाने हैं, जो कि बलकोश कहलाते हैं, वे कुल १६ ही हैं। इन १६ बलकोशों में, जो कि सर्वथा विजातीय हैं, सारे बल रहते हैं। उन बल-कोशों के नाम ये हैं—

१—विद्या २—माया ३—जाया ४—धारा ५—आप ६—भूति ७—हृदय ८—यज्ञ ९—सूत्र १०—सत्य ११—यक्ष १२—अभ्व १३—मोह १४—वय १५—वयोनाध १६—वयुन। इसीलिए कहा जाता है—

१ २ ३ ४ ५
विद्या निसर्गजा माया जाया धारा ऽप इत्यपि ।
६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
भूति हृद् यज्ञ सूत्राणि सत्यं यक्षाभ्व मोहकाः ।।१।।
१४ १५ १६
वयुनं च वयोनाधो वयश्चैतानि षोडश ।
बलकोशाः षोडशैते बलानां सन्ति योनयः ।।२।।

इस प्रकार सारे बलों को अपने में रखने वाले यही १६ बल कोश हैं। इन्हीं कोशों में से अनन्तानन्त बल निकला करते हैं। प्रकृत में और किसी बलकोश के विषय में हमें कुछ न कह कर केवल मायाबल के विषय में कुछ कहना है। जाया, धारा इत्यादि बलों का स्वरूप भिन्न-भिन्न है जिनका कि विशद विवेचन करना सर्वथा अप्राकृत होगा। जिस तरह जाया-धारादि बलों का सन्तान परम्परादिकर्म्म है, तथैव जो वस्तु अमित है, असीम है, उसको परिच्छिन्न बनाने का काम मायाबल का ही है। यह मायाबल अपरिच्छिन्न वस्तु को परिच्छिन्न बना डालता है। अतएव "मीयते अनया" इस व्युत्पत्ति से इस बल को माया कहा जाता है। जो रस अब तक अपरिच्छिन्न था,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC-0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अव्याकृत था, वही जिस बल के कारण परिच्छिन्न बना दिया जाता है एवं निर्वचनीय बना दिया जाता है, बस उसी बल को मायाबल कहते हैं। बस, उस अव्याकृत व्यापक अर्थ में, जो कि सर्वथा शान्त है, निर्विकार है, असीम है, सर्वप्रथम इस मायाबल का उदय होता है। इस मायाबल के उत्पन्न होते ही वह अपरिच्छिन्न असीम रस ससीम बन जाता है। यह मायाबल जब रस को परिच्छिन्न बना देता है तभी इसमें क्षोभ उत्पन्न होता है। चूंकि इस माया-बल के कारण ही रस परिच्छिन्न हो कर सृष्टि रूप में परिणत होता है, अतएव पुराणों में माया का निम्नलिखित रूप बतलाया जाता है—

नसती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः।
काचिद् विलक्षणा माया वस्तु प्रकृतिरिष्यते ॥

बल प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है एवं माया है एक प्रकार का बल-इसलिए तो इसे 'सती' नहीं कह सकते। परन्तु साथ ही में जगत् का स्वरूप भी इसी के द्वारा बनता है, जगत् इसी का स्वरूप है, अतः इसे "असती" (मिथ्या) भी नहीं कह सकते। एवं सत् और असत् का है परस्पर विरोध अर्थात् जो सत् है-अर्थात् है वही "असत्" नहीं हो सकता। एवं जो असत् है, वह सत् नहीं हो सकता।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ (गीता २।१६)

यह हमारा अटल सिद्धान्त है। सत् और असत् का परस्पर घोर विरोध है। तमःप्रकाशवत् इनका स्वभाव परस्पर सर्वथा विरुद्ध है, अतएव माया को उभयात्मा भी नहीं कह सकते। इस प्रकार सत्, असत् एवं सदसत् इन तीनों स्वरूपों से यह माया विलक्षण है, जो कि संसार की प्रकृति है, जिसे कि मानना अवश्य ही पड़ता है।

बस, इसी विलक्षण अनिवर्चनीय मायाबल से वह असीम रस, जिसे कि हम सत्य कहेंगे, परिच्छिन्न बना दिया जाता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यहां पर एक प्रश्न होता है कि जब अव्याकृत अर्थ अर्थात् सर्वबल-विशिष्ट रस, एकान्ततः शान्त था, क्षोभ रहित था, तो ऐसी हालत में रस-स्थित माया-बल को, रस को परिच्छिन्न बनाने के लिए किसने जगाया ? बल तो बल को जगा नहीं सकता क्योंकि वह तो एकजातीय वस्तु है एवं रस शान्त है, निर्विकृत है, अतएव निरस्त-समस्त–प्रपञ्च है। ऐसी हालत में रस को क्षुब्ध करने वाला, परिच्छिन्न बना कर उसे सृष्टि स्वरूप में परिणत करने वाला वह मायाबल क्यों कर उस शान्त रस में से उद्बुद्ध हुआ ? इसी का उत्तर वेद भगवान् देते हैं—

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
योस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥
(ऋ० वे० १०।११।१२६।६-७)

यह माया कैसे सृष्टि पैदा करती है एवं सर्वप्रथम कैसे उस रस में से उत्पन्न होती है एवं उस रस को कैसे परिच्छिन्न बना डालती है ! श्रुति कहती है कि इसका रहस्य जो परमेश्वर है, वह भी जानता है या नहीं, इसमें सन्देह ही है। अर्थात् इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं हो सकता।

हमारी अँगुली में, जो कि रसस्वरूप है, एक हिलने की क्रिया पैदा होती है, अर्थात् अँगुली हिलने का जो एक बल पैदा होता है, वह अँगुली के किस स्थान से पैदा हुआ, क्या यह कोई बतला सकता है ? कदाचित् कहो कि वह बल सारी अँगुली में ही व्याप्त था, तो हम कहेंगे कि अँगुली सदा ही क्यों न हिलती रहती है ? एवमेव, हिलने से जो क्रिया अँगुली से बाहर निकलती है, वह कहाँ जाती है, क्या इस प्रश्न का भी उत्तर आप दे सकते हैं ? हर्गिज नहीं। तो बस, जैसे अँगुलीस्वरूप रस में उत्पन्न होने वाली एवं वापस लीन होने वाली माया के आगमन-गमन को कोई नहीं पहचान सकता, तथैव जो अव्यक्त अर्थ में, रस को परिच्छिन्न बना डालने वाला मायाबल है, उसे भी कोई नहीं पहचान सकता।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अस्तु, कहना हमें सिर्फ इतना ही है कि सर्वप्रथम उस व्यापक सर्व-बल-विशिष्ट अव्याकृत रस को जो कि "सत्य" कहलाता है, उसी में से उत्पन्न मायाबल परिच्छिन्न बना डालता है। मायाबलाक्रान्त रस ससीम हो जाता है।

वैदिक विज्ञान में ऋत और सत्य ये दो तत्त्व माने जाते हैं। जो सकेन्द्र पदार्थ हैं, वे सत्य कहलाते हैं, एवं जो निष्केन्द्र पदार्थ हैं, वे ऋत कहलाते हैं। जो पिण्ड पदार्थ हैं, वे ही सत्य कहलाते हैं, एवं वायु आदि तरल पदार्थ ही ऋत कहलाते हैं।

प्रकृत में हमें कहना यही है कि जब वह सर्वबलविशिष्ट रस असीम था, जब कि उसमें सारे बल सुप्त थे—एक भी बल जाग्रत् न था, उस समय उसमें केन्द्र न था। क्यों कि ससीम वस्तु में ही केन्द्र हुआ करता है। किन्तु मायाबल द्वारा जब यह रस, यह अमृत, यह सत्य, परिच्छिन्न बना दिया गया तो उसी समय ससीमता के कारण. इस परिच्छिन्न रस में एक केन्द्र उत्पन्न हो गया। हमने बतलाया है कि बलकोश कुल १६ हैं। उनमें यह बात और विशेष समझनी चाहिए कि जो मायाबल है, उसी के पेट में अवशिष्ट जाया, धारा आदि १५ बल नाचा करते हैं। मायाबल के उद्बुद्ध होते ही, उसके पेट में रहने वाले सारे अन्य बल आप से आप उद्बुद्ध हो पड़ते हैं। जिस समय मायाबल अव्याकृत अर्थ (रस) को परिच्छिन्न बनाता है, उसी समय उसके एक केन्द्र-बल और उत्पन्न हो जाता है। इस केन्द्र-बल को ही हृत्-बल कहते हैं यह हृत्-बल त्रिकर्म्मा होता है। अर्थात् जैसे मायाबल का काम असीम रस को ससीम बनाना है, तथैव इस हृत्-बल का बाहर से वस्तु लेना, आई हुई वस्तु को बाहर फेंकना एवं आई हुई वस्तु का संयमन करना—ये तीन काम हो जाते हैं। हृत्-बल के इन्हीं तीनों कामों को बतलाने के लिए इस केन्द्र-बल का नाम "हृ—द—य" रखा गया है। हरति (आहरति) द्यति (नाशयति) यच्छति (संयमयति)—इति हृदय। इसी हृत्-बल को अनिरुक्त प्रजापति कहा जाता है। सर्वप्रजापति, अनिरुक्त प्रजापति, उद्गीथ प्रजापति, इन तीनों में से अनिरुक्त प्रजापति का स्वरूप बतलाती हुई श्रुति कहती है—

प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

(शु० यजु० ३१।१९)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

चूंकि उस मायावच्छिन्न पिण्ड के सारे पदार्थ इस केन्द्र प्रजापति की ही पकड़ में रहते हैं. पदार्थ का सारा दारोमदार 'सेण्टर' के ग्राधार पर ही अवलम्बित रहता है, अतएव "तस्मिन्ह तस्थुर्भु वनानि विश्वा" कहा जाता है। अब तक के कहने का सारांश यही हुआ कि "इस अव्याकृत असीम अर्थ में सर्वप्रथम मायाबल ने इसे परिच्छिन्न बना डाला एवं इसके परिच्छिन्न होते ही उसी क्षण इसमें केन्द्र कायम हो गया, जो कि हृत्-बल कहलाता है। इस प्रकार मायाबल के अनन्तर त्रिकर्म्म–यह हृत्बल–इस ससीम रस में उत्पन्न हुआ।

इस हृत् बल के उत्पन्न होते ही एक तीसरा "अशनायाबल" और उत्पन्न होता है। जो बल अशन पर अर्थात् खूराक पर पहुंचता है (अशनंहूयते) वही बल अर्थात् अन्न चाहने वाला बुभुक्षास्वरूप जो बल हैं—उसे ही "अशनाया बल" कहते हैं।

अथवा जो बल अशन अर्थात् खूराक को आत्मा के ऊपर पहुंचाता है (अशनंनयते इति)—वही अशनाया बल कहलाता है। भगवान् पाणिनि ने "अशनंमिच्छति सा अशनाया" जो अशन को चाहे वह आत्मा अशनाया कहलाता है, यह अर्थ माना है, परन्तु प्रकृत में वह अर्थ अभिप्रेत नहीं है। प्रकृत में अशनाया उसका नाम है, जो खूराक आत्मा पर पहुंचाता है। अथवा जो बल अशन पर अर्थात् खूराक पर पहुंचने वाला है, वही बल "अशनाया बल" कहलाता है। तात्पर्य्य यही है कि जिस बल के द्वारा आत्मा को खूराक मिलती है वही बल अशनाया बल कहलाता है। अशनाया का यही अर्थ प्रकृत में इष्ट है। क्योंकि श्रुति ने यही अर्थ माना है, जैसा कि श्रुति कहती है–"यथागोनायो अश्वनायस्तया अशनाया" (बृहदारण्यक)। जिस प्रकार गाय को ले जाने वाला, घोड़े को ले जाने वाला–गोनाय एवं अश्वनाय कहलाता है, तथैव अशन को ले जाने वाला अर्थात् पहुंचाने वाला अशनाया बल कहलाता है। बस, उस माया द्वारा ससीम रस में हृत्-बल के अनन्तर यही तीसरा बल उत्पन्न होता है।

जो वस्तु शत कोस तक व्याप्त रहती है उसे यदि बहुत कम सीमा में बांध दिया जाय तो वह हर वक्त उस सीमा को तोड़ने की कोशिश किया करती है। अर्थात् वह अपने उसी स्वरूप में आना चाहती है। जो व्यापक वस्तु है उसमें अशनाया बल अर्थात् 'खाऊं–खाऊं,—इस प्रकार का अशनाया

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बल उत्पन्न नहीं होता। परन्तु जब वह व्यापक वस्तु किसी के द्वारा परिच्छिन्न बना दी जाती है, तो उसमें उस बन्धन को, उस परिच्छेद को, तोड़ने की क्रिया होने लगती है। उस परिच्छेद से अपने को कम समझने लगती है। बस, इस अत्यन्तर को दूर करने के लिए ही वह हर वक्त चेष्टा किया करती है। वह वस्तु चाहती है कि मैं किसी तरह वापस अपने उसी स्वरूप में आ जाऊं। मनुष्य को, जो कि खुले मैदान में रहना पसन्द करता है, यदि किसी कोठड़ी में बन्द कर दिया जाता है तो वह वहां पर छटपटाने लगता है एवं उसमें दान-स्वरूप खूराक को लेने के लिए उस मनुष्य में एक अशनायाबल उत्पन्न हो जाता है। वह चाहता है कि कब मैं इस बन्धन को तोड़ूं। कोठड़ी में आने से पहले जिस अशनाया बल का मनुष्य में अभाव था वही बल कोठड़ी में परिच्छिन्न होते ही उस मनुष्य में उत्पन्न हो जाता है। बस, ठीक इसी प्रकार जब तक अव्याकृत अर्थ अर्थात् रस व्यापक रहता है, अर्थात् अपने प्रातिस्विक व्यापक स्वरूप में रहता है तब तक न केन्द्र कायम होता है एवं न अशनाया बल उत्पन्न होता है। क्यों कि जब किसी वस्तु की कमी होती है, तभी तो उसको प्राप्त करने की इच्छा अर्थात् अशनायाबल उत्पन्न होता है। जब कि वह स्वतः आप्तकाम है, स्वयं व्यापक है, तो उसे इच्छा हो ही कैसे सकती है ? परन्तु जब वह माया द्वारा ससीम बना दिया जाता है अर्थात् व्याप्त बना दिया जाता है तो उसी समय इसमें हृत्-बल उत्पन्न हो जाता है। साथ ही, उस परिच्छेद के बाह्य हिस्से को पूरा करने के लिए उसमें अशनाया बल भी उत्पन्न हो जाता है। बस, जब तक वह माया का परिच्छेद नहीं छूट जाता है, तब तक उसमें अशनाया बल अनवरत अपना काम किया करता है। जब मनुष्य के पास पूर्णसम्पत्ति रहती है तो उसे सम्पत्ति विषयक अशनाया नहीं रहती, परन्तु सम्पत्ति कम हो जाती है तो तद्विषयक अशनाया होने लगती है। बस, हरवक्त वह' मेरे पास कहीं से धन आ जाय'—यह इच्छा किया करता है। उस अशनाया के कारण, अर्थात् द्रव्य—इच्छा के कारण, उसके चित्त में 'मैं कब धनिक बनूं' यह घबराहट सी लगी रहती है। जब धनविषयक अशनाया नहीं थी तब तक वह शान्त था परन्तु अशनाया के होते ही उसमें घबराहट अर्थात् क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। बस, ठीक इसी प्रकार उस परिच्छिन्न रस में अशनाया के पैदा होते ही एक प्रकार का क्षोभ उत्पन्न होने लगता है। इस

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रकार जो रस माया-परिच्छेद के पहले सर्वथा शान्त था वही माया से ससीम हो कर अशनाया बल के कारण क्षोभयुक्त हो जाता है। इसीलिए अशनाया को "पाप्मा" कहा जाता है।

इसी क्षोभ-बल से आगे की पारमेष्ठ्यादि सृष्टियां उत्पन्न होती हैं जिनका विशद विवेचन आगे के प्रकरणों में किया जाएगा। यहाँ केवल इतना ही कहना है कि यह सत्य अमृत ब्रह्म ही माया-बल के कारण ससीम हो विश्वस्वरूप में परिणत हो जाता है। परन्तु ध्यान रहे, मृत्यु अर्थात् बल ब्रह्म के स्वरूप से अलग नहीं है। उसी ब्रह्म के मृत्यु और अमृत ये दो स्वरूप हैं। बात वास्तव में ठीक है। ब्रह्म के अलावा और कोई नहीं है। मृत्यु उसी में से उत्पन्न होती है, उसी पर प्रतिष्ठित रहती है एवं अन्त में उसी में लीन हो जाती है। जिसका जो प्रभव, प्रतिष्ठा और परायण होता है, वह उससे अभिन्न होता है। घड़ा मिट्टी से उत्पन्न हुआ है, उसी पर प्रतिष्ठित रहता है, अन्त में उसी में लीन हो जाता है, अतएव घड़ा मिट्टी से अभिन्न है। एवमेव, बल उसी से उत्पन्न होता है, उसी अमृततत्त्व पर प्रतिष्ठित रहता है, अन्त में उसी में लीन हो जाता है, अतएव मृद्घटवत् यह मृत्यु अमृत से अभिन्न है। अमृत और मृत्यु दोनों ब्रह्म के स्वरूप हैं। फर्क इतना है कि अमृत एक है, मृत्यु अनन्त हैं। माया, जाया आदि जो १६ प्रकार के बल हैं (पाप्मा हैं) वे ही मृत्यु कहलाते हैं। यह मृत्यु अमृत के बिना एक सेकण्ड भी नहीं ठहर सकती। दोनों परस्पर अविनाभूत हैं। इस अमृत में, अर्थात् सर्वबलविशिष्ट रस में, जिसे कि सत्य कहेंगे, मृत्युओं का जो सहचर भाव से, समान भाव से रहना है, वह ब्रह्म का प्राग्भाव है। वही सत्य है। इन बलों का परस्पर कई प्रकार से सम्बन्ध हुआ करता है। इन सम्बन्धों का विशद विवेचन "संशयवाद" नामक ग्रन्थ में देखना चाहिए। बलों के सम्बन्ध-तारतम्य से ही जगत के पदार्थों में वैविध्य उत्पन्न होता है। अलक्षण, विकृति, योग, बन्ध, संसर्ग, आसङ्ग, समवायावृत्तित्व, दहरोत्तरत्व, ग्रहातिग्रहत्व इत्यादि नाना प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। इन्हीं सम्बन्धों में से एक सम्बन्ध का नाम "सहचर" सम्बन्ध है एवं एक का नाम "चिति" सम्बन्ध है, जिसे कि "बन्ध" सम्बन्ध भी कह सकते हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तालाब पर दृष्टि डालिए। पानी आपको एकदम सीधा प्लेन (समतल) मालूम होगा। पानी के करोड़ों परमाणु उस तालाब में भरे हुए हैं, परन्तु सब सहचार भाव से। सब अपने-अपने स्वरूप से अलग हैं। इसे ही "समीक्रिया" कहते हैं। यही "शान्ति" है। यही ब्रह्म का स्वरूप है। यही सत्य है। यही अमृत ब्रह्म है। सर्वबलविशिष्ट रस का नाम ही ब्रह्म है। यही सत्य है। जब इस रस में सारे बल सोते रहते हैं, तो यह बलों की सहचर अवस्था कहलाती है। इस सहचर-अवस्था-युक्त अमृत का नाम ही सत्य है। परन्तु जब मायाबलोद्भव के कारण बलों में चिति सम्बन्ध हो जाता है, तो वही इस ब्रह्म का उत्तर भाव कहलाने लगता है। वही विश्व है। इस प्रकार बल-तारतम्यात् एक ही ब्रह्म के सत्य और विश्व ये दो स्वरूप हो जाते हैं। तात्पर्य्य यही है कि सहचर-सम्बन्ध युक्त अमृत का नाम ब्रह्म है। वही सत्य है एवं चिति भावयुक्त अमृतका नाम कर्म्म है। वही विश्व है। वही सत्य चितिसम्बन्धेन विश्व कहलाने लगता है एवं सहचरसम्बन्धेन वही सत्य कहलाने लगता है। सत्य और विश्व दोनों एक ही वस्तु है। बलावस्था मात्र का भेद है। सहचरभाव से चितिभाव एवं चितिभाव से सहचरभाव, यह स्वाभाविक परिवर्तन क्यों है? इसका उत्तर "कोअद्धावेद" के सिवाय और कुछ नहीं है। जो बल है, वही अशनाया मृत्यु है। अर्थात् जिससे यह ब्रह्म सहचरभाव द्वारा एवं चितिभाव द्वारा सत्य एवं विश्वरूप में परिणत होता रहता है, उसी बल का नाम अशनाया है। इसी बल-समष्टि को मृत्यु कहते हैं।

इस प्रकार इस मायाबल से उत्पन्न अशनाया के कारण सत्य, संचर-क्रिया से विश्व बनता रहता है एवं प्रति-संचार क्रिया से विश्व, सत्य में लीन होता रहता है। यह परिवर्तन-क्रम अनवरत जारी रहता है। बस, यही सत्य से विश्वोत्पत्ति का वैज्ञानिक निदर्शन मात्र है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"तत्रयथेदं सत्यंरूपं विश्वरूपायकल्पते। तदुपव्याख्यास्यामः। अस्ति हि अमृतंचमृत्युश्चेतिद्वेरूपेब्रह्म। अमृतमेकं मृत्यवोऽनन्ताः मायादयः पाप्मानो मृत्यवः। नामृतं मृत्युभिर्विनाकृतं भवति। तत्रैतस्मिन्नयते मृत्यूनां सहचर-भावेनावस्थानं ब्रह्मणः प्राग्भावः। तत्सत्यम्। अमृतेमृत्यूनां चितिभावेना-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वस्थानं ब्रह्मणः उत्तरभावः । तद्विश्वम् । ते चैते एकस्यैवसतोब्रह्मणोद्वेऽवस्थे भवतः । सहचरभावाच्चितिभावश्चितिभावात्सहचरभाव इतिनिमित्तं परिवर्त्तनं पाप्मा । साऽशनायामृत्युः ।"

यह मृत्यु कभी अमृत से अलग रहती ही नहीं है । रहे कैसे, जब उस अमृत से कोई स्थान खाली हो तभी तो मृत्यु को वहाँ रहने का मौका मिले । अमृत-मृत्यु दोनों परस्पर ओत-प्रोत रहते हैं । इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम् ।
मृत्युर्विवस्वन्तंवस्ते मृत्योरात्मा विवस्वति ।।[1]

मृत्यु के अन्दर अमृत है एवं अमृत, मृत्यु के ऊपर सवार है । दोनों ओतप्रोत हैं । अन्तरंमृत्यो० इत्यादि श्रुति आकाशवत् एवं क्रियावत् सत्य-विश्व के अर्थात् अमृत-मृत्यु के आधाराधेय भाव का खण्डन करती है । अमृत पर मृत्यु सवार है कदाचित् इस प्रकार का आधाराधेयभाव अमृत-मृत्यु का कोई न समझ ले इसलिए अन्यत्र "अमृतंमृत्योरमृतं" कहा गया है । हमारी मुठ्ठी आकाश में है एवं मुठ्ठी के जर्रे-जर्रे में आकाश है, भला इनका आधाराधेय भाव बन ही कैसे सकता है ? अँगुली में से जो क्रिया निकलती है, वह अँगुली के जर्रे-जर्रे में व्याप्त है एवं अँगुली क्रिया में व्याप्त है । अँगुली के किस भाग पर क्रिया बैठी है यह किसी भी प्रकार नहीं कहा जा सकता । यदवच्छेदेन अँगुली है, तदवच्छेदेन ही क्रिया है । दोनों का समान देश है । इसलिए तो हम "एक" कहने के लिए तैयार हैं । इसलिए श्रुति आधाराधेयभाव का खण्डन करती हुई और भी स्पष्टीकरण कर देती है—

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।
(ई० उ० ५)

एक मनुष्य मस्तक पर पगड़ी बांधे हुए जा रहा है । इस पगड़ी में कपड़ा भी है, रूई भी है, रंग भी है, मिट्टी भी है—यही सब कुछ है । परन्तु सबका समान देश है, अतएव पगड़ी एक ही कहलाती है । तात्पर्य यही है कि जैसे पगड़ी की सत्ता कपड़े से पृथक् नहीं है, अतएव पगड़ी और कपड़ा दो

१, शत० ब्रा०—१० का., ३ प्र., ६, ५ अ, २, ४ क० ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

चीजें नहीं कहलातीं, एवमेव मृत्यु की सत्ता अमृत से पृथक् नहीं है। इसीलिए चीजें दो होने पर भी "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" का बाध नहीं आता। सत्ता-भेद में नानात्वाद को मौका मिलता है, न कि सत्तैकता में। इसीलिए कहा गया है–

"अन्तरंमृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्"—इत्याधाराधेय भावयो–राकाशक्रियावच्चानिर्धारणमेवैतच्छ्रुत्यर्थः"

ब्रह्म को अकर्म्म कहते है, मृत्यु को कर्म्म कहते है। दोनों अविनाभूत हैं। दोनों का कार्य्यकारण भाव अभिन्नसत्ताक है। इसीलिए भगवान् ने कहा है—

कर्म्मण्य कर्म्म यः पश्येदकर्म्मणि च कर्म्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु सयुक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ।। (गी० ४।१८)

हमने बतलाया है कि बलों का सम्बन्ध अनेक प्रकार का होता है। बन्धनादि चिति आदि सम्बन्ध, बलों में ही होता है। बल, रस के आधार बिना रहते नहीं हैं। अतः उनके बन्धन के साथ तत्-परिच्छिन्न रस को भी बन्धन में आ जाना पड़ता है।

इस प्रकार इस अमृत का, मृत्युओं के सम्बन्ध–वैचित्र्य से, अर्थात् बन्धन किंवा बल-सम्बन्ध तारतम्य से, वह एक ही ब्रह्म तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है। बलों के तारतम्य से एक ही ब्रह्म सृष्ट, प्रविष्ट और प्रविविक्त–इन तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है—

"तस्यैतस्यामृतस्य मृत्यूनां समन्वयवैचित्र्यादिदं ब्रह्म त्रैविध्येनोपपद्यते सृष्टं, प्रविष्टं, प्रविविक्तं च।"

बलों में परस्पर जब चिति सम्बन्ध होता है, अर्थात् बंध-सम्बन्ध होता तो उससे जगत् का स्वरूप बनता है। कई बल जब परस्पर बँध जाते हैं, कई गांठें शामिल हो जाती हैं तो उससे आकाश पैदा होता है। उस पर और ग्रंथि-बन्धन होने से वायु बन जाता है। इस प्रकार गांठ पर गांठ लगने से वही बल पृथिवी-स्वरूप में परिवर्तित हो जाता है। हमने कह दिया है कि बल, बिना

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रस के रह ही नहीं सकता। तो बस, जितना सा रस चितिभाव में अर्थात् ग्रन्थि-स्वरूप में परिणत हो जाता है, अर्थात् ग्रन्थि-बन्धन-युक्त बलों की पकड़ में जितना सा रस आ जाता है, वही रस "सृष्ट ब्रह्म" कहलाता है। संघटित मृत्यु का अमृत में रहना, अथवा अमृत का संघटित मृत्यु में रहना ही ब्रह्म का "सृष्ट" रूप में परिणत होना है। दावात, होल्डर, पेंसिल, कागज—ये सब अनन्त बलों के ढेर हैं। ये बल बिना रस के नहीं हैं। तो बस, इन ग्रन्थि-बंधन-बलों में जितना सा रस बन्धन में आ गया है, उसे ही हम "सृष्ट ब्रह्म" कहेंगे। इसी अभिप्राय से कहते हैं—इस अमृत और मृत्यु में चिति-भाव से अर्थात् ग्रंथि-बन्धन-सम्बन्ध से अवस्थित जो मृत्यु अर्थात् बल है, उसका अमृत में, अर्थात् संघटित मृत्यु का अमृत में, अथवा अमृत का संघटित मृत्यु में जो अवस्थान है, वही "सृष्ट ब्रह्म" कहलाता है। पर्वत, नदी, घर, बाग-बगीचा, सूर्य्य—चन्द्र, ये सारे पदार्थ मृत्युओं के ढेर हैं। गांठ पर गांठ लगने से इन पदार्थों का अर्थात् सारे विश्व का स्वरूप बना हुआ है। बस, इस ग्रन्थि—बन्धन में परिणत अमृत भाग को, सत्य भाग को ही हम "सृष्ट ब्रह्म" कहेंगे—

तत्रैतच्चितिभावेनावस्थितानां मृत्यूनाममृतेऽवस्थानममृतस्य वा मृत्युष्ववस्थानं सृष्टं ब्रह्म।"

संघटित मृत्युओं में वह अमृत-सत्य सृष्ट हो गया है, उनके साथ बंध गया है, यह बात हम समझें कैसे? इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, सत्ता। पूर्वप्रकरण में हम बतला आए हैं कि यह मृत्यु, यह बल सर्वथा क्षणिक है। इस की स्थिति एक क्षण भी नहीं होती है। जो इन क्रियाओं का स्थितिक्षण है, वह भी बदलता हुआ ही है। क्रिया होने की स्थिति भी बदलती हुई रहती है। मृत्युओं की यह परिस्थिति है, तो फिर इनकी अस्तिरूपेण—घड़ा है, कपड़ा है, मकान है, इत्यादि रूपेण प्रतीति ही कैसे हो सकती है? बस, इसका एक मात्र उत्तर वही सत्ता है। वह रस सच्चिदानन्दात्मक है। वही सत्तात्मक रस इस परिवर्त्तनीय क्रिया का, इन मरणधर्म्मा बलों का, आधार है। बस, उसी से ये सारे 'है' शब्द से व्यवहृत होते हैं। सृष्ट जगत् में जो अस्ति का अर्थात् सत्ता का भाग है, वही सृष्ट ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है। इस सत्ता का-'है'—इसका

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आपामर आविद्वज्जन को बोध हो रहा है। मृत्युओं में, बलों में, जगत् के पदार्थों में जो "अस्ति" 'है' का पार्ट (भूमिका) है, वही ब्रह्म है। वह अमृत सत्तारूपेण उन मृत्युओं में अनुस्यूत रहता है—

तत्रेदममृतं सत्तारूपेण तेषु मृत्युष्वनुस्यूतं भवति ।

इन मृत्युओं का, अर्थात् घट–पटादि जगत् के पदार्थों का जो अस्तित्व है, इनमें जो एक घड़ा "है" पट "है"—इत्यादि प्रकारेण "है" की प्रतीति हो रही है, उससे अविभक्त ही इन मृत्युओं का स्वरूप स्थित रहता है।अर्थात् अस्ति से पृथक् मृत्यु नहीं है। यदवच्छेदेन मृत्यु है, तदवच्छेदेन अस्ति है। यदि मृत्यु में से अर्थात् पदार्थों में से "अस्ति" भाव को निकाल दो, सत्ता को निकाल दो, तो उन पदार्थों का स्वरूप ही नष्ट हो जाय। मिट्टी जैसे घड़े का अविभक्त रूप है, वह घड़े से कभी अलग नहीं हो सकती। जिस दिन मिट्टी घड़े से अलग हो जायगी, उस दिन घट कोई चीज नहीं रहेगा। बस ठीक इसी प्रकार अस्ति ही इन बलों का, इन मृत्युओं का अविभक्त रूप है। बिना अस्ति के मृत्यु कोई चीज नहीं। इसी से मालूम होता है कि मृत्यु और अमृत—ये कहने को दो हैं, वास्तव में दोनों में अभेद है। तात्पर्य यही है कि अस्ति के बिना पदार्थ कोई वस्तु ही नहीं रहता। अतएव मानना पड़ता है कि अस्ति और मृत्यु की, अर्थात् अमृत और मृत्यु की मृद्घटवत्, सूत्रवस्त्रवत्, सुवर्णकटकवत् "अभिन्न सत्ता" है। बस, इसी अभिप्राय से कहते हैं—

मृत्यूनामस्तित्वमेवैतदविभक्तं रूपं भवति ।

कहने का तात्पर्य यही है कि ग्रन्थिबन्धनयुक्त बलों में जो अमृत का भाग अनुस्यूत है, जिसका कि उन पदार्थों में अस्तिरूपेण प्रत्यक्ष हो रहा है, वही पहला सृष्टब्रह्म है।

ब्रह्म का दूसरा स्वरूप है—"प्रविष्ट"। श्रुति कहती है—"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"। अर्थात् वह ब्रह्म, वह सत्य, जगत् को पैदा कर आप स्वयं उसमें अन्तःप्रविष्ट हो गया। बस, यही 'प्रविष्टब्रह्म' है। जो मृत्यु शरीर रूप में अर्थात् पदार्थ रूप में परिणत हो गया है, अर्थात् जो बल पर्वत

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नदी-चन्द्र-सूर्य इत्यादि शरीर अर्थात् पिण्ड—स्वरूपों में परिणत हो गये हैं, उन शरीर रावस्थापन्न मृत्युओं में वह अमृत अधिष्ठातृत्वेन उन शरीरों का आत्मा बन कर उनमें प्रविष्ट हो जाता है एवं प्रविष्ट होकर इन प्राणियों की शरीर-यष्टि को धारण करता है। उदाहरणार्थ, आप अपने शरीर पर दृष्टि डालिए। हाड़-मांस-मज्जा-मेदा इत्यादि जो शरीर भाग है, जो कि बलग्रन्थियों से बना है, उसमें जो अमृत—भाग घुसा हुआ है, वह तो सृष्ट ब्रह्म है। शरीर का, अर्थात् हाड़-मांस का अस्तित्व इसी सृष्ट ब्रह्म से है। परन्तु इसी में जो एक अन्तःप्रविष्ट चेतना का भाग है, जो कि आत्मा कहलाता है, वही "प्रविष्ट ब्रह्म" है। इसी प्रविष्ट ब्रह्म के कारण हमारा शरीर खड़ा रहता है। एक हाथी जिसके शरीर को ५०० आदमी भी नहीं उठा सकते, बड़ी आसानी से उस शरीर को लिए घूमता रहता है। बस, जो हाथी को फल के माफिक उठाने वाला तत्त्व है, वही प्रविष्ट ब्रह्म है। इसी के लिए कहा जाता है—

अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ।। (कठ.उ.२।२२)

इसी ब्रह्म के लिए—

किंस्विद्वनं, क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
सं तस्थाने अजरे इत ऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरंत ।।
(ऋग्वेद म० १०।३१।७)

यह कहा जाता है। प्राणीमात्र के हृदय—प्रदेश में प्रविष्ट हो कर यह अन्तर्यामी सत्यस्वरूप कृष्ण अर्थात् ब्रह्म उस प्राणी का विधरण किया करता है। इसी अभिप्राय से भगवान् कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ।। (गीता १८।६१)

इसी प्रविष्ट ब्रह्म का स्पष्टीकरण करती हुई श्रुति कहती है—

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा व्यजायत ।
तस्ययोनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।।
(शु० यजु० ३१।१९)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

एक अन्य श्रुति कहती है, प्रजापति सबके केन्द्र में है, अन्तः प्रविष्ट है "तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानिविश्वा"—बस, यही प्रविष्ट ब्रह्म है। जिस दिन यह प्रविष्ट ब्रह्म निकल जाता है, उस दिन शरीर एकदम नीचे गिर जाता है। इसी अभिप्राय से कहते हैं-"अथ पुनस्तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्, इत्येवं मृत्युषु शरीरत्वमापन्नेषु तदमृतमधिष्ठातृत्वेन आत्माभूत्वा प्रविश्य एतद्यष्टिं विधारयति।" यह प्रविष्ट ब्रह्म "आलोमभ्य आनखाग्रेभ्यः" रहता है। नख के अग्रभागों एवं लोमों को छोड़ कर यह प्रविष्ट ब्रह्म सर्वाङ्ग शरीर में व्याप्त रहता है। यदवच्छेदेन शरीर है, तदवच्छेदेन यह प्रविष्ट ब्रह्म है। जहां से यह प्रविष्ट ब्रह्म अर्थात् चेतना निकल जाती है वह स्थान सूना हो जाता है, उतनी दूर का स्थान वेकाम हो जाता है। यदवच्छेदेन सृष्ट ब्रह्म अर्थात् शरीर है, तदवच्छेदेनैव प्रविष्ट ब्रह्म है। सृष्ट ब्रह्म अर्थात् शरीर और प्रविष्ट ब्रह्म अर्थात् आत्मा का स्थान एक है, अतएव दोनों दो वस्तु न कहला कर एक ही कहलाती हैं। मनुष्य को आते देख कर कोई यह नहीं कहता कि शरीर आ रहा है अर्थात् आत्मा आ रहा है। दोनों में एकत्व व्यवहार ही होता है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"सादेश्याच्चेदमुभयमेकभाव्यं प्रकल्प्यते।" जीवात्मा का अस्तित्व इस प्रविष्ट ब्रह्म से है एवं शरीरात्मा का अर्थात् शरीर का अस्तित्व सृष्ट ब्रह्म से है।

यह अमृत ही उन मृत्युओं में सृष्ट-प्रविष्ट-भेदेन अनुस्यूत होता है। अतएव इस मृत्यु-प्रपञ्च को विश्व कहते हैं। मृत्यु भाव में प्रविष्ट होकर वही ब्रह्म विश्व कहलाने लगता है। जहां अमृत प्रविष्ट हो जाता है, जहां आत्मा प्रविष्ट हो जाता है, उसे ही "विश्व" कहते हैं "यत्रामृतं विशति तद् यत्र वा आत्मा प्रविशति तद् विश्वम्"

'तत्रैदममृतं मृत्युषु विशतीतिकृत्वेदंरूपम्-विश्वमुच्यते।" यह विश्व परिमित है, यह ब्रह्म अपरिमित है, असीम है। इस अपरिमित अमृत स्वरूप सत्य ब्रह्म का इस परिमित विश्व से अतिरिक्त जो भाग बच जाता हैं वही "प्रविविक्त" ब्रह्म समझना चाहिए। उस असीम ब्रह्म का जितना हिस्सा सृष्ट

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

में परिणत हो गया है एवं जितना प्रविष्ट में परिणत हो गया है अर्थात् जितना ब्रह्म विश्व-स्वरूप में परिणत हो गया है, उससे बाकी बचा हुआ जो सर्व-बल-विशिष्ट रस है, जो सहचर भाव युक्त बलवाला रस है, वही विश्व से अलग रहने के कारण "प्रविविक्त ब्रह्म" कह लाता है। इसी प्रविविक्त ब्रह्म के लिए कहा जाता है–

नाहं मन्ये सुवेदेति नोनवेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेदतद्वेद, नो न वेदेति वेद च॥
यस्यामतं तस्यमतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ (के.उ.२।२-३)

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो।
रतद्व्यावृत्याश्चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः॥

यही प्रविविक्त ब्रह्म का स्वरूप है-"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसासह" प्रविविक्त का यही स्वरूप है। प्रविविक्त ब्रह्म अनुपास्य है, शास्त्रानधिकृत है–

"अपरिमितस्य ब्रह्मणः परिमितादस्माद् विश्वरूपात् पुनर्यावदतिरिच्यति। तत् प्रविविक्तं भाव्यम्।"

इस प्रकार बल-तारतम्य से एक ही सत्य ब्रह्म सृष्ट, सृष्टानुप्रविष्ट, एवं प्रविविक्त भेदेन तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है। एक सुवर्ण की डली पर ध्यान दीजिए। सुवर्ण, सूर्य्य की रश्मियों से बना है। किसी खास प्रकार की मिट्टी में एक ऐसा प्राण होता है जो कि सूर्य्यरश्मियों को पकड़ लेता है। बस, उस, मिट्टी की पकड़ में आई हुई सूर्य्यरश्मियाँ ही सुवर्ण बन जाती हैं। यह सुवर्ण ही सूर्य्य का सृष्ट रूप है एवं इसमें जो सूर्य्य की गरमी ऊपर से प्रविष्ट हो गई है, वही प्रविष्ट ब्रह्म है तथा उसकी गरमी से जो बाकी बचा हुआ सूर्य्य का ताप है, वही प्रविविक्त ब्रह्म है। बस, यही क्रम अमृत-मृत्यु में समझना चाहिए।

इन तीनों ब्रह्मों में से जो प्रविविक्त ब्रह्म है वह, वाङ्मनसागोचरत्वेन अनिर्वचनीयत्वात् अविज्ञेय है, अतएव शास्त्रानधिकृत है। वह अपरिच्छिन्न है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उसको हम हर्गिज नहीं पकड़ सकते । वह सर्वथा अनुपास्य है । अतएव उसके विषय में तो हमें कुछ कहना ही नहीं है । बाकी बचे सृष्ट और प्रविष्ट । इन दोनों में से जो सृष्ट ब्रह्म है वह उस प्रविष्ट ब्रह्म का, आत्मा का, घर है। सृष्ट ब्रह्म ही में अर्थात् शरीर ही में प्रविष्ट ब्रह्म अर्थात् आत्मा रहता है। यह सृष्ट ब्रह्म, कारण शरीर, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं महिमा—इन चार अवयवों में विभक्त है । बस, चतुर्धाविभक्त जो सृष्ट ब्रह्म है, वही इस आत्मा प्रविष्ट ब्रह्म, का आयतन है । आत्मा इसी चतुःसंस्थ सृष्ट ब्रह्मपुर में रहता है ।

इस आत्मायतन में इस ब्रह्म का जो प्रविष्ट रूप है, वही इस शरीर का आत्मा है । इस सृष्ट और प्रविष्ट ब्रह्म का स्वरूप बतलाया जाता है क्योंकि ये दोनों ही परिच्छिन्न हैं, अतएव इनका स्वरूप बतलाया जा सकता है "तत्रेदंप्रविविक्तमशास्त्रम् । वाङ्मनसपथातीतत्वेनानिर्वचनीयत्वादविज्ञेयत्वाच्च । यत्तु सृष्टंरूपं तदात्मायतनम् । कारणं शरीरं, सूक्ष्मशरीरं, स्थूलशरीरं महिमाचेतिचतुष्टयं तावदात्मायतनम् । अथैतस्मिन्नात्मायतने प्रविष्टं तु रूपम स्यशरीरस्यात्मा । एतदुभयंयावच्छक्यं व्याख्यायते योग्यत्वात्" ।

बलों के तारतम्य से एक ही सत्य ब्रह्म, सृष्ट, प्रविष्ट एवं प्रविविक्त-इन तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है । तीनों में से प्रविविक्त ब्रह्म तो वाङ्मनसातीतत्वात् अविज्ञेय है अतएव अनुपास्य है । अवशिष्ट बचे सृष्ट और प्रविष्ट । सृष्ट ब्रह्म प्रविष्ट का आयतन है, अतएव प्रविष्ट ब्रह्म की अपेक्षा सृष्ट ब्रह्म "शरीर" कहलाता है एवं प्रविष्ट ब्रह्म आत्मा कहलाता है । शरीर और आत्मा दोनों परस्पर अविनाभूत हैं । बिना शरीर के आत्मा नहीं रहता बिना आत्मा के शरीर नहीं रहता । जिस दिन शरीर न रहेगा, आत्मा भी न रहेगा । स्थूल शरीर नष्ट हो जाएगा, तो आत्मा को सूक्ष्म शरीर में रहना पड़ेगा । सूक्ष्म शरीर नष्ट हो जाएगा, तो इसे कारण शरीर में अर्थात् लिंग शरीर में रहना पड़ेगा । जिस दिन लिंग शरीर भी नष्ट हो जाएगा, उसी क्षण आत्मा स्व-स्वरूप से च्युत होता हुआ परब्रह्म में लीन हो जाएगा सारे बन्धन टूट जाने पर इस आत्मा का ब्रह्म में समवलय हो जाएगा । कहं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का तात्पर्य है कि "आत्मा" यह शब्द शरीर की अपेक्षा रखता है, "शरीर" यह शब्द आत्मा की अपेक्षा रखता है। दोनों अविनाभूत हैं। शरीर सृष्ट ब्रह्म का नाम है, आत्मा प्रविष्ट ब्रह्म का नाम है। बस, इस आगे के प्रकरण में हम आत्मा और शरीर ही का स्वरूप बतलाएँगे। दोनों में प्रधान चूं कि प्रविष्ट ब्रह्म है, अर्थात् आत्मा है, अतएव पहले उसी का स्वरूप बतलाएँगे।

इस आत्मा और शरीर में यह जो आत्मा है, अर्थात् प्रविष्ट ब्रह्म है, वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत्ता क्या पदार्थ है, चेतना क्या पदार्थ है, आनन्द क्या पदार्थ है—इनका विशद विवेचन यद्यपि आगे के प्रकरणों में किया जाएगा, तथापि सूक्ष्मरूपेण थोड़ा सा स्वरूप यहाँ भी बतला देना अनावश्यक न होगा। सत्ता, चेतना, आनन्द इन्हीं तीनों को दूसरे शब्दों में प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ भी कहा जाता है। सत्ता का नाम ही प्रतिष्ठा है, ज्ञान का अर्थात् चेतना का नाम ही ज्योति है एवं आनन्द का नाम ही यज्ञ है। इन सब में से सर्वप्रथम आनन्द का स्वरूप बतलाते हैं—

उस एक ही आत्मा के आनन्द, ज्ञान और सत्ता-ये तीन रूप हो जाते हैं। आनन्द को यज्ञ कहते हैं। एक वस्तु में दूसरी वस्तु की आहुति पड़ने का नाम ही यज्ञ है। अग्नि में सोम की आहुति पड़ने का नाम ही यज्ञ है। बस, जिसमें यह अन्न आहुत होता है, वही हमारा आत्मस्वरूप आनन्द पदार्थ है। हम जब भूखे रहते हैं, तो एक प्रकार के दुःख का अनुभव करते हैं! जहां अन्न खाया कि तृप्ति हुई। इस तृप्ति से एक प्रकार का आनन्द मिलता है। बस, जिसे यह आनन्द मिलता है, वह यज्ञात्मा ही आनन्द स्वरूप है। तत्तज्जातीय पदार्थों का, तत्तजातीय पदार्थों से प्रेम रहा करता है। हम जब भोजन करते हैं तो आनन्द का अनुभव होता है। बड़ा आनन्द आ रहा है—ये शब्द हमारे मुँह से निकलते रहते हैं। बस, इससे मानना पड़ता है कि शरीरकेन्द्रस्थ वह आत्मा आनन्दस्वरूप है। अन्न, कुल ७ प्रकार का होता है—मिट्टी, जल, अग्नि, हवा, आवाज, क्रिया और ज्ञान। इन सातों में मिट्टी, और पानी तो प्रयत्न—साध्य हैं एवं अवशिष्ट पाँचों अन्न ईश्वर के यहाँ से हर वक्त मिलते रहते हैं। इन सातों अन्नों की आहुति हममें पड़ा करती है। इसीलिए "यत्संप्तान्नानि तपसा मेधयत् पिता"—यह कहा जाता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

 CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यह आत्मा आनन्दस्वरूप है । आनन्द नाम है समीक्रिया का । समीकरण का आनन्द दो प्रकार का हुआ करता है—शान्तानन्द और समृद्धानन्द । हमें जब कोई दो हजार रुपए दे देता है अथवा किसी उच्च पद पर हम प्रतिष्ठित हो जाते हैं, तो उस समय आत्मा में एक प्रकार का उछाल पैदा होता है । थोड़ी देर वह उछाल रहता है, फिर हमारी अवस्था पहले जैसी ही हो जाती है । बस, यही समृद्धानन्द है, एवं जो सुषुप्ति अवस्था का आनन्द है, जो कि सर्वथा शान्त है स्वानुभवैकगम्य है, वही शान्तानन्द है । यही आत्मा का असली स्वरूप है । शान्ति को ही आनन्द कहते हैं । वह शान्ति समीक्रिया से होती है । एक लोटे में खूब गरम पानी भरा हुआ है एवं एक बड़े पात्र में इतना ठण्डा पानी भरा हुआ है कि जिसमें हाथ ही नहीं रखा जाता । इस प्रकार दोनों पात्रों का पानी अशान्त है, असह्य है । आप वह गरम जल का लोटा उस ठण्डे पानी में डाल दीजिए, उस समय उसकी गरमी इस ठण्डे पानी में आ जाएगी एवं उसका ठंडापन लोटे के पानी में आ जाएगा। दोनों का समीकरण हो जाएगा । गरम पानी की उष्णता जाती रहेगी, शीत पानी की शीतलता जाती रहेगी । दोनों मिल कर समान रूपों में परिणत हो जाएँगी । बस, इसी का नाम समीक्रिया है, इसी का नाम शान्ति है, इसी का नाम आनन्द है । पिता की सम्पत्ति का विभाग कीजिए । यदि आपने बिल्कुल समान विभाग कर दिया तो शान्ति है, क्योंकि समीक्रिया का नाम ही तो शान्ति है । यदि च आपने विषम विभाग कर डाला, एक तराजू ऊँचा और एक नीचा रख दिया तो फिर शान्ति की पराजय है एवं अशान्ति की विजय है । एवमेव, जाड़े के दिनों में हमें ठण्ड लगा करती है । इसका एकमात्र कारण है गर्मी, शीततु में प्रकृतिमण्डल जितना ही ठण्डा रहता है, अध्यात्मपिण्ड उतना ही गरम रहता है । शीतर्तु में जठराग्नि प्रबल वेग से धधकता रहता है । प्रातः काल सो कर उठते हैं, तो मुँह से धुआँ निकलता रहता है। जैसे अग्नि पर पानी डालने से धुआँ निकलता है, वैसे ही शीतर्तु में शरीर पर पानी डालते हैं तो धुआँ निकलता है । जो अन्न गरमी में मुश्किल से हजम होता था, आज वही इस जठराग्नि में पड़ कर एकदम स्वाहा हो जाता है । इस प्रकार अध्यात्म में तो अवश्य ही गर्मी का राज्य है । अग्नि का स्वभाव पसरने का है, उत्तरोत्तर विशकलित होने का है एवं सोम का स्वभाव सिकुड़ने

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का है । सोम ही को सर्दी कहते हैं । यह सोम प्रबल वेग से शरीर पर आक्रमण करता है । इस आक्रमण से शरीर का चमड़ा सिकुड़ने लगता है । चर्म्म के लिए जितना परिमित स्थान था, उससे उसे सिकुड़ना पड़ता है । बस, इस खिचाव से जो दर्द होता है, वेदना होती है, उसी का नाम है सर्दी लगना। सोम सिकोड़ने वाला है परन्तु गर्मी पसारने वाली है । जरा आप गरम कपड़ा पहन लीजिए, धधकते अंगारों की सिगड़ी सामने रख लीजिए । उसी समय सोम का वेग कम हो जाएगा एवं आपको शान्ति मिल जाएगी । परन्तु अग्नि का सम्बन्ध भी उतना ही होना चाहिए जिससे सोम की मात्रा दब जाए । यदि अधिक संयोग हो जाएगा तो भी दुःख है, क्योंकि समीक्रिया में ही आनन्द है ।

एवमेव ग्रीष्म-ऋतु में अध्यात्म में सोम का राज्य रहता है एवं प्रकृति में अग्नि का राज्य रहता है । पानी ही सोम का स्वरूप है, अतएव ग्रीष्म में शरीर से हर वक्त पानी चुआ करता है । जैसे शीतर्तु में सोम चमड़ी को सिकोड़ता था, ठीक इसके विपरीत प्रबल वेग से आक्रमण करता हुआ अग्नि, जो कि स्वभाव ही से विशकलनधर्म्मा है, चर्म्म को फैलाता है, पसारता है । चर्म्म का जितना आयतन है, उससे अधिक स्थान में फैलाना चाहता है । बस, इस खिचाव से जो दुःख होता है, उसे ही 'गर्मी लगना' कहा जाता है । गर्मी का इलाज है–सोम अर्थात् ठण्डाई । आप जरा एक ठण्डे पानी से भरे हौज में बैठ जाइए, उसी समय शान्ति हो जाएगी । परन्तु ध्यान रहे, अधिक ठंडाई भी काम की नहीं है, क्यों कि आनन्द समीक्रिया में ही है ।

आप अपने घर में १० मनुष्यों को भोजन करने के लिए बुलाइए । यदि आप ने भोज्य पदार्थ सबके लिए एकसार बनाये हैं, तो शान्ति है और यदि जामाता के लिए यह, साथ में आने वाले सामान्य मनुष्यों के लिए यह– यदि ऐसा फर्क आपकी दृष्टि में है, तो अशान्ति है । इसीलिए शास्त्रकार उपदेश देते हैं कि पंक्ति में अथवा रसोई में भोज्य पदार्थों का कभी भेद नहीं करना चाहिए । सबके लिए समान भाव रहना चाहिए, क्योंकि समीक्रिया में ही आनन्द है और आनन्द ही ब्रह्म का स्वरूप है । यदि तुम इस समीक्रिया

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

से दूर हो, तो समझ लो, परमेश्वर तुम्हारे ऊपर अप्रसन्न है। "पंक्ते हि भेदो न पुनः शिवाय"।

संसार के प्राणिमात्र सुख की वांछा किया करते हैं। यही आत्मा के आनन्दस्वरूप होने में अत्यन्त प्रमाण है। इस सुख को ही विज्ञानवेत्ता महर्षि रस कहा करते हैं। इस रस को अर्थात् सुख को प्राप्त करके ही यह मनुष्य सुखी हुआ करता है। इसी अभिप्राय से कहा जाता है–

"रसोह्येवसः। रसं ह्येवायंलब्ध्वाऽनन्दी भवति"। (तै० उ० २।७)

बिना आनन्द के एक मिनट भी आत्मा की स्थिति नहीं रह सकती है। आनन्द ही आत्मा का असली स्वरूप है। आनन्द से ही पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि है। यदि स्त्री-पुरुष में दम्पति में परस्पर आनन्द नहीं है तो गर्भ-स्थिति कभी नहीं हो सकती है। कदाचित् गर्भ-स्थिति हो भी जाती है, तो गर्भपात हो जाता है। यदि गर्भपात भी नहीं होता है, तो वह सन्तान आसुरीभाव लिए हुए पैदा होती है। एवमेव, जिसके जीवन में हर्ष नहीं है, आनन्द नहीं है, सो सदा दुःखी रहता है, कुढ़ता रहता है, समझो, उसके मरने में अब अधिक समय नहीं है। क्योंकि आनन्द ही से वह पैदा हुआ है, आनन्द ही से जिन्दा रहता है। यदि आनन्द नहीं, तो जीवन कैसा? इसीलिए वेद भगवान् कहते हैं–

"आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।" (तै० उ० ३।६) यदि परमेश्वर आनन्दस्वरूप अर्थात् इतना विपुल आकाश न बना कर हमारे मस्तक से ऊपर, गज–दो–गज के फासले पर ही एक छत बना देता, तो हमारा दम घुट जाता एवं शीघ्र ही मर जाते। परन्तु जब आंख खोलकर ऊपर की ओर देखते हैं, तो अनन्ताकाश दिखलाई पड़ता है। उसे देखते ही तबियत हरी हो जाती है। यदि ऐसा न होता तो हम कहां जाते? इसीलिए कहा जाता है—

कोह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्।

(तै० उ० २।७)

आत्मा आनन्द स्वरूप है। इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है? आत्मा असल में स्व–स्वरूप से व्यापक है, परन्तु बलों के कारण वह

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

परिच्छिन्न हो गया है। अतएव वह हर वक्त बढ़ने की इच्छा किया करता है। इसकी यह इच्छावृत्ति तब तक शान्त नहीं होती जब तक कि वह अपने पूर्व के व्यापक स्वरूप में नहीं आ जाता। अतएव योगी से योगी, महात्मा से महात्मा को भी इच्छा अवश्य ही होती है—यही सिद्धांत होना चाहिए। आत्मा परिच्छिन्न हो गया है, इसका यही सबूत है कि वह हर वक्त बढ़ना चाहता है। जितनी सम्पत्ति उसके पास होती जाती है, उसे उतनी ही अधिक इच्छा होती जाती है। एवं जितना वह सम्पत्तिशाली होता जाता है, उतना ही उसे अधिक आनन्द मिलता जाता है। रस ही का नाम आनन्द है। रस, बल के बिना पकड़ में नहीं आ सकता। अतः यदि तुमने २ हजार गायों पर अपना कब्जा कर लिया, तो उन बलों के साथ रहने वाला रस भी तुम्हारे में कूद पड़ा। तुम "महाशय" बन गए। इसीलिए श्रुति कहती है—

यो वै भूमा तद्वै सुखं यदल्पंतद्दुःखम् (छा० उ० ७।२३)

सन्तोष में ही आनन्द है,—ब्राह्मणों ने भारतवर्ष में आनन्द का जो यह स्वरूप मान रखा है, वह सर्वथा वेद–विरुद्ध है, अतएव त्याज्य है। सन्तोष का खण्डन करते हुए वेद भगवान् कहते हैं—

अजितं जेतुमनुचिन्तयेत्, न क्वचिदप्यलं बुद्धिमादध्यात्।

भूमा ही आनन्द है। आनन्द ही आत्मा का स्वरूप है।

अपि च हमारे शरीर में रहता हुआ यह आत्मा बड़ी दूर तक जाता है, इसलिए भी हम इसको आनन्द कहने के लिए तैयार हैं। "टुनदि समृद्धौ" से आनन्द शब्द बना है। हमारे पास १०० रुपये हैं और २०० और आ गए और पहले के घटे नहीं, बस इसे ही समृद्धि कहते हैं। हमारा आत्मा बाहर तक जाता है, बड़ी दूर तक फैलता है, परन्तु केन्द्र को नहीं छोड़ता। अतएव हम उसे "आनन्द" कहने के लिए तैयार हैं। यदि घर की सम्पत्ति अर्थात् केन्द्र को छोड़ कर बाहर निकलता, तो वह समृद्धि न कहलाती।

हमारा यह आत्मा यज्ञस्वरूप है। इसमें सदा आहुति पड़ती रहती है। इस आहुति से आनन्द मिला करता है, अतएव हम इस आत्मा को, इस यज्ञात्मा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

को, आनन्द कहने के लिए तैयार हैं। यज्ञ से ही आनन्दात्मा की स्थिति रहती है, अतएव हम आत्मा के आनन्दभाग को 'यज्ञ' कहते हैं। इसीलिए भगवान् कहते हैं—

अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर। इति। (गीता ८।४)

बस, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा का जो यज्ञ भाग है, उसे ही आनन्द कहते हैं। सत्ता, चेतना, आनन्द—इनमें से आनन्द ही मुख्य है, जिसके लिए कि "प्रजापतिश्चरतिगर्भे" एवं "हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" कहा जाता है।

दूसरा स्वरूप है "विज्ञान"। जैसे आनन्द को यज्ञ कहा जाता है, एवमेव विज्ञान को "ज्योति" शब्द से व्यवहृत किया जाता है। हम जब आंख खोल कर बाहर की ओर दृष्टि डालते हैं, तो हमें सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, पर्वत, वन, उपवन, आकाश, मकान, मनुष्य, पशु-पक्षी—इन सब का भान होने लगता है। बस, जिस पर्दे पर यह जगत्-प्रपञ्च चमकता है, जिससे इस जगत् का भान होता है, वही विज्ञान है, वही ज्योति है, वही चेतना है। जिसे हमने आनन्द बतलाया था, ज्योति का कन्दल है, वही चयन-रूप से बाहर तक अपना मण्डल बनाता है। सूर्य्य एक बिम्ब है, वही आनन्द है एवं उसमें से निकलने वाला जो एक प्रकाशमण्डल है, वही विज्ञान है। आनन्द ही चुनाव रूप से बाहर तक फैलता है, अतएव इसे चेतना कहते हैं। आनन्द का ही वह चुनाव है। अतएव हम इस विज्ञानमण्डल को, ज्योतिर्मण्डल को चेतना कहने के लिए तैयार हैं। इन्हीं रश्मियों से, इसी ज्योतिमण्डल से अर्थ का अर्थात् विषय का भान होता है। यही विषयज्ञान का कारण है, अतएव इस ज्योतिर्मण्डल को "विज्ञान" कहते हैं। सूर्य्य का प्रकाश, सूर्य्य की ज्योति तो केवल प्रकाश में रखे हुए पदार्थों का ही ज्ञान करवाती है, अन्धकार का ज्ञान सूर्य्य से कथमपि नहीं हो सकता। अन्धकार तो सौर प्रकाश का विरोधी पदार्थ है, परन्तु हमारी ज्ञान-ज्योति इस सूर्य्य-ज्योति से अर्थात् भूतज्योति से भी कहीं बढ़-चढ़ कर है। यह ज्ञान-ज्योति अन्धकार का भी प्रकाशवत् ज्ञान कराती है। इस ज्ञान-ज्योति से हम अन्धकार का भी प्रत्यक्ष कर लेते

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हैं। यदि यह ज्योति न रहे, तो सूर्य्य-ज्योति वगैरः कोई वस्तु ही न रहे। सूर्य्य-ज्योति को भी यह ज्ञान-ज्योति ही प्रकाशित करती है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती हैं—

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमाविद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति।

(कठ० उ० ५।१५)

वस, सच्चिदानन्दात्मा में यही दूसरा पार्ट (भाग) विज्ञान का है, जिसे कि "ज्योति" भी कहते हैं।

तीसरा पदार्थ है "सत्ता"। इसी सत्ता को प्रतिष्ठा कहा जाता है। "अस्ति" – इसी का नाम सत्ता है। यह आत्मा स्व-स्वरूप से प्रतिष्ठित है। यही सत्ता का स्वरूप है। यह सत्ता अर्थात् प्रतिष्ठा दो प्रकार की होती है—आत्म-प्रतिष्ठा, पर-प्रतिष्ठा। एक कागज पर सैकड़ों अक्षर लिखे हुए हैं। इन अक्षरों की जो अपनी प्रतिष्ठा है, अपना अस्तित्व है, वह आत्म-प्रतिष्ठा है, परन्तु जिस कागज पर अक्षर वैठे हुए हैं, वह कागज इन अक्षरों की पर-प्रतिष्ठा है। परन्तु वह कागज उस पुस्तक में प्रतिष्ठित है, अतएव उसकी पर-प्रतिष्ठा पुस्तक है। पुस्तक टेविल पर रखी हुई है। अतएव टेबिल इस पुस्तक की प्रतिष्ठा है। टेविल पृथ्वी पर है, अतः पृथिवी टेबिल को परप्रतिष्ठा है। इसी प्रकार हमारे मस्तक पर जो पगड़ी अथवा टोपी रखी हुई है, उसकी पर-प्रतिष्ठा हम हैं। हमने उसको रोक रखा है। यही विधृति कहलाती है। अतएव परप्रतिष्ठा को विधृतिप्रतिष्ठा भी कहते हैं। एवमेव हमारी पर-प्रतिष्ठा पृथिवी है। पृथिवी ने हमको विधृत कर रखा है। इस प्रकार यह प्रतिष्ठा तत्त्व, "अस्ति" तत्त्व, जर्रे-जर्रे में व्याप्त हो रहा है, पर-प्रतिष्ठा और आत्म-प्रतिष्ठा का अनुभव छत पर से अथवा अचानक पैर फिसल जाने से होता है। हमारा पैर जब कहीं से फिसल जाता है तो हम अपने को नहीं संभाल सकते। हमारा शरीर वेकावू हो जाता है। यही आत्मप्रतिष्ठा को पराजय एवं परप्रतिष्ठा की विजय है। हमारे हाथ में एक मिट्टी का अथवा पत्थर का टुकड़ा रखा हुआ है। उस का वजन मालूम होता है। हाथ उस बोझ का अनुभव कर रहा है। बस, यही दो प्रतिष्ठाओं का परस्पर युद्ध है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आत्मप्रतिष्ठा स्वप्रतिष्ठा है एवं जिस पर वह रहती है वही पर-प्रतिष्ठा है। हम चलती हुई रेलगाड़ी में झट से सवार हो जाते हैं। बस, उस पर सवार होना पर-प्रतिष्ठा पर सवार होना है। कहाँ तक कहें, शब्दाडम्बर से प्रतिष्ठातत्त्व समझ में नहीं आ सकता। अनुभव कीजिए, आपको प्रतिष्ठा के साक्षात् दर्शन हो जाएँगे। अनुभवरसिक ही इन तत्त्वों को पहचान सकता है। इसीलिए वेद भगवान् कहते हैं—

नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम् ॥

(कठोपनिषद् २।२३)

आपामर आविद्वज्जन सबको इस प्रतिष्ठा तत्त्व का प्रत्यक्ष हो रहा है। "अहमस्मि" "मैं हूं" इसका बोध किसे नहीं? पाँच वर्ष के अबोध बालक को आवाज दीजिए– "अरे, पुरुषोत्तम कहाँ गया?" उत्तर में वह कहेगा– "मैं यहाँ पर बैठा हूं।" मैं बैठा हूँ, इस सत्ता का ज्ञान उसे भी है। हाथी को आता देख कर बच्चा चिल्लाने लगता है—देखो, यह हाथी "है।" बच्चे को सत्ता का ज्ञान है।

हमें कहना केवल इतना ही है कि यह प्रविष्ट आत्मा सच्चिदानन्द-स्वरूप है। आनन्द ही मुख्य है जो कि केन्द्र में रहता है, जो कि यज्ञस्वरूप है एवं ज्योति, ज्ञान है जिसमें कि सारा जगत् प्रतिष्ठित हो रहा है, जिसमें सिनेमा के पर्दे की तरह सारा जगत् चमक रहा है एवं "अहमस्मि" यह स्वानुभवैकगम्य जो प्रतिष्ठातत्त्व है वही "सत्ता" है। इस प्रकार यह प्रविष्ट ब्रह्म साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूप है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

तत्रायमात्मा सच्चिदानन्दः।

जिसे हमने शरीर बतलाया था, जो कि ब्रह्मपुर नाम से व्यवहृत किया गया था, उस सृष्ट ब्रह्म को अर्थात् शरीर को हम "सच्चिदानन्दवान्" कहेंगे। आत्मा जैसे सच्चिदानन्द है, तद्वत् इस आत्मा का शरीर भी सच्चिदानन्द ही है। अर्थात् आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत्ता-चेतना-आनन्द ही आत्मा का स्वरूप है एवं शरीर सत्तावान्-चेतनावान्-आनन्दवान् है। इस शरीर ही में

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, वाङ्मय—ये पाँच कोश रहते हैं। इन्हीं के भीतर, अर्थात् आनन्दमय कोश के भीतर वह सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा रहता है। शरीर कैसे सच्चिदानन्दमान् है, यह आगे के प्रकरण में स्पष्ट हो जाएगा—**"शरीरं सच्चिदानन्दम्-इतिक्रमः ।"**

स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य्य, चन्द्र, एवं पृथिवी युक्त जो एक महाब्रह्माण्ड है, महाविश्व है, वही उस अव्ययक्षराक्षरविशिष्ट ईश्वर का शरीर है। यह सारा विश्व ही उसका शरीर है एवं हमारा यह अस्थिमांस वाला शरीर ही हमारे जीवेश्वर का विश्व है। जैसे जीवेश्वर का हाड़मांस वाला यह विश्व है, तद्वत् पर्वत-सूर्य्य-चन्द्रादियुक्त जो एक विश्व है, वही उस परमेश्वर का शरीर है। परमेश्वर जब कि सच्चिदानन्दस्वरूप है, तो फिर के कारण बलों उसी से उत्पन्न होने वाला यह विश्व क्यों कर सच्चिदानन्द सम्पत्ति से अलग हो सकता है ? हमने विश्व को सच्चिदानन्दवान् बतलाया है। यह सच्चिदानन्दवत्ता दो तरह से समझनी चाहिए। सच्चिदानन्दस्वरूप अमृत ब्रह्म का जितना सा हिस्सा उन बलों के बन्धन में आ कर बलों के स्वरूप में परिणत हो गया है, जो कि सृष्टब्रह्म कहलाता है, उसकी अपेक्षा से भी यह शरीर सच्चिदानन्दवान् है एवं उस शरीर में ऊपर से प्रविष्ट जो सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा है उसकी अपेक्षा से भी वह सच्चिदानन्दवत् है। यदि विश्व में से सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म को आप निकाल देंगे तो फिर विश्व का कोई स्वरूप ही अवशिष्ट न बचेगा। सच्चिदानन्द ही तो "विश्व" बना हुआ है, मिट्टी ही तो घट स्वरूप में परिणत हो रही है। घड़ा मिट्टी नहीं है, तो और क्या है ? घड़े में से मिट्टी को निकालने पर घड़ा बच ही क्या जाएगा ? वस्त्र में से सूत निकाल लेने पर वस्त्र ही न रहेगा। कटक-कुण्डल में से सोना निकाल लेने पर कटक-कुण्डल ही न रहेगा। एवमेव विश्व में से सच्चिदानन्दत्व को हटा देने पर विश्व ही न रहेगा, क्यों कि वही तो विश्व बना हुआ है। जब सारा विश्व उस ईश्वर का शरीर है, तो फिर वह सच्चिदानन्दत्व से क्यों कर खारिज किया जा सकता है ? इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"सर्वंहीदं विश्वं परमात्मनः शरीरमेवानुपश्यामः। तस्मात् सच्चिदानन्दमिदं विश्वम्" ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यह प्रविष्ट ब्रह्म अर्थात् आत्मा इस विश्व में समष्टि और व्यष्टि रूप से रहता है। सूर्य्य का पानी में प्रतिबिम्ब रूप से रहना व्यष्ट्यात्मकतया रहना है, एवं स्व-स्वरूपों में सारे ब्रह्माण्ड में रहना, समष्टि रूप से रहना है। एवमेव उस आत्मा का जीवस्वरूप में परिणत हो कर विश्व में रहना व्यष्टिरूप से रहना कहलाता है एवं सारे विश्व में एकस्वरूप से रहना समष्टिरूप से रहना कहलाता है। वही आत्मा समष्टि और व्यष्टि-दो प्रकार से अपनी संस्था कायम करता है। उभयथा भी वह विश्वमय अनेक अथवा एक आत्मा सच्चिदानन्दमय ही है। वही चेतना प्रज्ञान पर जब चमक पड़ती है, तो जीव कहलाने लगती है। परन्तु है तो वही चेतना। फिर वह समष्टिरूप से व्यापक चेतनावत् सच्चिदानन्दघन क्यों न होगी? अवश्य ही होगी। लोटे भरे पानी में जो शैत्य धर्म्म है, क्या वह एक बूंद पानी में नहीं है? अवश्य ही है। एक लोटे में आप ५० चीजें डाल कर शर्बत बना लीजिए। उस लोटे में से एक बूंद कहीं पर डाल दीजिए। एवं उस शर्बतभरे लोटे में जो ५० चीजें थीं, वे इस एक, कतरे में भी हैं, यह बात आपको अवश्य ही माननी पड़ेगी। एवमेव चिदाभास स्वरूप व्यष्टि रूप में परिणत, अतएव अनेक जो आत्मा है, वह उस एक से भिन्न नहीं हो सकता। वही आत्मा समष्टि एवं व्यष्टि रूप से इसका अधिष्ठाता बना हुआ है। समष्टि और व्यष्टि रूप जगदधिष्ठाता वह आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। इसलिए तो "योऽहंसोऽसौ" "योऽसौसोहं" कहा जाता है। तात्पर्य कहने का यही है कि अनन्तानन्त जो जीवात्मा है, वह भी ईश्वरात्मावत् सच्चिदानन्द स्वरूप है, एवं ईश्वर का जो बिम्ब है एवं विश्वान्तः पाती जीवनेश्वर का जो शरीर है, वह भी सच्चिदानन्दवत् ही है। सब सच्चिदानन्द ही सच्चिदानन्द है। बौद्ध कहते हैं—क्षणिकम्, क्षणिकम्, हम कहते हैं शाश्वतिकम् शाश्वतिकम्। वे कहते हैं—"दुःखं दुखम्" हम कहते हैं—"आनन्दः आनन्दः, आनन्दम् आनन्दम्।" वे कहते हैं—"शून्यं-शून्यम्," हम कहते हैं—"पूर्णंपूर्णम्"—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ (ई० उ०)

यही ब्रह्मवादियों का सिद्धांत है। सब सच्चिदानन्दमय है, यही हमारा सिद्धांत है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"समष्ट्या व्यष्ट्याचेदं सर्वमयमात्माऽधितिष्ठतीति विश्वमयोऽयमेकोऽनेकोवात्मा—सच्चिदानन्दः ।"

वह अमृततत्त्व, सत्यब्रह्म, सर्वथा एक है । इसीलिए तो **"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"**—यह कहा जाता है । इस प्रकार सर्वदा एक-रस-स्वरूप उस अमृतभाव से जो आनन्द, विज्ञान, सत्ता—ये तीन भाव उत्पन्न हो जाते हैं, इसमें एकमात्र कारण वल ही है । मृत्युयोग ही एक अमृतब्रह्म को तीन वनाने में प्रधान कारण है । यह वल—जाया, धारा, आप, अम्व इत्यादिरूपेण १६ प्रकार के होते हैं, परन्तु जो वल, जो मृत्यु, सर्वप्रथम इस असीम ब्रह्मतत्त्व को ससीम वना, इसको तीन स्वरूपों में परिणत कर देता है, उस मृत्यु का नाम "मायावल" है, जिसका कि विस्तृत विवेचन इस प्रकरण के प्रारम्भ में ही कर दिया गया है । उस मायावल के कारण ही वह एक ब्रह्म तीन भावों को (सत्ता, चेतना, आनन्द—इन तीन स्थितियों को) धारण कर लेता है—

एकस्यैव सतोऽमृत भावस्येत्थमानन्द-ज्ञान-सत्ताभिस्त्रैभाव्योपपत्तौ मृत्युयोगो हेतुः । मृत्युरिह मायावलम् । मायावशादिदमेकं ब्रह्म त्रैभाव्यंधत्ते ।

एक ही ब्रह्म मायावशात् तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है, जैसा कि श्रुति कहती है—**"सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** । यह ब्रह्म सत्य है, अर्थात् सत्ता-स्वरूप है, एवं ज्ञानस्वरूप है, एवं अनन्त है अर्थात् आनन्दस्वरूप है । जो वस्तु अनन्त अर्थात् अपरिमित होती है, उसे ही वैदिक परिभाषा में **"भूमा"** कहते हैं । वहुत्व को ही भूमा कहते हैं एवं भूमा को ही आनन्द कहते हैं—**"यो वै भूमा तद् वै सुखम्"** । कहने का तात्पर्य यही है कि इस प्रकार परम्परा-सम्वन्ध से **"अनन्त"** का अर्थ **"आनन्द"** ही हो जाता है । वह ब्रह्म सत्यस्वरूप है । जो वस्तु सत्य होती है, जिसका त्रिकाल में अवाध होता है, वही **"अस्ति"** कहलाती है एव 'अस्ति' ही सत्ता कहलाती है । इस प्रकार **"सत्य"** का अर्थ सत्ता ही है यह वात सिद्ध हो जाती है । एवमेव वह ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है एवं अनन्त है, अर्थात् आनंदस्वरूप है । सत्ता, ज्ञान, आनन्द—यही ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है । सत्ता, ज्ञान, आनन्द—ये तीनों, तीनों ही के आश्रित हैं । तीनों सर्वथा अविनाभूत हैं । तीनों को मिला कर ब्रह्म का स्वरूप सम्पन्न होता है । तीनों अविनाभूत रह कर ही अपनी स्थिति कायम करते हैं । इसी अभिप्राय से कहते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तथाचाम्नायते–सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति । यदनन्तं स भूमा । तत् सुखम् । स आनन्दः । सत्यंरूपम् । ज्ञानंरूपम् । आनन्दोरूपम् । अन्योऽन्याश्रित मेतदविनाभूतंत्रितयं रूपम् ।

वादी पूर्वपक्ष प्रस्तुत करता है कि श्रुति ने "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"—ब्रह्म का यह स्वरूप बतलाया है। एक कहने से भी द्वैत की निवृत्ति हो सकती थी, ऐसी हालत में श्रुति के अद्वितीयम् तथा एव–ये दोनों विशेषण, ब्रह्म के–सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदों का होना सिद्ध करते हैं। भेद कुल तीन ही प्रकार का होता है—सजातीय, विजातीय एवं स्वगत। आम के पेड़ का और नारंगी के पेड़ का जो परस्पर भेद है, वह विजातीय भेद कहलाता है एवं आम-आम के पेड़ में जो भेद है, वह सजातीय भेद कहलाता है। आम में भी उसकी टहनी अलग है, फल अलग है, पत्ते अलग हैं-यह भेद स्वगत भेद कहा जाता है। ब्रह्म में तीनों ही भेद नहीं हैं। ब्रह्म से विजातीय जब कोई पदार्थ ही नहीं है, तो विजातीय भेद बन ही कैसे सकता है? ब्रह्म के समान दूसरा कोई सजातीय ब्रह्म भी नहीं है, जिससे ब्रह्म में सजातीय भेद माना जाए। ब्रह्म अखण्ड है। इसमें आम्र-वृक्षवत् शाखा-प्रशाखादि खण्ड नहीं हैं, जिससे कि इसमें स्वगत भेद माना जाए। इस प्रकार, ब्रह्म सजातीय, विजातीय एवं स्वगत–इन तीनों भेदों से पृथक् है। बस, इसी अभिप्राय से "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इसमें एकम्-एवम्–अद्वितीयम्–ये तीन विशेषण लगाये गये हैं।

ऐसी हालत में आपका ब्रह्म को सच्चिदानन्द स्वरूप बतलाना सर्वथा श्रुति-विरुद्ध है। हमने माना कि आपके मत में भी सजातीय एवं विजातीय भेद तो नहीं है, परन्तु स्वगत भेद तो हो गया। एक ही के तीन पार्ट (भाग) तो आपने मान लिए। प्रश्न बिल्कुल ठीक है, परन्तु थोड़ी सी समझ का फर्क है। यदि वादी महाशय सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते तो उनका भ्रम दूर हो जाता। तीन, कहने को तीन हैं। वास्तव में ज्ञान, सत्ता, आनन्द तीनों एक वस्तु है। तीनों कैसे एक हैं, आपके संशय को दूर करने के लिए हम पहले यही बतलाते हैं। आपने ज्ञान, सता, आनन्द—तीनों को भिन्न-भिन्न समझ रखा होगा, परन्तु यह आपकी भूल है। वस्तुतः तीनों एक ही हैं। सबसे प्रथम हम ज्ञान और सत्ता—इन दोनों का ऐक्य–समन्वय करते हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जिस ईश्वर को हमने सच्चिदानन्दघन बतलाया है, वही अव्ययेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। अव्यय की आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण, वाक्—ये पांच कलाएं मानी जाती हैं। इन पांचों में से आनन्द, विज्ञान, मन—ये तो ब्रह्म के स्वरूप हैं, एवं मन, प्राण, वाक्—ये कर्म्म के स्वरूप हैं। मन–प्राण–वाक्-समष्टि का नाम ही सत्ता है। यह सत्ता ज्ञान से पृथक् वस्तु नहीं है। इस महाविश्व में विश्व-केन्द्रस्थ एवं हमारे शरीर–विश्व में शरीर-केन्द्रस्थ जो ज्ञान–घन–कन्दल है, वही आनन्द है। इस आनन्द–कन्दल से चारों ओर निकलने वाली जो ज्ञान–रश्मियां हैं— वे ही "ज्ञान" हैं। अर्थात् केन्द्र से बाहर की ओर निकलती हुई आनन्द–रश्मियाँ ज्ञान हैं एवं मनोमय आकाश में आगत हो कर प्रतिफलित जो ज्ञान-रश्मियाँ हैं, वही सत्ता हैं। जाती हुई किरणें ज्ञान कहलाती हैं एवं आती हुई किरणें सत्ता कहलाती हैं। अवस्था–भेद मात्र से एक ही चीज आनन्द, ज्ञान तथा सत्ता स्वरूप में परिणत हो जाती है। जिनसे भी तेजस्वी अर्थात् प्रकाशी पदार्थ हैं, वे सब त्रिवृत् होते हैं, ग्राहक-गाह्य और ग्रहीता–प्रत्येक तेजस्वी पदार्थ इन तीन भागों (पार्टों) में विभक्त रहता है इसीलिए "त्रिवृद्वा अग्निः" यह कहा जाता है। सूर्य्य प्रकाशी पदार्थ है, तेजः पिण्ड है, अतएव उसमें तीनों पार्ट (भाग) रहते हैं। सूर्य्य का जो बिम्ब है, जो कि आकाश में दिखलाई पड़ता है, वही ग्रहीता है। सूर्य्य में से निकल कर चारों ओर फैलने वाला जो प्रकाश-मण्डल है, वही ग्राहक है एवं उसमें उसी से बने हुए जो घट पटादि हैं, वे ही ग्राह्य हैं। घटपटादि संसार के यच्चयावत् पदार्थों का जो काला, नीला, पीला रूप है—वे सूर्य्य की ही किरणें हैं। रंग सूर्य्य की किरणों के अलावा रह ही नहीं सकता। हम जो काला-पीला देखते हैं, वही तो पदार्थों का स्वरूप है। वह वर्ण है सूर्य्य की वस्तु, अतएव हम कह सकते हैं कि ग्राह्य घट-पटादि भी सूर्य्य ही हैं। कदाचित् कहो कि किरणों में तो वजन नहीं होता परन्तु घट-पटादि में वजन है, अतः सूर्य्य की प्रतिफलित किरणें ही घट-पटादि कैसे हैं ? इस पर हमें अधिक न कह कर इतना ही कहना है कि घट-पटादि में जिस गुरुत्व का आप अनुभव करते हैं, वह केवल पृथिवी का आकर्षण मात्र है। वह घट की अपनी वस्तु नहीं है। इस विषय का विशद विवेचन "संशयवाद" में देखना चाहिए। हमें

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यहाँ केवल इतना ही कहना है कि प्रकाशी पदार्थ, ग्राहक, ग्राह्य और ग्रहीता-इन तीन स्वरूपों में परिणत रहता है।

चूँ कि ज्ञान भी प्रकाशी पदार्थ है, प्रकाश का भी प्रकाश है, अतएव वह स्वभाव ही से ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय –इन तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है। ज्ञाता को ही आनन्द कहते हैं, ज्ञान को चेतना कहते हैं एवं ज्ञेय को "सत्ता" कहते है। ग्राहक ही ग्राह्य बन जाता है, ज्ञान ही ज्ञाता बन जाता है। इसी अभिप्राय से भगवान् भर्तृहरि कहते हैं –

ग्राह्यत्वं ग्राहकत्वं च द्वे शक्ती तेजसो मते।
तथैव सर्वशब्दानामेते पृथगवस्थिते ।।

(वाक्यपदीयम् अ० का० ५५)

जैसे तेजस्वी पदार्थों में ग्राह्यत्व और ग्राहकत्व ये दो शक्तियां होती हैं, तथैव शब्द मात्र में ये दोनों शक्तियाँ रहती हैं। "रामलाल, इधर आओ"! वाक्य जैसे रामलाल के इधर आने का ग्राहक है, तद्वत् वह रा–म–ला–ल–इ–ध–र–आ–ओ– इस अपने स्वरूप का भी बोध करा देता है, अर्थात् ग्राहक बनता हुआ ग्राह्य बन जाता है।

हमारा ज्ञान जब सत्तारूप में परिणत होता है तो उसके नाम–रूप–कर्म्म ये तीन भेद हो जाते हैं। नाम–रूप–कर्म्म की समष्टि का नाम ही सत्ता है। फलाँ चीज वहाँ "है"। इस "है" में नाम–रूप–कर्म्म ही तो है। मान लीजिए वहाँ घड़ा है। तो एक तो घड़े का काला–लाल कैसा भी रूप है, एवं "घड़ा" यह उस वस्तु का नाम है एवं उसका अपने में पानी भरे रखना, उतने स्थान को रोके रखना इत्यादि कर्म्म हैं। नाम–रूप–कर्म्म के अलावा और चौथी चीज है ही क्या ? इससे सिद्ध हो जाता है कि जिसे आप "है" कह कर पुकारते हैं, वह सिवाय नाम–रूप–कर्म्म के और कुछ नहीं है। नाम-रूप-कर्म्म का नाम ही "है" अर्थात् सत्ता है। नाम--रूप–कर्म्म ही "अस्ति" है।

जब नाम–रूप–कर्म्म ही सत्ता है तो फिर ज्ञान और सत्ता का पृथक्त्व जाता रहता है। अस्ति, यही तो जाना जाता है अर्थात् नाम–रूप–कर्म्म ही सत्ता है एवं यही जानी जाती है। इस प्रकार सत्ता ही ज्ञान का विषय हो

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जाती है। "मैं घड़े को जानता हूँ, मैं देवदत्त को जानता हूँ" यहां पर जो ज्ञान का विषय है, वह घड़ा और देवदत्त ही तो हैं एवं घड़ा और देवदत्त नाम-रूप-कर्म्म ही तो हैं। नाम–रूप–कर्म्म ही तो सत्ता अर्थात् "अस्ति" है। बस इसीलिए हम कह सकते हैं कि "है" यही तो जाना जाता है अर्थात् नाम–रूप–कर्म्म ही तो ज्ञान का विषय है। "अस्ति" अर्थात् सत्ता ही ज्ञान का विषय है। इसी अभिप्राय से कहते हैं –

अस्तीति (नाम–रूप–कर्म्म-समष्टिः) ज्ञायते–तत्र सत्ता ज्ञानविषयः।

अब चलिए ज्ञान की ओर। घड़ा भासता है अर्थात् प्रतीत हो रहा है, देवदत्त का भान हो रहा है, इस प्रकार का जो भान है, अर्थात् प्रत्यय (ज्ञान) है, वही तो "अस्ति" (है) है। यहाँ पर भान अर्थात् ज्ञान, सत्ता का विषय हो रहा है। भाति–यही तो अस्ति का स्वरूप है। जैसे अस्ति ज्ञान का स्वरूप है, तद्वत् भाति–यही अस्ति का स्वरूप है। जैसे वहाँ अस्ति अर्थात् सत्ता, ज्ञान का विषय है, तद्वत् यहाँ (भातीत्यस्ति) भाति (ज्ञान) सत्ता का विषय है।

१. "भातीत्यस्ति। तत्र भानं (ज्ञानं) सत्ताविषयः"

अपि च घटपटादि हैं, तभी तो ज्ञान होता है। मैं घड़े को जानता हूँ, वस्त्र को जानता हूँ, यज्ञदत्त को जानता हूँ–यह ज्ञान तभी बनता है जब कि घड़ा, वस्त्र, यज्ञदत्त पदार्थ हैं। घटपटादि की मौजूदगी (अस्ति) ही "मैं घड़े को जानता हूँ" इस प्रकार के मेरे ज्ञान का कारण बनती है। यदि घट-पटादि न हों, अर्थात् "सत्ता" कोई पदार्थ न हो, तो मैं जानूं ही किसे ?

२. "अस्ति इति ज्ञायते – तत्र सत्ता ज्ञानहेतुः"

अपि च 'मैं जानता हूँ' इसीलिए तो घटपटादि हैं। भींत (दीवार) के उस पार चाहे हजारों वस्तुएँ रखी हों, परन्तु जब तक मैं उनको न जानूं, तब तक मेरे लिए तो वे हैं ही नहीं। मैं उन पदार्थों की सत्ता तभी मान सकता हूँ, जब कि मैं उनको जान जाऊँ। सत्ता के ज्ञान में भान कारण है। मैं जानता हूँ, इसीलिए उस पदार्थ की सत्ता मानता हूँ। अँधेरे में हजारों चीजें

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रखी हुई हैं, हमें मालूम ही नहीं, वहाँ कुछ रखा हुआ है। मालूम तभी तो हो, जब कि उनका ज्ञान हो जाए। कदाचित् कहो कि यदि ज्ञान ही सत्ता का कारण है, ज्ञान ही से वस्तुसत्ता होती है, तो फिर अन्धकार में जाने पर ठोकर किसकी लगती है? हम कहते हैं तुम भूलते हो। अरे भाई, ठोकर से ज्ञान होता है, वह ज्ञान ही "अस्ति किञ्चिदत्र" का कारण बनता है। अतः ज्ञान ही सत्ता का कारण है।

३. "अस्तीति ज्ञायते–तत्र सत्ताश्रयो ज्ञानविषयः"

अपि च हमें भान होता है, इसीलिए घटपटादि पदार्थ हैं। यदि हमारा ज्ञान न हो तो भले ही चाहे जितने घटपटादि हों, वे नहीं के समान हैं। समान ही नहीं हैं, वास्तव में नहीं हैं। ज्ञान ही तो ज्ञेय बनता है। यदि ज्ञान नहीं, तो ज्ञेय अर्थात् सत्ता कोई चीज नहीं। सत्ता का विषय है नामरूप-कर्म्मात्मक घटपटादि। उनका आश्रय भान अर्थात् ज्ञान ही है। ज्ञान ही उनकी 'अस्ति' को सुरक्षित रखता है।

तात्पर्य यही है कि ज्ञान में ज्ञान नहीं रहता एवं सत्ता में सत्ता नहीं रहती, यही नियम है। इसलिए ज्ञान की सत्ता के लिए सत्ता अपेक्षित है एवं सत्ता की सत्ता के लिए ज्ञान अपेक्षित है। दोनों के विना दोनों ही का स्वरूप नहीं बन सकता, अतएव हम कह सकते हैं कि कहने को सत्ता और ज्ञान दो हैं परन्तु वास्तव में दोनों एक ही हैं––

"भातीत्यस्ति—तत्र भानाश्रयः सत्ताविषयः"

इस प्रकार ज्ञान और सत्ता दोनों एक वस्तु हो जाती हैं। अपिच जो रस (पदार्थ) सत्ता से गृहीत होता है, एवं जो रस भाति से अर्थात् ज्ञान से गृहीत होता है, जो पदार्थ है—एवं जिसका कि भान होता है—वही रस है वही आनन्द है। अर्थात् जिसको हम "है" "है" कहते हैं, तदाश्रय कोई वस्तु भी तो अवश्य ही है। इस पर कोई पूछता है कि क्या है? तुम कहते हो फलां वस्तु है। तुम जब "जानता हूँ" यह कहते हो तो फौरन प्रश्न होता है कि क्या जानते हो? तुम्हें उत्तर देना पड़ता है—अमुक वस्तु जानता हूँ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कहने का तात्पर्य यही है कि अस्ति और ज्ञायते, इन दोनों से—है और जानता हूँ, इन दोनों से—पृथक् जो वस्तु है एवं जिसे जानता हूँ, उस ज्ञान और है से पृथक् है—वस, वही रस है। उसे ही हम आनन्द कहने के लिए तैयार हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

यो रसः सत्तया गृह्यते, यो रसो भात्या गृह्यते, योऽस्ति, यो भाति–स रसः स आनन्दः।

अपि च आनन्द भी एक पदार्थ है, अर्थात् जो रस है, वह भी "है" इस सत्ता से अविनाभूत है। बिना "है" के (विना सत्ता के) रस भी नहीं रह सकता ! "आनन्दोऽस्ति" (सत्तयाप्यविनाभूतोरसः इति भावः। अपिच रस का भी अनुभव होता है–आनन्द का भी अनुभव होता है, ज्ञान होता है, अर्थात् जो रस है, आनन्द है, वह इस ज्ञान से भी पृथक् नहीं हो सकता। बिना ज्ञान के भी आनन्द नहीं रह सकता—

स आनन्दोऽनुभूयते (ज्ञानेनाप्यविनाभूतो रसः इति भावः) एवं वह आनन्द "है" इसलिए उसका ज्ञान होता है।

आनन्द की भी सत्ता है, अर्थात् आनन्द सत्ता से अपृथक् है–"आनन्दस्य सत्ता"। एवं आनन्द का ज्ञान होता है, अर्थात् आनन्द ज्ञान से भी अपृथक् है-उसे ज्ञान से भी जुदा नहीं किया जा सकता–"आनन्दस्य ज्ञानम्"। एवं जो सत्ता है, वह भी एक पदार्थ है। सत्ता भी "है"-अर्थात् रस-स्वरूप है। अर्थात् सत्ता रस से पृथक् नहीं है, एवं सत्ता का भी ज्ञान होता है–"है" इसका ज्ञान हमें होता है—इस प्रकार सत्ता ज्ञान से भी अपृथक् है—'सत्ताया ज्ञानम्।"

अपिच सत्तावत् ज्ञान भी एक चीज है, रस है। इस प्रकार ज्ञान, रस से पृथक् नहीं कहा जा सकता — "ज्ञानमेकोरसः"। अपिच ज्ञान भी "है", ज्ञान सत्ता से भी पृथक् नहीं है— "ज्ञानमस्ति"।

इस प्रकार सर्वथा अविनाभूत, आनन्द–ज्ञान–सत्ता–इन तीनों से जो एक स्वरूप बनता है, वही एक ब्रह्म है। जगत् में चूँ कि ज्ञान–ज्ञाता–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ज्ञेय—अर्थात् आनन्द—विज्ञान—सत्ता—से अलग कोई भी वस्तु नहीं है एवं इन तीनों की समष्टि को ही कहते हैं ब्रह्म, अतएव हम कह सकते हैं कि ब्रह्म ही सब कुछ है— "ब्रह्मैवेदंसर्वम्" ।

अपिच उस अमृत ब्रह्म ही को सत्य कहते हैं । वही सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, अतएव हम कह सकते हैं—यह सारा प्रपञ्च सत्यस्वरूप ही है— "सत्यंहीदंसर्वम्" जगत् को मिथ्या मानना—इस शांकरमत का पूर्वोक्त विवेचन से खण्डन हो जाता है ।

अपिच वह ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है, अतएव हम "ज्ञानंहीदंसर्वम्" यह भी कह सकते हैं । चूं कि यह ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, अतएव हम "आनन्दोहीदंसर्वम्"—यह भी कह सकते हैं ।

सत्ता और ज्ञान से अनुगृहीत जो रस है अर्थात् अमृत है, वही आत्मा का स्वरूप है । सत्ता—चेतना—आनन्द (ज्ञाता—ज्ञान—ज्ञेय) इनकी समष्टि का नाम ही "आत्मा" है । जिसे विश्व कहा जाता है, वह आत्मा ही आत्मा है, अर्थात् सारा विश्व सच्चिदानन्दमय है । सच्चिदानन्द ही को कहते हैं ब्रह्म, वही है सत्य एवं उसी से बना हुआ है यह विश्व, अतएव हम इस विश्व को भी सत्य—ज्ञान—आनन्द स्वरूप कहने के लिए तैयार हैं । इसी अभिप्राय से कहते हैं—

सत्ताज्ञानाभ्यामनुगृहीतो रस एवायमेकैक आत्मा । आत्मैवायं सर्वो विश्वभावः । तत्सत्यम् तज्ज्ञानम् ।

इस प्रकार आनन्द-विज्ञान-सत्ता इनका जो त्रैभाव्य है, उसे हम एकभाव्य करके ही समझते हैं । अर्थात् यद्यपि प्रतीत तीन ही होते हैं, तथापि परमार्थ दृष्टि से तीनों एक हैं । तीनों वास्तव में एक हैं, इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ।। (कठ० उ० २।३।१२)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

न उस ब्रह्म को वाक् से प्राप्त किया जा सकता है, न मन से किया जा सकता है, न चक्षु से किया जा सकता है। अपितु "अस्ति" उस सत्ता-ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है। 'अस्ति' को छोड़ कर वह और कहां मिल सकता है ? दयालु श्रुति उपदेश देती है और ब्रह्म के साक्षात् दर्शन का उपाय बतलाती है कि हे मनुष्यों, यदि तुम ब्रह्म को पहचानना चाहते हो, तो आपामर आविद्वज्जन को सिद्ध जो एक "अस्ति" की प्रतीति है, उस पर ध्यान दो। अस्ति ही उस ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है। "है"—यही ब्रह्म का साक्षात् दर्शन है। वह ब्रह्म सत्ता स्वरूप ही तो है। अपि च इसी बात को दृढ करती हुई श्रुति फिर कहती है—

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ।।

(कठ० उ० २।३।१३)

श्रुति कहती है—अस्ति—यही उपलब्धव्य है। अस्ति—यदि इसे तुम पहचान गए तो समझ लो, तुमने ब्रह्म को पहचान लिया, क्यों कि "अस्ति" यही तो उपलब्धि का स्वरूप है। बात वास्तव में सच है। नाम-रूप-कर्म्म का ही नाम अस्ति है एवं ज्ञान का आकार अस्त्यात्मक ही है। घटोऽस्ति-यही तो ज्ञान का आकार है। अस्ति ही तो उपलब्धि है। आगे जा कर श्रुति कहती है, तत्त्वभाव से, अर्थात् अस्ति इस सत्ता भाव से, ज्ञान और आनन्द इन दोनों का ग्रहण हो जाता है। ज्ञान और आनन्द "अस्ति" से सर्वथा अविनाभूत हैं। अस्ति को पहचानने से आनन्द और विज्ञान दोनों पकड़ में आ जाते हैं। बस, यही तो ब्रह्म का स्वरूप है। इस प्रकार "अस्ति" से जो ब्रह्म का स्वरूप जान जाता है, उसके लिए तत्त्वभाव, अर्थात् सत्ता-चेतना-आनन्द इन तीनों का एकत्र भाव स्फुट हो जाता है, सच्चिदानन्द ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

इस प्रकार विश्वप्राग्भाव स्वरूप जो ब्रह्म है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप है, तदपेक्षया ही, इसी के स्वरूप को बतलाने के लिए श्रुति कहती है—"सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इति। आनन्द-ज्ञान-सत्ता—ये तीनों ही विश्वातीत पदार्थ हैं। सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म श्रुति इसी विश्वातीत का स्वरूप बतलाती है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तदित्थं विश्व-प्राग्भाव-ब्रह्मणः सच्चिदानन्दत्वापेक्षमिदमाम्नातं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति ।

पूर्व प्रकरण में कारण ब्रह्म का स्वरूप बतलाया है । वह व्यापक, शांत, निर्विकृत, निष्क्रिय, सत्यस्वरूप, अमृततत्त्व किंस्वरूप है ? एक ही, सत्ता-चेतना आनन्द—तीन स्वरूपों में परिणत कैसे हो जाता है, यही पूर्व प्रकरण का विषय था । पूर्व प्रकरण में ब्रह्म, ब्रह्म के शरीर स्वरूप इस विश्व को भी हमने सच्चिदानन्दात्मक बतलाया था । ब्रह्म कैसे सच्चिदानन्द है, यह पूर्व प्रकरण का विषय था एवं विश्व सच्चिदानन्दात्मक कैसे है, यह इस प्रकरण का विषय है ।

विश्व में अनन्तानन्त प्रकार के कार्य्य-कारण भाव होते हैं । जैसे अनन्तानन्त वलों को माया-जाया धरादि १६ बलों में विभक्त मान रखा है, तद्वत् इन सारे कार्य्य–कारण भावों को १३ भागों में विभक्त मान रखा है। इनके अनन्त होने पर भी जाति इनकी कुल १३ ही हैं जिनका कि विस्तृत विवेचन करना प्रकृत से दूर जाना होगा । केवल एक-दो कार्य्य–कारणों का स्वरूप वतला देना ही पर्याप्त होगा । उन तेरहों में से एक कार्य्य–कारण भाव का नाम है—"भिन्नसत्ताक कार्य्य-कारण भाव," एक का नाम है "अभिन्नसत्ताक कार्य्य-कारण भाव ।" उपादान कारणों की ये दो कोटियां हैं । पिता से पुत्र उत्पन्न होता है । पिता ही अपने अंश से पुत्र बनता है- "पिता वै जायते पुत्रः" यह सिद्धान्त है । पिता कारण है, पुत्र कार्य्य है। अब यदि इनके कार्य्य-कारण भाव का हम विचार करते हैं तो दोनों में सर्वथा भिन्न सत्ता दिखलाई पड़ती है । पिता अवश्य ही पुत्र का उपादान कारण है परन्तु परस्पर दोनों की सत्ता सर्वथा पृथक् है । पुत्र मर जाए तो पिता की सत्ता का कुछ नहीं विगड़ता; पिता मर जाए तो पुत्र का कुछ नहीं विगड़ता । दोनों की सत्ता स्वतन्त्र है । बस, उपादान कार्य्य-कारण भावों में भिन्न सत्ता का यही उदाहरण समझना चाहिए । दूसरा कार्य्य-कारण भाव है–अभिन्नसत्ताक । तन्तु ही वस्त्र का उपादान कारण है, मृत्तिका ही घट का उपादान कारण है । सुवर्ण ही कटक–कुण्डलादि का उपादान कारण है। परन्तु दोनों की सत्ता अभिन्न है । मिट्टी की सत्ता को ले कर ही घट सत्तावान् हो रहा है । सुवर्ण की सत्ता से ही कटकादि हैं । यदि वस्त्र में से सारे

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तन्तु निकाल लिए जाएँ, घड़े में से मिट्टी निकाल ली जाए, कटकादि में से सुवर्ण निकाल लिया जाए तो वस्त्र-घटकादि कोई वस्तु ही न बचे। दोनों की सत्ता एक है। मिट्टी की सत्ता को ले कर घड़ा है। घड़े की सत्ता अपनी सत्ता नहीं है अपितु मिट्टी की सत्ता है। इसी अभिन्नसत्ताक कार्य्य-कारण भाव को बतलाती हुई श्रुति कहती है—

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। (छा०उ० ६।१।४)

सत्य—सत्ताभाव—को अस्ति कहते हैं। श्रुति कहती है कि घटादि तो वाक् का, अर्थात् मिट्टी का, आरम्भण मात्र है। एक मिट्टी का ढ़ेर रखा हुआ था। उसको हम अपने हाथ से गूंद कर, इधर-उधर हस्त-संचालन कर, उसी मिट्टी को एक दूसरी शक्ल में परिणत कर देते हैं—वास्तव में है सत्य अर्थात् "है" मिट्टी ही है। यदि सत्ता एक न होती मिट्टी और घड़े की, तन्तु और वस्त्र की—तो मस्तक पर रखी हुई पगड़ी के लिए कपड़ा लाओ, सूत लाओ, रंग लाओ, मिट्टी लाओ, पानी लाओ"—सभी व्यवहार होने लगते। क्यों कि पगड़ी एक कपड़ा है, कपड़ा सूत से बना है, मिट्टी कपास रूप में परिणत हो कर सूत बनी है, मिट्टी पानी से बनी है। परन्तु कभी कोई ऐसा व्यवहार नहीं करता। इससे मानना पड़ता है कि केवल वाक् का आरम्भण मात्र है, वास्तव में घड़ा मिट्टी ही है, वस्त्र तन्तु ही है। बस, यही अभिन्नसत्ताक कार्य्य-कारण भाव है। कहने को कार्य्य-कारण भाव है, वास्तव में देखा जाए तो कारण-कार्य्य एक ही चीज है। इसीलिए जगत् को ब्रह्म का विवर्त्त बतलाया जाता है। मिथ्या कार्य्य-कारण भाव को ही "विवर्त" कहते हैं।

पूर्वोक्त दोनों कार्य्य-कारण भावों में से अभिन्नसत्ताक कार्य्य-कारण भाव से ही हमारा सम्वन्ध है। ब्रह्म ही इस विश्व का कारण है एवं विश्व ही कार्य्य है। इस ब्रह्म—विश्व का जो कार्य्य-कारण भाव है, आधाराधेय भाव है, वह मृद्घटवत्, तन्तु वस्त्रवत् अभिन्नसत्ताक है। मायादि वलों के कारण ही ब्रह्म जगत् बन जाता है एवं ग्रन्थिबन्धन विमोचनात् वही विश्व अपनी असली हालत में आ कर ब्रह्म कहलाने लगता है। उस अमृत तत्त्व के प्राग्भाव का नाम "ब्रह्म" है, वही सत्य कहलाता है एवं उत्तर भाव का नाम "विश्व" है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

एक ही, संचर-क्रम में नाना बन जाता है, प्रति-संचर-क्रम में नाना भाव एकत्व में लीन हो जाता है।

इस ब्रह्म और विश्व का कार्य्य-कारण भाव जब अभिन्नसत्ता को लिए हुए है, हम कह सकते हैं कि जैसा स्वरूप ब्रह्म का है, वैसा ही जगत् का है। ब्रह्म चूं कि सच्चिदानन्द है अतएव उस ब्रह्म का विकार जगत् भी सच्चिदानन्द ही है। बात वास्तव में सच है। घड़ा है, कपड़ा है, घर है, मकान है, पर्वत है, सूर्य्य है, चन्द्र है, सारा विश्व है। सारे विश्व का यदि वास्तविक स्वरूप पूछना चाहो तो "अस्ति" ही उसका स्वरूप है। जो सत्ता से खारिज है, वह है ही नहीं। सत्ता ही ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है। सत्ता की ही उपलब्धि होती है। भला, फिर विश्व को सत्ता स्वरूप से खारिज क्यों कर किया जा सकता है? इस प्रकार जब सत्ता का साक्षात् प्रत्यक्ष हो जाता है—"है"-इसका ज्ञान जब आपामर आविद्वज्जन को सामान्यतया है, तो फिर उस सत्ता के साथ बंधे हुए अविनाभूतत्वेन रहने वाले विज्ञान और आनन्द स्वतः ही कूद पड़ते हैं। "है" के साथ आनन्द और विज्ञान दोनों हैं। है, उसे ही जानते हैं एवं जो है एवं जिसे जानते हैं, वही आनन्द स्वरूप है। इसीलिए पदार्थ (रस) को जान कर आनन्द आया करता है। आए कैसे नहीं, जब पदार्थ वास्तव में आनन्दस्वरूप है। मिश्री की डली तो खाने में मीठी ही लगा करती है। कहने का तात्पर्य्य यही है कि ब्रह्म कारणवत् विश्व-कार्य्य भी सच्चिदानन्द-स्वरूप ही है। ब्रह्म के सच्चिदानन्दत्व को जैसे "नित्यंज्ञान-मनन्तं ब्रह्म"-यह श्रुति बतलाती है, तद्वत् इस विश्व की सच्चिदानन्दत्व विवक्षा से श्रुति कहती है—

नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप का वर्णन करती है एवं "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"-यह श्रुति विश्व के स्वरूप का वर्णन करती है—

अथैतस्य विश्वस्यापि सच्चिदानन्दत्वविवक्षया पुनराम्नायते-नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म इति।

ब्रह्म सत्तास्वरूप-चित्स्वरूप-आनन्दस्वरूप है एवं विश्व सत्तावान्, चेतनावान्, आनन्दवान् है। ब्रह्म सत्ता-चेतना-आनन्द है, विश्व सत्चित्-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ग्रानन्दम् है। उस ब्रह्म सत्ता से विश्व सत् है, चेतना से चित् है, एवं आनन्द से ग्रानन्दम् अर्थात् ग्रानन्दवान् है। ब्रह्म सत्ता-ज्ञान-ग्रानन्द स्वरूप है, विश्व सत्तावान्-विज्ञानवान्-ग्रानन्दवान् है। यह विश्व उस ब्रह्म का जो कि सत्ता चेतना ग्रानन्द स्वरूप है, शरीर है। वह इसमें प्रविष्ट रहता है। चूं कि यह विश्व अपने में सत्ता-चेतना-ग्रानन्द को रखता है, ग्रतएव हम इसे ग्रवश्य ही सत्तावान्, चेतनावान्, ग्रानन्दवान् कह सकते हैं। वान् (प्रत्यय) से कहीं यह न समझ लेना कि विश्व ग्रलग है. ब्रह्म अलग है। नहीं, नहीं, जिसमें सूत है ऐसा वस्त्र—इसी के माफिक 'जिसमें ब्रह्म प्रविष्ट है, ऐसा जगत्'—यह व्यवहार है। वह ब्रह्म ही सृष्ट स्वरूप में परिणत हो, उसमें प्रविष्ट हो जाता है। अपने एक हिस्से से सृष्ट बन जाता है एवं दूसरे से प्रविष्ट बन जाता है। एक ही ब्रह्म सृष्ट (विश्व) एवं प्रविष्ट (ग्रात्मा) दोनों बना हुग्रा है। इसीलिए तो "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" कहा जाता है। बस, इस प्रविष्ट ब्रह्म की ग्रपेक्षा से, जो कि सत्ता-चेतना-आनन्द स्वरूप है, विश्व के लिए "नित्यंविज्ञान-मानन्दं ब्रह्म"—यह कहा गया है।

इस विश्व में ग्रानन्द–स्वरूप प्रविष्ट ब्रह्म रहता है, अतएव यह विश्व आनन्दमय है, आनन्दवान् है, एवं चूंकि इसमें ज्ञान–स्वरूप ब्रह्म रहता है, ग्रत-एव यह विज्ञानवान् है, ग्रर्थात विविधज्ञानवान् है। इस विश्व में विविध प्रकार के ज्ञान समाविष्ट रहते हैं, ग्रतएव "विविधं ज्ञानंविज्ञानम्" इस व्युत्पत्ति से इस संसार को विज्ञानवान् बतलाया जाता है।

ज्ञान यद्यपि अनन्त प्रकार के हैं तथापि जाति उनकी कुल पांच ही है। पांच ही प्रकार का ज्ञान है। उन पांचों को निम्नलिखित नामों से व्यवहृत किया जाता है—

१. निर्विषयक ज्ञान—विश्वातीत–(शास्त्रानधिकृत) (विविक्त ब्रह्म संबंधी)
२. कर्म्मज निर्गुण विद्याज्ञान—ग्रव्ययानुगत—(सिद्धविद्या)
३. कर्म्मज सगुण विद्याज्ञान—ईश्वरानुगत—(राजविद्या)
४. योगज ज्ञान — —(ग्रणिमामहिमादि योगज सिद्धि)
५. विषय ज्ञान — —(घटपटादिक सामान्यज्ञान)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इन पांचों में से जो निर्विषयक ज्ञान है, वह तो विश्वातीत है अतएव शास्त्रानधिकृत है। जिसके लिए 'यतोवाचोनिवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'—यह कहा जाता है, तटस्थलक्षण मात्र से ज्ञेय वह निर्विषयक ज्ञान है। दूसरा ज्ञान है—कर्म्मज निर्गुण विद्याज्ञान अव्यय, अक्षर, क्षर—इन तीनों में से जो अव्यय है—कर्म्म द्वारा यदि उस अव्यय को पहचान लिया जाता है, तो वह ज्ञान निर्गुण ज्ञान कहलाता है। इसका अन्तिम फल वही निर्विषयक ज्ञान है। शुद्ध अव्यय को पहचान कर निर्विषयक का अधिकारी बन जाना, बस यही गीतोक्त "सिद्धिविद्या" है। परन्तु अव्यय, अक्षर, क्षर—इन तीनों की समष्टि को जो पहचानना है वह कर्म्मज सगुण विद्याज्ञान कहलाता है। अव्ययक्षराक्षर समष्टि को ही चूं कि ईश्वर कहते हैं, अतएव इस सगुण ज्ञान को हमने ईश्वरानुगत बतलाया है। बस, जिस विद्या में भगवान् ने अर्जुन को ईश्वर का अर्थात् कर्म्मज सगुण विद्या का ज्ञान कराया है, वही विद्या "राजविद्या" कहलाती है।

चौथा ज्ञान है योगज ज्ञान। ध्यान, धारणा, समाधि—जब इन तीनों का एकत्र संगम हो जाता है, तो अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा प्राप्ति, प्राकाम्य वशित्व, ईशित्व—ये आठ सिद्धियां हो जाती हैं। इन आठों का एवं और भी अनेक सिद्धियों का विस्तृत विवेचन पातञ्जल योगदर्शन के विभूतिपाद में किया गया है। अतीतानागतज्ञान भी इसी योगजज्ञान के अन्तर्गत है। यह ज्ञान कैसे होता है, इसके लिए महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

धर्म्मलक्षणावस्थापरिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् इति।
(पातञ्जल योगदर्शन ३।१६)

कहने का तात्पर्य यही है कि योगक्रिया से एक विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न हो जाता है जो कि अस्मदादि की अपेक्षा कहीं बढ़-चढ़ कर है। हमें भूत, भविष्यत् यहां तक कि वर्तमान तक का ज्ञान नहीं रहता। परन्तु योगियों को तीनों का ज्ञान प्रत्यक्षवत् होता रहता है। इसीलिए कहा जाता है—

आविर्भूत प्रकाशानामनविप्लुतचेतसाम्।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्नविशिष्यते॥ (वाक्यपदीयम्. ब्र. का. ३७)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

योगज सिद्धि वालों के २८ इन्द्रियाँ हो जाती हैं, हमारे ११ ही रहती हैं। पांचवां ज्ञान है–विषयज्ञान। जो सर्वसाधारण का लौकिक व्यवहारोपयुक्त घटपटादिविषयक ज्ञान है, वही "विषयज्ञान" है। इस प्रकार, ज्ञान के कुल पांच ही भेद हैं। यद्यपि वह ब्रह्म निर्विषयक ज्ञानस्वरूप है, तथापि सृष्टि में अर्थात् विश्व में प्रविष्ट हो कर नाना ज्ञानों में परिणत हो जाता है। एक ही, नाना बन जाता है। चूंकि नाना ज्ञान–समष्टि रहती है उस सृष्ट विश्व के पेट में, अतएव हम विश्व को "विज्ञानवान्" अर्थात् विविधज्ञानवान् कहने के लिए तैयार हैं।

इस प्रकार, जैसे यह विश्व आनन्दमय एवं विविधज्ञानमय है, तद्वत् नित्य भी है। इस विषय का आलम्बन आत्मा अर्थात् प्रविष्ट ब्रह्म है। ब्रह्म अमृतस्वरूप है, नित्य है। भला, जिसका आलम्बन नित्य ब्रह्म है, अमृतब्रह्म है, वह अनित्य एवं मरणधर्म्मा क्यों कर हो सकता है? जो विश्व रात-दिन अमृत पर ही रहता है, वह कैसे मर सकता है? अमृत की एक चुल्लू पी लेने पर जब मनुष्य अमर हो जाता है, तो फिर जो रात-दिन उस अमृत के ऊपर-ऊपर ही नहीं, बाहर-भीतर सब जगह ओत-प्रोत रहता है, वह विश्व क्यों कर मर सकता है? कहना यही है कि यह विश्व आनन्दमय है, विविधज्ञानमय है एवं नित्य है—

आनन्दमयं हीदं विश्वं, विविधज्ञानमयं नित्यं च।

यह विश्व नित्य कैसे है, इसका स्पष्टीकरण करते हैं—

'नित्य'—यह शब्द **"सत्य"** भाव को बतलाता है। जिस वस्तु का भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों में बाध न हो, वही वस्तु सत्य कहलाती है। यह वस्तु सत्य है, इसका कभी परिवर्तन नहीं होता, यह सदा एकसार रहने वाली है, यही तो सत्य का लक्षण है। जब सत्य का यह लक्षण है, तो सुतरां सत्य और नित्य का अभेद सिद्ध हो जाता है। नित्य का अर्थ है सत्य, सत्य का अर्थ है नित्य—

नित्यमितिसत्यंभावमाचष्टे।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हमने प्रकरण के प्रारम्भ में ही अमृत और मृत्यु–ब्रह्म के दो भाग बतलाए थे। ब्रह्म का जो मृत्यु भाग है, वही इसका शरीर कहलाता है। मृत्यु नाम बल का है। यह प्रतिक्षण बदलता रहता है। बल क्रियास्वरूप है। उत्पत्ति, स्थिति, लय–यह धारा–क्रम अनवरत चलता रहता है। इस प्रकार यह मृत्युस्वरूप क्रियास्वरूप विश्व प्रातिस्विकरूपेण, स्व–स्वरूपेणसत्ता के अन्तर्गत नहीं आ सकता। क्रिया तो हर वक्त उत्तरोत्तर में नष्ट होती रहती है। वह सत्तास्वरूपिणी कैसे हो सकती है? इस प्रकार क्रियास्वरूप मृत्युस्वरूप यह विश्व स्व–स्वरूपेण यद्यपि सर्वथा अनित्य है तथापि चूंकि इसका आश्रय यह सत्तास्वरूप प्रविष्ट ब्रह्म है, अतएव प्रतिक्षण नष्ट होने वाला भी यह विश्व निरन्तर अनुच्छिन्न ही प्रतिभासित होता रहता है। सत्ताश्रयत्वात् यह अनित्य विश्व भी नित्यसत्तावत् प्रतिभासित हो रहा है। इसमें प्रमाण की आवश्यकता नहीं। संसार के पदार्थों पर दृष्टि डालिए। उस "अस्ति" भाव के आपको साक्षात् दर्शन हो जाएंगे। घड़ा, कपड़ा, मकान इत्यादि सारा प्रपञ्च क्रियामय है, बलसमष्टि है, यह तो आप मानते ही हैं। इस प्रकार क्रियास्वरूप अतएव एकांततः विनाशी गो–घट-पटादि हैं–उन्हें आप "है" कैसे कह सकते हैं? मात्र यह प्रश्न बाकी बच जाता है। घड़ा है, कपड़ा है, यह आप कभी कह ही नहीं सकते क्यों कि क्रिया सर्वथा विनाशी है एवं क्रियासमष्टि का नाम ही घट-पटादि है। परन्तु "हैं" यह प्रतीति लोकसिद्ध है। तो बस यही 'अस्ति' उस क्रियास्वरूप विश्व का चूंकि आश्रय है, अतएव जगत् सदा नित्यवत् प्रतिभासित होता रहता है। सम्यक् सरणशील होते हुए भी संसार "अस्ति से कभी अलग नहीं होता है।" घड़ा है, घड़ा फूट गया तो मिट्टी है, मिट्टी नष्ट हो गई तो पानी है, यदि घड़ा नष्ट हो गया तो उसका अभाव है। चाहे जैसे उलट–पलट कर आप सत्ता की परीक्षा कर लीजिए। यह सत्ता–यह "है"–पना आपका पीछा कभी नहीं छोड़ सकता है। गंगा का पानी प्रतिक्षण बदलता रहता है, परन्तु गंगाजी १०० वर्ष पहले भी थीं, आज भी हैं. भविष्य में भी रहेंगी। १०० वर्ष पहले यात्रा करने वाले भी "हमने गंगा-स्नान किया था, यह कहा करते थे एवं आज हम भी "हमने गंगा–स्नान किया है"—यह कहने का दावा करते हैं। इसका एकमात्र कारण वही सत्ता–ब्रह्म है। हम उसी में

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

स्नान करने जाते हैं। हमारा उपास्य वही सत्ता-ब्रह्म है। कहने का तात्पर्य यही है कि वही सत्ता चूंकि उस क्रियास्वरूप विश्व का आलम्बन है, अतएव प्रतिक्षण नष्ट होने वाला असत्तास्वरूप भी यह विश्व सदा अस्ति-भान का विषय बना रहता है। दो हजार वर्ष पहले भी जगत् था, आज भी है, आगे भी रहेगा। इस प्रकार सत्ताश्रयत्वेन जगत् त्रिकालावाधस्वरूप बन जाता है। अतएव हम इसे नित्य कहने के लिए तैयार हैं—

"यद्यपीदं विश्वं सत्तारूपं न भवति, तथापि सत्ताश्रयत्वान्नित्यमनुच्छिन्नं शश्वदवभाति।"

सम्पूर्ण कथन का तात्पर्य यही हुआ कि यह विश्व चूंकि सत्ता-चेतना-आनन्दस्वरूप प्रविष्टब्रह्म का आश्रय है, प्रविष्ट ब्रह्म इसमें रहता है, अतएव यह भी सच्चिदानन्द ही है, अर्थात् नित्यसत्तावत् है, विविधज्ञानवत् है एवं आनन्दवत् है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है, जगत् **"सच्चिदानन्दम्"** अर्थात् सत्तावान्-चेतनावान्-आनन्दवान् है। कुछ भी कहो, सच्चिदानन्द के अलावा कोई चौथी चीज है ही नहीं। ब्रह्म और कर्म्म के अलावा और कुछ भी नहीं है। बस, इस प्रकार ब्रह्मवत् विश्व को भी सच्चिदानन्दवान् बतलाती हुई श्रुति कहती है—**"नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।"**

"सत्ताज्ञानानन्दत्रयत्वाच्चेदं विश्वमपि सच्चिदानन्दम्"–तस्मादाह-"नित्यंविज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इति।

ब्रह्मवत् ब्रह्म से उत्पन्न होने वाला जगत् भी सत्ता–चेतना–आनन्दवत् ही है। अतएव **"सर्वंखल्विदं ब्रह्म"** यह श्रुति सार्थक होती है। यदि यह सारा विश्व ब्रह्म से न बना होता, तो **"ब्रह्मैवेदं सर्वम्"** यह क्यों कर कहा जा सकता था? एवमेव यह सारा विश्व यदि ब्रह्मस्वरूप अर्थात् सच्चिदानन्दवान् न होता एवं ब्रह्म से विजातीय होता, तो **"सर्वंखल्विदंब्रह्म"** यह क्यों कर कहा जा सकता था? ब्रह्म और विश्व दोनों सच्चिदानन्द हैं। सच्चिदानन्द के अलावा कोई चौथी वस्तु नहीं है, यह मान लेने पर ही **"ब्रह्मैवेदं सर्वम्"** एवं **"सर्वंखल्विदं ब्रह्म"** ये दोनों श्रुतियां संगत होती हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अतश्चोपपद्यते—सर्वंखल्विदं ब्रह्म, ब्रह्मैवेदं सर्वम् ।

ईश्वर, जीव, जगत्—सारा प्रपञ्च सत्ता-चेतना-आनन्द ही है। सत्ता-चेतना-आनन्द से अतिरिक्त कुछ नहीं है-यह बात यद्यपि पूर्व प्रकरण से सिद्ध हो जाती है तथापि विषय जरा जटिल है। बिना खोल कर बतलाए सहसा समझ में नही आ सकता। अतएव पुनरुक्तिदोष को लक्ष्य में न रख कर, केवल विषय समझ में आ जाए इस पर ध्यान रखते हुए प्रकारान्तर से सत्ता-चेतना-आनन्द का प्रत्यक्ष कराते हैं एवं इन तीनों के अलावा कोई चौथी वस्तु नहीं है, इसकी पुष्टि करते हैं।

जिस प्रकार वह एक ही ब्रह्म सृष्ट स्वरूप में अर्थात् जगत्-स्वरूप में परिणत हो जाता है, तद्वत् एक ही चित् नाना भावों में प्रतिबिम्बित हो कर जीव कहलाने लगता है। १०० घड़ों में पानी भरा रहता है तो एक ही सूर्य्य सौ प्रतिबिम्बित रूपों में परिणत हो जाता है। एवमेव प्रज्ञान पर वह चित् प्रतिबिम्बित हो नाना स्वरूपों में परिणत हो जाता है। इस महाविश्व का वह अन्तःप्रविष्ट एक आत्मा है जो कि इस विश्व के केन्द्र में रहता है, जिसे कि प्रजापति भी कहा करते हैं। इसी प्रविष्ट ब्रह्म के लिए—वृहद्धतस्थौ भुवनेष्वन्तः यह कहा जाता है। विश्वावच्छेदेन वह प्रविष्ट ब्रह्म एक है परन्तु शरीराव-च्छेदेन वही प्रविष्ट प्रतिबिम्बवत् नाना स्वरूपों में परिणत हो जाता है। चिदनुगृहीत सौरप्राणयुक्त जो परमेष्टि का महान् है, वही 'प्रज्ञान' कहलाता है। प्रज्ञान सोममय है। सोम तरल पदार्थ है। जैसे कांच पर ही सूर्य्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है, मिट्टी वगैरः घन पदार्थों पर नहीं, तद्वत् सोम पर ही, जिसे कि हम प्रज्ञान कहेंगे, उस चिद् ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है। सोम ही आप और वायु स्वरूप में परिणत हो जाता है एवं इसी पर पड़ता है चित् का प्रतिबिम्ब एवं चिदाभास को ही कहते हैं जीव। जीव विश्व भर में कुल तीन ही प्रकार के होते हैं। क्यों कि चिद् ग्रहण करने वाला अब्वाय्वात्मक केवल सोम ही है, जिसे कि हमने महान् कहा है एवं जो कि महान् चिदनुगृहीत सौर प्राण के मिल जाने से प्रज्ञान कहलाने लगता है। यह महान् ही इस ब्रह्म का, जिसे कि हम अव्यय भी कह सकते हैं, ग्रहण करता है। अव्यय

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अपना स्वरूप महान् द्वारा ही सम्पन्न करने में समर्थ होता है। इस चिदात्मा अव्यय की योनि महान् ही है। इसी अभिप्राय से भगवान् कहते हैं–

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्त्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।। (गीता १४।३-४)

कहने का तात्पर्य यही है कि अखिल विश्व का वह एक प्रविष्टात्मा प्रतिबिम्बभावेन परिणत हो महान् भेद से नाना स्वरूपों में परिणत हो जाता है। बस, इन नाना चिदात्माओं को (चित् के प्रतिबिम्बों को) ही जीवात्मा कहा जाता है। जो अखिल विश्व का एक आत्मा है, वह ईश्वर कहलाता है एवं महान् भेदेन प्रतिबिम्बित अनन्त चिदाभास जीव कहलाते हैं। कहने को जीव अनन्त हैं, वास्तव में वही ब्रह्म है। सूर्य्य के १० हजार प्रतिबिम्ब हैं। एक प्रतिबिम्ब का दूसरे प्रतिबिम्ब से कोई सम्बन्ध नहीं। यदि एक वर्तन को फोड़ दो, तो उसका प्रतिबिम्ब नष्ट हो जाएगा। अवशिष्ट प्रतिबिम्ब ज्यों के त्यों रहेंगे। एवमेव महान् स्वरूप का, पात्र के फूट जाने पर अर्थात् शरीर के नष्ट हो जाने पर, प्रतिबिम्ब (जीव) निकलेगा, अन्य प्रतिबिम्ब (जीव) ज्यों के त्यों रहेंगे। इस प्रकार परस्पर व्यावहारिक दृष्टि से सारे प्रतिबिम्ब जुदा हैं, परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से देखने पर वस्तुतः सारा भेद झूठा मालूम होता है। दस हजार प्रतिबिम्ब हैं, तो सूर्य्य दस हजार थोड़े ही हो गए? एक ह मिट्टी के 200 घड़े वन गए, तथापि मिट्टी तो एक ही है एवं वही है। दो सौ के दो सौ घड़े एक मिट्टी ही है, एवमेव जीव कहने को अनन्त हैं परन्तु वास्तव में वह एक ही ब्रह्म है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है–

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।।(कठ. उ. २।१।१०)

फर्क ईश्वर और जीव में केवल इतना है कि जीव का शरीर क्षुद्र है, ईश्वर का शरीर विशाल है। जीव षडूर्मि युक्त है, ईश्वर षडूर्मि से रहित

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है। जीव के कान, नाक, आंख, मुंह, नियत स्थान पर रहते हैं, ईश्वर सर्वतः पाणिपाद, सर्वतोऽक्षिशिरोमुख है। ईश्वर के लिए श्रुति कहती है—

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।। (गीता १३।१३)

ईश्वर वर्त्तुल वृत्त है, इसलिए ईश्वर **"पूर्णेन्द्र"** कहलाता है। जीव आधा गोल है, नींबू का आधा हिस्सा है, अतएव यह **"अर्द्धेन्द्र"** है। ईश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ है। ईश्वर सत्य-काम है, जीव मिथ्या-काम है। जीव की इच्छा पूरी हो भी, न भी हो, दोनों ही बाते हैं। ईश्वर की इच्छा पूरी अबाध है। जैसे सूर्य्य के प्रतिविम्ब से सूर्य्य का अन्तर रहता है, तद्वत् ईश्वर और जीव में अन्तर है। सूर्य्य सारे भुवन में व्याप्त है, परन्तु प्रतिविम्बित सूर्य्य दस गज में भी प्रकाश नहीं कर सकता। इसी प्रकार उसी अव्ययांश से उत्पन्न भी जीव, भिन्न स्वरूप को धारण कर लेता है। परन्तु स्मरण रहे, है वास्तव में जीव उसी का अंश। ईश्वर और जीव में भेदसहिष्णु अभेद है। ईश्वर ही जीव बना हुआ है, इसी अभिप्राय से भगवान् कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः । (गीता १५।७)

सूर्य्य का जो प्रतिबिम्ब है, उसमें सूर्य्य के धर्म्मों का भी उदय हो जाता है। सूर्य्य के धर्म्म हैं केन्द्र में स्थित रहना एवं अपने में से चारों ओर किरणें निस्सरित करते रहना। वे प्रतिफलित किरणें विषय-रूप में (घटपटादि स्वरूप में) परिणत होती रहती हैं। बस, ये के ये ही धर्म्म प्रतिबिम्ब में भी उत्पन्न हो जाते हैं। सूर्य्य का प्रतिविम्ब भी ग्राहक, ग्राह्य, ग्रहीता—इन तीन पार्टों (भागों) में विभक्त हो जाता है। प्रतिबिम्बित सूर्य्य अपनी संस्था उस अपने कारणसूर्य्य से सर्वथा स्वतन्त्र कायम रहता है। उसमें से सूर्य्य की तरह किरणें निकलने लगती हैं एवं वह भी सूर्य्यवत् घट-पटादि विषयों को प्रकाशित करने लगता है। वह सूर्य्य अधिक प्रकाश करता है एवं प्रतिबिम्बित सूर्य्य थोड़ा प्रकाश करता है। मात्रा में तारतम्य है बाकी सब काम बराबर हैं। इसीलिए तो **"योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्"** यह कहा जाता है। बात

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वास्तव में ठीक है। पानी भरे लोटे में आप पांच तरह के पदार्थ डाल कर उनका शर्वत बना डालिए। शर्वत बना कर पत्थर पर उस शर्वत की एक बूंद डालिए। जो पदार्थ उस लोटे भरे शर्वत में थे, उन पांचों की सत्ता इस एक बूंद में भी आपको माननी पड़ेगी। हां, मात्रा में अवश्य ही तारतम्य होगा। तालाव भरे पानी में जो शांति करने का धर्म्म है, वही एक बिन्दु पानी में भी मानना पड़ेगा। बस, इसी प्रकार जो ईश्वर है, वही जीव है, यह भी अवश्य ही मानना पड़ता है। इसीलिए तो "योऽहंसोऽसौ, योऽसौ सोऽहम्" यह कहा जाता है।

पूर्वोक्त सारे प्रपञ्च से हमें यही बतलाना है कि वही ईश्वर (प्रविष्ट ब्रह्म) महान् पर प्रतिबिम्बित होकर जीव-स्वरूप में परिणत हो जाता है। ईश्वरवत् यह प्रतिबिम्बित जीव भी अपनी स्वतन्त्र संस्था कायम करता है। उक्थ, अर्क, अशीति—ये तीन भाव ईश्वर में रहते हैं एवं तीन ही जीव में रहते हैं। सूर्य्य जो पिण्ड है, वह "उक्थ" कहलाता है। प्रकाश अर्थात् किरणें उसी बिम्ब से उठती हैं एवं उठ कर चारों ओर फैलती हैं, अतएव उस बिम्ब को "यस्मात् स्थानात् रश्मिरुत्तिष्ठति" इस व्युत्पत्ति से "उक्थ" कहते हैं। एवं उसकी जो वितत किरणें हैं, वे "अर्क" नाम से व्यवहृत होती हैं। एवं विषय रूप में परिणत जो किरणें हैं, उन्हीं का नाम "अशीति" है। विषय ही उस प्रकाश की खूराक है। ग्राहक प्रकाश ग्राह्य से ही अपना स्वरूप कायम करता है। ग्राह्य ही ग्राहक प्रकाश की खूराक है। अतएव विषय को "अशीति" अर्थात् अन्न कहा जाता है। जितने भी प्रकाशी पदार्थ हैं, उन सबमें यही तीन पार्टनर (भागीदार) रहते हैं। यच्चयावत् तेजस्वी पदार्थ उक्थ—अर्क—अशिति इन तीन स्वरूपों में परिणत रहते हैं। दीपक प्रकाशी पदार्थ है। उसकी जो लौ है, वही "उक्थ" है, उसका प्रकाशमण्डल "अर्क" है एवं प्रकाश्य विषय "अशीति" हैं। जिस प्रकार ये तीन भाग प्रकाशी पदार्थों में रहते हैं, तद्वत् इनके अर्कों का अर्थात् रश्मियों का जो प्रतिबिम्ब है, उसमें भी ये तीनों भाव उत्पन्न हो जाते हैं। पानी पर प्रतिबिम्बित रश्मि उस प्रतिबिम्वत सूर्य्य की उक्थ बन जाती है। सूर्य्य का अर्क, प्रतिबिम्ब का उक्थ बन जाता है। सूर्य्यवत् प्रतिबिम्ब में से भी किरणें निकलने लगती हैं एवं वह भी सूर्य्यवत् विषयों को प्रकाशित करने लगती हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

चूं कि ईश्वर ज्ञान-स्वरूप है, अतएव प्रकाशी पदार्थ है। प्रकाशी क्या है, सूर्य्यादि प्रकाशी पदार्थों को भी प्रकाशित करने वाला है। भूतज्योति मात्र प्रकाश में रक्खे हुए पदार्थों को दिखलाती है, परन्तु ज्ञान-ज्योति, प्रकाश-अन्धकार दोनों का ज्ञान करवाती है। सूर्य्य, चन्द्र को भी प्रकाशित यही ज्ञान-ज्योति करती है। भला, भूतज्योति में जब ग्राहक-ग्रहीता-ग्राह्य—ये तीनों शक्तियां हैं, तो फिर ज्ञानज्योति का तो कहना ही क्या है ? अवश्य ही, इसमें भी ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेय–ये तीन भाग समझने चाहिए।

जैसे उस ज्ञानमूर्ति ईश्वर में ये तीन भाग हैं, तद्वत् इसके प्रतिबिम्ब-भूत जीव में भी ये तीन भाग अवश्य ही मानने पड़ेंगे, फर्क इतना है, यह क्षुद्र-शरीरावच्छिन्न हैं, वह विशाल-शरीरावच्छिन्न है। यह सारा महाविश्व उसका शरीर है एवं अस्थि मांस वाला यह क्षुद्र शरीर, जीवात्मा का विश्व है। उस महाविश्व का अधिष्ठाता वह है, इस क्षुद्र शरीर का अधिष्ठाता शरीरावच्छिन्न जीवात्मा है। हमने बतला दिया है कि प्रतिबिम्ब में प्रतिबिम्बी के धर्म्म आ जाया करते हैं। चूं कि जीव प्रतिबिम्ब है, चिदाभास है. अतएव इसमें भी अपने प्रतिबिम्बी के (ईश्वर के) कितने ही धर्म्मों का समावेश हो जाता है। ईश्वर जैसे नई-नई सृष्टियां बनाता है, तद्वत् यह जीव भी नई-नई सृष्टियां बनाने लगता है। परन्तु चूं कि यह उस ईश्वर के पेट में है, अतएव इसे अपनी निर्म्माण-क्रिया में ईश्वरीय जगत् का ही सहारा लेना पड़ता है। यह जीव अपने ज्ञान से ही बाह्य जगत् सदृश अपने अन्तर्जगत् में खयाली पुलाव से नए निर्म्माण किया करता है एवं निर्म्माण कर उन्हें अपने आत्मा में रख लिया करता है। बस, ज्ञान से बना हुआ वह ज्ञानीय जगत् भावना–वासना रूप से जीवात्मा में अनन्तकाल तक स्थिर रहता है।

जिस समय मनुष्य एकान्त में, घोर अन्धकार में बैठ जाता है, उस समय वह खयाली जगत् बनाया करता करता है। मकान, कुंआ, बावड़ी, तालाब, हाथी, इत्यादि अनन्त पदार्थों की रचना वह अपने मस्तिष्क से, अपने ज्ञान ही से किया करता है, खयाली सृष्टि बनाया करता है। यह सृष्टि अपूर्व शिल्प एवं प्रतिरूप शिल्प भेदेन दो प्रकार की है। संसार में जो वस्तु है ही नहीं, उसका पहले केवल अपने ज्ञान से ही अविष्कार करना–अपूर्व

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शिल्प कहलाता है। घड़ा ईश्वरीय ज्ञान की वस्तु नहीं है, अपितु जीव-ज्ञान की वस्तु है। कारीगर सोचता है कि अपने को एक मकान बनाना है। बस, उस मकान का निर्म्माण वह अपने मस्तिक में ही करने लगता है। सारे मकान का नक्शा, जो कि मकान आज सारे पृथिवी-मण्डल भर में नहीं है, अपने मस्तिष्क में बिना दूसरे की सहायता के, खींच लेता है। बाद में ईश्वरीय जगत् के जो पत्थर, चूना वगैरः हैं, उन्हें उस ज्ञानीय जगत् में यथास्थान बैठा कर उस ज्ञानीय जगत् की सत्ता, अपने से बाहर, इस सत्ता-सिद्ध जगत् में कायम कर देता है। बस, इसी का नाम "अपूर्व-शिल्प" है। नया आविष्कार, इसी अपूर्व शिल्प के अन्तर्गत है। दूसरा शिल्प है—"प्रतिरूप शिल्प"। प्रकृतिसिद्ध जो हाथी, घोड़े, वन वगैरः हैं उनको अपने ज्ञानीय कैमरे में उतारना, बाद में उस ज्ञान-जगत् में बहिर्जगत् के रंग वगैरः भर कर, उन्हें बाहर निकाल देना "प्रतिरूप शिल्प" कहलाता है। प्रकृति की नकल पर निर्म्मण करना, प्रतिरूप शिल्प है एवं अपनी उपज से स्वातंत्र्येण नया निर्म्मण करना अपूर्व शिल्प है। अपूर्व जगत् का निर्म्माण जीव अवश्य करता है, परन्तु इसमें भी ईश्वरीय जगत् की अपेक्षा है ही है। प्रधानता सत्ता-सिद्ध जगत् की है, न कि जीव के भाति सिद्ध जगत् की। अस्तु, प्रकृत में हमें यही बतलाना है कि यह जीव अपने ज्ञान से बाह्यजगत् सदृश नव-निर्म्माण करके, जो कि अन्तर्जगत् कहलाता है, उसे अपने आत्मा पर ही प्रतिष्ठित कर लेता है। बस, आत्मा पर प्रतिष्ठित जो जगत् है, उसी का नाम "भावना और वासना" है।

ज्ञानजन्य संस्कार को "भावना" कहते हैं एवं कर्म्मजन्य संस्कार को "वासना" कहते हैं। मिट्टी पर हाथ की थापी देने से जो एक ठप्पा उपड़ आता है, वही वासना संस्कार है जो कि हाथ के धक्के के स्वरूप कर्म्म से उत्पन्न हुआ है। ज्ञानजन्य संस्कार भावना है। ज्ञानजन्य संस्कार है—प्रेमी का वियोग। किसी का हमारे साथ स्नेह हो जाता है, तो उसका खयाल हमारे में समाया रहता है। हम हर वक्त उसका ध्यान किया करते हैं। उसके बिना हमें एक मिनट भी चैन नहीं पड़ता। बस, यह प्रत्यक्ष दृष्ट जो ज्ञानजन्य संस्कार है, उसी का नाम भावना है। भावना का प्रत्यक्ष में अनुभव हुआ करता है,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

परन्तु वासना परोक्ष है। वासना कर्म्मजन्या है, अतएव परोक्ष है। "अहं जानामि"—इस प्रकार ज्ञान ही का स्वरूप समझ में आता है, कर्म्म का स्वरूप समझ में नहीं आ सकता। हमें क्रोध आता है, तो उसका जो आत्मा पर असर पड़ता है, वही वासना है। क्रोध का असर कैसे पड़ा, इसका भावनावत् हम प्रत्यक्ष नहीं करते। परन्तु जब क्रोध के मारे थोड़े समय के अनन्तर हमारा शरीर सूख कर काँटा हो जाता है, तो तदनन्तर वासना का स्वरूप मालूम पड़ता है। एवमेव मिथ्यानिर्म्मित जो संस्कार है, उसे भी वासना ही कहते हैं। मिथ्या बोलने से आत्मा पर क्या असर होता है, इसका हमें पता नहीं रहता। अन्त में इसी परोक्ष मिथ्याजनित वासना से एकदम हमारा पतन हो जाता है। फल भावना और वासना दोनों का समान है। परन्तु वासना परोक्ष है, भावना प्रत्यक्ष है। बस, हमारे शरीर में ज्ञान और क्रिया दो ही पदार्थ हैं। हम जानते हैं एवं कुछ कर्म्म करते हैं। अतएव इनसे निर्मित जगत् भी भावना–वासना भेदेन दो प्रकार का उत्पन्न होता है। बस, यह भावना और वासना आत्मा पर प्रतिष्ठित हो जाती है एवं अनन्त काल तक बनी रहती है। यही वासना उस बन्धन-रहित आत्मा को लिप्त कर कर्म्म-भोग हेतु लोकान्तर में जाने के लिए बाध्य करती है। बस, इस जगत्-निर्म्माण में प्रधान कारण भी वासना ही है। अन्धकार में बैठने पर वही वासना उद्बुद्ध हो कर नये खयाली जगत् का क्षुद्र शरीरावच्छिन्न जीवात्मा द्वारा निर्म्माण करवाती है एवं उस निर्म्माण से भावना-वासना संस्कार और उत्पन्न हो जाते हैं एवं दोनों ही आत्मा पर सवार रहते हैं। चूंकि वासना से प्रेरित जीवात्मा ज्ञान से नई वस्तु बना कर उसे अपने ज्ञान में ही प्रतिष्ठित रखता है, अतएव इस जीवनिर्म्मित जगत् को "अन्तर्जगत्" कहते हैं। सम्पूर्ण कथन का तात्पर्य यही हुआ कि यह क्षुद्र शरीरावच्छिन्न जीवात्मा वासनावशात् बहिर्जगतवत् नया निर्म्माण कर, जो जगत् कि भावना-वासनात्मक है। उसे अपने ऊपर प्रतिष्ठित रखता है। यही वासनास्वरूप अन्तर्जगत् अनन्तकाल तक आत्मा पर प्रतिष्ठित रहता है। बस, इसी जीव-विज्ञान को बतलाने के अभिप्राय से कहते हैं—

"अथवा यथा क्षुद्रशरीरावच्छिन्नः शरीराधिष्ठाता जीवः स्वज्ञानेन बाह्यजगत्सदृशं किञ्चिदन्तर्जगदात्मना भावयन् आत्मनि धत्ते। तच्च भावना-वासनारूपाभ्यामस्मिन् जीवे चिरायावतिष्ठते।" (अन्तर्जगदितिशेषः)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यह तो हुई जीव-जगत् की बात। अब लीजिए उस महाविशाल ईश्वर जगत् की। जैसे हम अपने ज्ञान से वासना द्वारा अन्तर्जगत् का निर्म्माण कर भावनावासना रूप से अपने ऊपर प्रतिष्ठित रखते हैं, तद्वत् महाविशाल विश्वावच्छिन्न (जिसमें कि स्वयम्भू, परमेष्ठि, सूर्य्य, चन्द्र, पृथिवी—ये पांचों पिण्ड समा जाते हैं) इस विश्व का अधिष्ठाता केन्द्रस्थ भगवान् प्रजापतिरीश्वर अपने ही ज्ञान से, अपने आत्मा से अन्तर्जगत् वनाता हुआ उसे अपने ऊपर प्रतिष्ठित रखता है। उसका यह अन्तर्जगत् भावनावासनास्वरूप से उसी ईश्वर में प्रतिष्ठित रहता है। बस, ईश्वर के ज्ञान से बने हुए ईश्वरीय अन्तर्जगत् को हम अपनी अपेक्षा से "बहिर्जगत्" कहने लगते हैं। हमारा जो अन्तर्जगत् है, वह सब हमारे ज्ञान पर ही प्रतिष्ठित रहता है। हमें घट-पटादि जितने भी पदार्थों का प्रत्यक्ष होता है, ज्ञान-पटल पर होता है। हमारा अन्तर्जगत् जैसे हमारे ज्ञान पर ही प्रतिष्ठित रहता है, तद्वत् जगत्त्व सादृश्यात् यह महाविशाल ब्रह्माण्ड भी किसी न किसी के ज्ञान पर ही वैठा हुआ है, यह मानना पड़ेगा। बस, जिसके ज्ञान में यह विशाल विश्व वैठा हुआ है, वही ईश्वर है। हमें जिन पदार्थों का अन्तर्जगत् में प्रत्यक्ष होता है, वे हमारे ज्ञान से ही बने हुए हैं, वहिर्जगत् से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव हमारे इस जगत् को हम अपना "अन्तर्जगत्" कहने के लिए तैयार हैं तद्वत् चूंकि यह बहिर्जगत् ईश्वर के ज्ञान से वना है एवं उसी के महाज्ञान पर यह महाविश्व प्रतिष्ठित है, अतएव हम इस महाविशाल विश्व को अवश्य ही ईश्वर का "अन्तर्जगत्" कह सकते हैं। यही ईश्वरान्तर्जगत् हमारी अपेक्षा परोक्ष है, बहिःस्थित है, अतएव हम इसे बहिर्जगत् ही कहेंगे। बस, इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"एवं महाविशालविश्वावच्छिन्नो विश्वाधिष्ठातायमीश्वरः स्वज्ञानेन किञ्चिदन्तर्जगदात्मना भावयन्नात्मनिधत्ते, तदस्य भावनावासनारूपाभ्यामस्मिन्नीश्वरे शश्वदवतिष्ठते। तदेवेदमस्माभिर्जीवैर्बाह्यं जगदित्याख्यायते।"

ईश्वर नित्य है, अतएव उसका जगत् भी नित्य ही है, इसीलिए ईश्वरीय अन्तर्जगत् के लिए "शाश्वदवतिष्ठते" यह कहा गया है एवं जीव प्रतिविम्बस्वरूप है, आज है और कल अपने कारण में गायब—अतएव जीवा-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

न्तर्जगत् के लिए **"चिरायावतिष्ठते"** यह कहा गया है। पूर्वोक्त प्रपञ्च से बतलाना हमें यही है कि ईश्वर के ज्ञान से बना हुआ जो ईश्वरीय अन्तर्जगत् है एवं जीव के ज्ञान से बना हुआ जो जीवान्तर्जगत् है, उसी का हम **"सत्ता"** यह नाम रखते हैं। ज्ञानीय जगत् का नाम ही सत्ता है—**"तान्येवसत्तांनामाकलयामः"**।

आनन्द-विज्ञान-सत्ता यही ब्रह्म का असली स्वरूप है अतएव ब्रह्म को **"सच्चिदानन्द"** कहा जाता है। सत्ता-चेतना-आनन्द इन तीनों में से जो सत्ता है, उसमें मन-प्राण-वाक् ये तीन चीजें शामिल रहती हैं। मन-प्राण-वाक् के संघात का नाम ही सत्ता है। ये तीन ही संसार का असली स्वरूप हैं। मन क्या है, प्राण क्या है एवं वाक् क्या है, इनका विस्तृत विवेचन इस प्रकरण के अनन्तर किया जाएगा। यहां केवल इतनाही समझ लेना पर्याप्त होगा कि आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण-वाक्-ये अव्यय प्रजापति की पांच कलाएं हैं। सारी सृष्टि का निर्म्माण, सारी प्रजा का निर्म्माण, इसी प्रकृतिविशिष्ट पुरुष प्रजापति से होता है, अतएव वह प्रजापति कहलाता है। इसकी पाँच कलाओं में से मन-प्राण-वाक् का नाम सत्ता है। मन-प्राण-वाक् अमृत भाग है एवं नाम-रूप-कर्म्म ये मर्त्य भाग है। बस, विश्व में सारा प्रपञ्च नाम-रूप-कर्म्मात्मक ही है। मन-प्राण-वाक्-नाम-रूप-कर्म्म इनकी समष्टि को ही चूंकि शरीर कहते हैं एवं ये संख्या में ६ हैं, अतएव शरीर को **"षाट्कौशिक"** कहा जाता है। एक ही सच्चिदानन्द विश्वस्वरूप में परिणत हो जाता है। आनन्द-विज्ञान-सत्ता तीनों एक ब्रह्म का स्वरूप हैं। मन-प्राण-वाक्-नाम-रूप-कर्म्म का नाम है सत्ता एवं यही है विश्व, ऐसी हालत में विश्व को क्यों कर सच्चिदानन्द-सम्पत्ति से पृथक् किया जा सकता है?, ईश्वर-ज्ञान से एवं जीव-ज्ञान से परिणममान जो एक भाव (पदार्थ) है, उसी का नाम सत्ता है। ज्ञान ही सत्ता बना हुआ है। सत्ता ही जगत् है। फिर विश्व ही क्यों नहीं सच्चिदानन्द कहा जा सकता? अवश्य ही कहा जा सकता है। **"तथा चेश्वरज्ञानेन परिणममानो भावः सत्ता"** इति।

हमने बतालाया है कि ज्ञान-रश्मियों से ही जगत् का निर्म्माण होता है। ये रश्मियां जिस स्थान से निकलती हैं, उस केन्द्रस्थ ज्ञानघन का ज्ञानकन्दल का नाम ही आनन्द है। उसी ज्ञान-कन्दल में से दीपवत् रश्मि

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ओर ज्ञान–रश्मियां निकल कर फैलती हैं। जो रश्मि–संचारक केन्द्रस्थ भाव है, जिसका जीव–ज्ञान और ईश्वर-ज्ञान अंश है, वही अंशी आनन्द नाम से व्यवहृत है। उदाहरणार्थ सूर्य्यविम्व आनन्द है और उस विम्व में से चारों ओर निकलने वाली रश्मियां ज्ञान हैं। केन्द्रस्थ ज्ञानघन, ज्ञान न कहला कर, उत्तरोत्तर केन्द्र को न छोड़ कर वढ़ते रहने के कारण, आनन्द कहलाता है एवं अनन्तानन्त विषयों को उत्पन्न करने के कारण वे वाहर निकलती हुई रश्मियां "ज्ञान" नाम से व्यवहृत होती हैं। इस प्रकार एक ही ज्ञान, कंदल और रश्मि स्वरूपेण आनन्द और ज्ञान इन दो स्वरूपों में परिणत हो जाता है। केन्द्रस्थ अंशी भाव "आनन्द" है, केन्द्र से निकल कर रश्मिरूप से चारों ओर वितत होने वाला ज्ञानांश ही "ज्ञान" है। यह आनन्द और ज्ञान का विभाग जीवेश्वर में समान है। इस विश्व का जो केन्द्रस्थ ज्ञान-कन्दल है, वह आनन्द है एवं जहां तक इसकी रश्मियों का प्रसार है, वे फैली हुई रश्मियां ही ज्ञान हैं। एवमेव हमारे केन्द्र में स्थित जो ज्ञान-कन्दल है, उसे हम आनन्द कहेंगे। उस केन्द्र में से चारों ओर फैलने वाली जो ज्ञान-रश्मियां हैं, जिनमें कि हमारा अन्तर्जगत् प्रतिष्ठित रहता है, वही ज्ञान है। एक ही चीज की दो अवस्थाओं का नाम आनन्द और विज्ञान है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"एतदुभयविधं ज्ञानं यस्य रश्मिः, यस्यांशाः, सोऽंशी हृदयस्थो रश्मि संचारकोभाव आनन्दः।"

जीवेश्वरभेदेन, यह आनन्द समष्टि और व्यष्टि-इन दो स्वरूपों में परिणत हो जाता है। जीवानन्द को व्यष्ट्यानन्द कहते हैं, ईश्वरानन्द को समष्ट्यानन्द कहते हैं। आनन्द ही के समान ज्ञान और सत्ता के भी दो प्रकार हैं। जो हमारी आनन्द विज्ञान सत्ता है, वह विशेष है, एवं ईश्वर की आनन्दविज्ञान सत्ता सामान्य है। जो सबसे छोटा आनन्द है, वही विशेष कहलाता है। इस विशेष को आप उत्तरोत्तर वढ़ाते चले जाइए। आखिर कहीं-न-कहीं इसकी समाप्ति माननी ही पड़ेगी। एवमेव सत्ता और ज्ञान की भी कोई-न-कोई परासीमा माननी ही पड़ेगी बस, उस अंतिम निर्विशेषानन्द विज्ञान सत्ता को हम सामान्य आनन्द-ज्ञान सत्ता कहने के लिए तैयार हैं, यही ईश्वरीय सत्ता, चेतना, आनन्द

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है। इसी का नाम समष्टि है एवं इस समष्टि के पेट में व्यष्टि-स्वरू जो जीवानन्द है, वही व्यष्ट्यानन्द नाम से प्रसिद्ध है।

परम सत्ता, परम ज्ञान, परम ग्रानन्द-इन तीनों की समष्टि का ना ही परमेश्वर है एवं इन परमसत्तादि के पेट में जो-जो ग्रवम सत्तादि उनकी समष्टि का नाम ही जीव है। कहना इससे हमें यही है कि उस स ष्ट्यानन्द की, ग्रर्थात् ईश्वर की, चारों ग्रोर फैलने वाली जो ज्ञान-रश्मि हैं, वे ही जब प्रतिफलित होती हैं, तो विषय-स्वरूप में परिणत हो जाती है बस, उसी का नाम "बहिर्जगत्" है। चारों ग्रोर से वितरित होती हुई ज्ञा रश्मियां, प्रतिफलन क्रिया से जिन पदार्थों को बनाती हैं, उन पदार्थों ही "सत्ता" कहते हैं। बस, वही बाह्य जगत् का स्वरूप है।

ज्ञाता, ज्ञान ग्रौर ज्ञेय-इन तीनों में से ज्ञान ग्रौर ज्ञाता के ग्रर्थात् आन ग्रौर ज्ञान के विषय में तो कोई विवाद नहीं है। ज्ञाता ही रश्मिरूप से बा निकल कर ज्ञान बन जाता है, आनंद ही विज्ञान बन जाता है बाकी बचता है ज्ञे इस ज्ञान में प्रतिभासित होने वाले घटपटादि ज्ञान से वह विजातीय है ग्रथ सजातीय, इस विषय में ग्रनेक विवाद हैं। विवादों के ग्रनन्तर सिद्ध यही होता कि जैसे मिट्टी ही घड़ा बन जाती है, सूत ही कपड़ा बन जाता है, तद्वत् ज्ञा ही ज्ञेय बन जाता है। ज्ञान में पृथक् बैठा हुआ जो जगत् है, ज्ञानसत्ता से सत् है। मृत्तिका की सत्ता से ही घट "ग्रस्ति" का ग्रधिकारी बनता है जैसे आत्मा, बिना ग्रात्मन्वी के कोई वस्तु नहीं तद्वत् ज्ञान बिना, ज्ञेय ज कोई वस्तु नहीं। ज्ञान ही जगत् का प्रभव है, ज्ञान ही जगत् की प्रतिष्ठा ज्ञान ही जगत् का परायण है। भला, ऐसी हालत में जगत् ज्ञान से भि क्यों कर हो सकता है ? ज्ञान ही तो ज्ञेय का स्वरूप है। जो प्रकाशी पद होते हैं, वे ग्राहक ग्रौर ग्राह्य—इन दो स्वरूपों में परिणत हो कर ही ग्र स्थिति कायम करते हैं। इसीलिए तो—

"ग्राह्यत्वं ग्राहकत्वं च द्वे शक्ती तेजसोमते"—यह कहा जाता है। जि ग्राप घड़ा है, वस्त्र है, पर्वत है, सूर्य्य है, यह कह रहे हैं, वह ज्ञान ही की सत्ता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कहने का तात्पर्य्य यही है कि जो मेरा अन्तर्जगत् है, वह मेरा ज्ञान ही है, मेरा ज्ञान ही अन्तर्जगत् बना हुआ है। मैं जो कुछ जानता हूं वह मेरे ज्ञान से बना हुआ है एवं वह ज्ञान ही—"अहं" है। ज्ञान ही तो अहं का स्वरूप है। इस प्रकार ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय—कहने को तीन हैं, वास्तव में तीनों एक हैं। केन्द्रस्थ ज्ञान-कन्दल का नाम ज्ञाता है, वही आनन्द है, एवं रश्मिरूप में परिणत ज्ञान, ज्ञान है; परावर्तित ज्ञान, ज्ञेय है। तीनों ज्ञान ही हैं। तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर त्रित्व सर्वथा मिथ्या है। व्यवहार के लिए तीनों, तीन हैं; वास्तव में तीनों एकरूप हैं।

हमारे अन्तर्जगत का निर्म्माण हमारे ही ज्ञान से होता है—इसका विशद विवेचन करना, प्रकृत से दूर जाना है। आगे फिर किसी प्रकरण में इसका विस्तृत विवेचन करेंगे। अन्तर्जगत् क्या है, वहिर्जगत् क्या है, इसका सुविस्तृत विवेचन "संशयतदुच्छेदवाद" नाम के ग्रन्थ में देखना चाहिए। यहां केवल एक वात और कह कर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे। कल्पना कर लीजिए, १० आदमी वैठे-वैठे अपने मस्तिष्क से कल्पनाएं कर रहे हैं। सब अपना स्वतन्त्र खयाली जगत् बना रहे हैं। हम आप से पूछते हैं कि क्या आप वतला सकते हैं कि दूसरा मनुष्य किस जगत् को अपने ज्ञान से वना रहा है? आपको सिवाय नहीं के, और कोई उत्तर न मिलेगा। तो वस, जब अन्य मनुष्य के अन्तर्जगत् को आप नहीं देख सकते, जो मनुष्य कि आपके सामने बैठा हुआ है, तो फिर सर्वथा परोक्ष उस ईश्वर के अन्तर्जगत् को, जो कि आपकी अपेक्षा वहिर्जगत् है; आप क्यों कर देख सकते हैं? इससे मानना पड़ता है कि हम जो-कुछ देखते हैं, वह सब हमारे ज्ञान की ही वस्तु है। ईश्वरीय वहिर्जगत् का हमारे से कोई सम्बन्ध नहीं है। एवमेव जगत्त्व-,सादृश्यात् बहिर्जगत् को भी जो कि ईश्वर का अन्तर्जगत् है, ईश्वर के ज्ञान से बना मानना पड़ेगा।

कहने का तात्पर्य्य यही है कि समष्ट्यानन्द, अर्थात् ईश्वर के चारों ओर वितत जो ज्ञान-रश्मियां हैं, वे ही विषयरूपों को वनाती हैं एवं ज्ञान से निर्म्मित जो पदार्थ हैं उन्हीं का नाम सत्ता है—ज्ञान ही सत्ता बना हुआ है। बस, ईश्वरीयज्ञानविनिर्म्मित पदार्थों को ही सत्ता कहते हैं एवं वही बहिर्जगत्

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy: Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कहलाता है। सूर्य्यचन्द्रादि युक्त जो एक महाविशाल विश्व दिखलाई दे रहा है, वह इसी ईश्वर का अन्तर्जगत् है—यह सारा जगत् जिसे कि सत्ता कहते हैं, जो कि सत्ता, मनप्राणवाङ्मय है—ईश्वर के ज्ञान से निर्म्मित है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"समष्ट्यानन्दस्य परितस्तता ज्ञानरश्मयो विषयरूपाणि कल्पयन्तः सत्ताभावा इदं बाह्यं जगत्।"

बस, ठीक यही बात व्यष्ट्यानन्द में अर्थात् जीव में समझनी चाहिए। व्यष्ट्यानन्द के चारों ओर वितत जो ज्ञान रश्मियां हैं, वे ही घटपटादि विषय रूपों को बना कर सत्ता कहलाने लगती हैं। वही हमारा अन्तर्जगत् है—

"अथ व्यष्ट्यानन्दस्यतु परितस्तता ज्ञानरश्मयो विषयरूपाणि कल्पयन्तः सत्ताभावा इदमन्तर्जगदिति भाव्यते।"

इस प्रकार आनन्द अंशी है, ज्ञान और ज्ञेय उसी आनन्द के अंश हैं। भला, अंश और अंशी में भी कभी भेद हुआ है? हर्गिज नहीं, ज्ञान ही सत्ता है, सत्ता ही ज्ञान है—

"तथा च अंशांशिनोरभेदाध्यवसायादानन्द एव ज्ञानम्, ज्ञानमेवेयं सत्ता च।"

इस प्रकार यह एक ही भाव, एक ही ब्रह्म पदार्थ, सत्ता–चेतना–आनन्द–इन तीन भावों से व्यवहृत किया जाता है। वस्तुतः तीन नहीं हैं अपितु तीनों एक ही हैं। हम ज्ञानस्वरूप हैं एवं हमारा अन्तर्जगत् चूं कि हमारे ज्ञान से ही बना है, अतएव वह भी, ज्ञानस्वरूप ही है। जबकि ज्ञान से ही बना हुआ हमारा अन्तर्जगत् है, तो वह हमारे से अभिन्न है। हमारा अन्तर्जगत् वस्तुतः हम ही है। एवमेव जिस महाज्ञान के अंश हम जीव हैं, उसके ज्ञानस्वरूपत्व का तो कहना ही क्या है? एवमेव ईश्वर के ज्ञान से बना हुआ जगत् है, वह भी जगत्त्व साहश्यात् उसके ज्ञान से ही बना हुआ मानना पड़ेगा। जब बहिर्जगत् ईश्वर के ज्ञान से बना हुआ है, तो सुतरां दोनों का अभेद सिद्ध हो गया। इस प्रकार जीव और उसका अन्तर्जगत् अभिन्न हैं एवं ईश्वर और बहिर्जगत् अभिन्न

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हैं, एवं हम उसी के अंश हैं, अतएव जीव और ईश्वर में अभेद है। बतलाइए, क्या अब भी आपकी दृष्टि में भेदभाव रहा ? कदाचित् कहो कि अच्छा साहब आपके कहने से थोड़ी देर के लिए जीवेश्वर में अभेद मान भी लेते हैं, तो भी मन–प्राण–वाक्—जगत् के जो ये तीन भाव हैं, इनको आप कैसे छुपा सकते हैं ? यद्यपि इस प्रश्न का उत्तर हो गया, तथापि आप नहीं समझे हैं तो और समझ लीजिए। मन–प्राण–वाक्—ये आपने तीन पदार्थ समझ रखे होंगे। बड़ा भ्रम है। बड़ा अज्ञान है। कृपानिधान, प्राण से वाक् बनती है एवं मन से प्राण बनता है। एक ही तत्त्व है। उसकी कारण-स्थूल-सूक्ष्म अवस्था का नाम ही मन–प्राण–वाक् है। यदि घड़ा और मिट्टी दो हैं, तो मन-प्राण-वाक् भी तीन चीजें हो सकती हैं। बस, इस विषय में अधिक न कह कर हमें केवल यही कहना है कि तीनपना (त्रेतं) कुछ भी नहीं है, वास्तव में एक ही ब्रह्म है। जब ब्रह्म ही सब कुछ है, तो जगत् को सच्चिदानन्द की लाइन (लीक, पंक्ति) से अलग कैसे बतलाया जा सकता है ?

"एवमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन"—यही हमारा अन्तिम सिद्धांत है।

इस जगत्-ब्रह्म का आश्रय सत्ता है, अर्थात् कर्म्म-ब्रह्म का आश्रय मन-प्राण-वाक् समष्टि रूप सत्ता है। सत्ता ही को कहते हैं सत्य। अतएव यह जगत् भी सत्य अर्थात् नित्य शब्देन व्यवहृत होता है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चनेति सिद्धान्तः। सत्ताश्रयत्वाच्चेदमेकं ब्रह्म सत्यं व्यपदिश्यते।"

सम्पूर्ण कथन का सारांश यही हुआ कि यह विश्व चूं कि उसी के ज्ञान से बना हुआ है और फलतः उससे अभिन्न है अतएव उस कारणवत् यह कार्य्य-विश्व भी सच्चिदानन्दवत् ही है।

एक ही रस, एक ही सत्य मायावच्छेदेन सृष्ट, सृष्टानुप्रविष्ट, एवं प्रविविक्त इन तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है, यह बात हम पूर्व प्रकरण में बतला आए हैं, उसी का स्पष्टीकरण और कर देते हैं। रस और बल का

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सम्बन्ध अनन्त प्रकार का है, जिन सम्बन्धों का विस्तृत विवेचन "संशयवाद" में किया गया है। उन अनन्त सम्बन्धों में से हमारा सम्बन्ध केवल तीन सम्बन्धों से ही है। विभूति, योग और बन्ध—यही तीन सम्बन्ध प्रकृत से सम्बन्ध हैं। सूर्य्य की रश्मियां ही सुवर्ण बनाती हैं। रस, उपरस, धातु, उपधातु, विष उपविष-इत्यादि सारे पदार्थ सूर्य्य से रश्मि रूप में परिणत हो कर हर वक्त जमीन पर गिरा करते हैं, परन्तु साथ ही ऊपर उसी में चले भी जाया करते हैं। इन धातु आदि पदार्थों के ग्राहक प्राण भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। ऊपर से आती हुई सुवर्ण-रश्मियों का प्राण भिन्न प्रकार का है। विष को ग्रहण करने वाला प्राण भिन्न प्रकार का है, तांबे को ग्रहण करने वाला प्राण जुदा है। गरज यह कि, सबके ग्राहक प्राण सर्वथा पृथक्-पृथक् हैं। सब प्राण सर्वत्र नहीं हैं। कहीं कोई प्राण अधिक है, कहीं दूसरा अधिक है, कहीं एक प्राण की सत्ता है, तो कहीं दूसरे का अभाव है। यही कारण है, कहीं सोने की खान है, कहीं चांदी की खान है तो कहीं कोयले की खान है। जब कि सारे पदार्थ समान रूप से सूर्य्य में से जमीन पर गिरते हैं तो फिर क्यों न सब जगह सब चीजें बन जातीं? इस प्रश्न का वही पूर्वोक्त उत्तर है। वास्तव में सूर्य्य में से सारे पदार्थ पृथिवी पर समान रूप से ही आते हैं, परन्तु सर्वत्र उनकी स्थिति नहीं रहती। जिस वस्तु का जो ग्राहक प्राण पृथिवी के जिस भाग में होगा, वहीं वह आता हुआ पदार्थ उस प्राण की पकड़ में आ कर अपनी सत्ता कायम करेगा, बाकी बचा हुआ वापस सूर्य्य में ही चला जाएगा। परन्तु इस प्राण में भी एक विशेषता है। वह विशेषता यही है कि प्राण भी बिना भूत के नहीं रह सकता है। मैटर (Matter) बिना प्राण के नहीं रह सकता, प्राण बिना मैटर के नहीं रहता। दोनों लाजिमो मलजूम हैं। मिट्टी बगैरः, भूतों के आश्रय से ही ये सौर पदार्थ ग्राहक प्राण रहते हैं। बस, मिट्टी-पाषाण आदि के विजातीय होने का भी प्रधान कारण यही है। प्राण चूं कि विजातीय हैं अतः उनके आश्रयभूत भूत भी विजातीय हो जाते हैं। इसीलिए एक ही मिट्टी ६४ तरह की हो जाती है, एक ही वायु ४९ तरह का हो जाता है। इन ६४ मिट्टियों में से एक मिट्टी ऐसी है जो सूर्य्य में से आती हुई सुवर्ण-रश्मियों को अपने में बद्ध कर लेती है। बस, उस प्राण में बद्ध रश्मि को ही "सुवर्ण" कहते हैं। सुवर्ण साक्षात् सूर्य्य की रश्मि है। हवा फिल्टर करना, दूषित वायु को नेस्तनाबूद

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

करना, यह सूर्य्य का काम है, अतएव भारतीय धर्म्म में पवित्रता करने के लिए सुवर्ण को प्रधान माना है। यदि किसी का अपवित्र वस्तु से स्पर्श हो जाता है, तो आज भी स्त्रियां अपने सुवर्ण के आभूषणों से अञ्जलिस्थ जल के छींटे दिया करती हैं, इसका यही वैज्ञानिक रहस्य है। हमें इस प्रपञ्च से केवल यही वतलाना है कि जो सुवर्ण-रश्मियां प्राण की पकड़ में आ गई हैं, वही "सुवर्ण" नाम से व्यवहृत होने लगती हैं। वस, रश्मि का और प्राण का जो यह पारस्परिक सम्वन्ध है उसे हम 'बन्ध–सम्वन्ध" कहेंगे। रश्मियां प्राण की पकड़ में वँध जाती हैं। जिस दिन ये रश्मियां इस पकड़ से छूट जाएँगी, उस दिन "सुवर्ण" ही न रहेगा। सुवर्ण का स्वरूप सम्पादन करने वाला जो सम्वन्ध है, उसी का नाम "बन्ध-सम्बन्ध" है। रश्मिवन्धनात् जव सुवर्ण बन जाता है, तो उसमें ऊपर से सुवर्ण-रश्मियां और प्रविष्ट हो जाती हैं। इन प्रविष्ट सूर्य्य-रश्मियों से सुवर्ण गरम हो जाता है। बस, यही "योग-सम्बन्ध" है। सुवर्ण के साथ रश्मियों का योग जरूर हो गया है, नहीं तो यह गरम कैसे होता ? परन्तु थोड़ी देर में वह पुनः ठण्डा हो जाता है, अतएव इस द्वितीय सम्बन्ध को "बन्ध-सम्बन्ध" नहीं कह सकते। तीसरा सम्वन्ध है–विभूति सम्बंध। सारा सूर्य्य सब पदार्थों में घुसता है, परन्तु सर्वात्मना नहीं घुसता। कुछ अंश में घुसता है, बाकी अवशिष्ट रहता है। कहने को अवशिष्ट रहता है, परन्तु वास्तव में देखा जाए, तो वह जर्रे-जर्रे में अभिव्याप्त है, परन्तु याद रखिए कि रहता हुआ भी वह नहीं रहने के बराबर है, क्योंकि उसका चिपाव (आश्लेष) उस वस्तु के साथ नहीं रहता। बस, इसीलिए इस सम्बन्ध को "विभूति-सम्बंध" कहते हैं। इसी के लिए "तिष्ठन्नपि न तिष्ठति" कहा गया है। इसी विभूति-सम्वन्ध को वतलाने के लिए भगवान् कहते हैं –

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।।
× × × ×
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।

(श्रीमद्भगवद् गीता ९।४-५)

और लीजिए, जिस अग्नि ने पानी को तरल वना रक्खा है, जो अग्नि पानी का स्वरूप सम्पादन कर रहा है, वह अग्नि वन्ध-सम्वन्ध के चक्र में

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

फँसा हुआ है। वही अग्नि, जल बना हुआ है। यदि उसमें से अग्नि को हटा लिया जाए, तो जल, जल ही न रहे। उस जल में जो ऊपर से गर्मी घुसती है, जिससे कि जल गरम हो जाता है, वह अग्नि, योग-सम्बन्ध युक्त कहलाता है। जो गर्मी बाकी बची हुई है, वही विभूति-सम्बन्ध की अधिकारी है। बस, यही तीन सम्बन्ध रस-बल में होते हैं। रस—बल में तीन सम्बन्ध होते हैं, यह बात कहने मात्र के लिए है। वास्तव में बन्धनादि सम्बन्ध तो बलों से बलों का होता है। रस कभी बन्धन में आता थोड़े ही है ? परन्तु बल चूं कि बिना रस के नहीं रहते, अतः बन्धन—सम्बन्ध युक्त बलों में रहने वाला जो रस है, उसे भी बन्ध का टाइटल (शीर्षक, संज्ञा) मिल जाता है। बस, जैसे रश्मियां सुवर्ण की आत्मा बन जाती हैं, तद्वत् यह रस उन बन्धयुक्त बलों में बँध कर उस बल-समष्टि का स्वरूप बन जाता है। जिसने अस्थि-मांस का स्वरूप बना रक्खा है, वही सृष्टब्रह्म है। शरीर में से जब प्रविष्टब्रह्म अर्थात् आत्मा निकल जाता है, तब भी हाड़-मांस मौजूद रहते हैं। बस, यही साक्षात् "सृष्टब्रह्म" है। जिस दिन सृष्टब्रह्म निकल जाएगा, उस दिन हाड़-मांस भी न रहेंगे। तात्पर्य यही है कि बन्धयुक्त बलों की पकड़ में आ कर जो रस उनका स्वरूप बनाए रखता है, वही रस, वही ब्रह्म, "सृष्टब्रह्म" नाम से व्यवहृत होता है। एवमेव जो रस अपने थोड़े से अंश से सृष्ट रूप में परिणत हो जाता है, उससे बाकी बचा हुआ रस शरीर में प्रविष्ट हो जाता है, सारा ही प्रविष्ट नहीं होता है, अपितु एकांश में ही प्रविष्ट होता है। बस, इस प्रविष्ट ब्रह्म का नाम ही आत्मा है। यह आत्मा सृष्टब्रह्मवत् बन्धन में नहीं है, परन्तु प्रविविक्त ब्रह्मवत् एकान्ततः मुक्त भी नहीं है। अतएव इस सम्बन्ध को "योग-सम्बन्ध" कहते हैं। जो रस, प्रविष्ट ब्रह्म से अतिरिक्त बच जाता है, वही "प्रविविक्त ब्रह्म" कहलाता है। यह जिस सम्बन्ध से पदार्थों में रहता है, उसी सम्बन्ध का नाम "विभूति सम्बन्ध" है। यदि जरा गौर से विचार करें, तो मालूम होगा कि यह प्रविविक्त ब्रह्म भी वास्तव में प्रविष्ट ही है। प्रविविक्त प्रविष्ट रहता हुआ भी असंग है, इसीलिए उसको "प्रविविक्त" शब्द से कहा जाता है। वास्तव में, वह तो जर्रे-जर्रे में प्रविष्ट हो रहा है। उससे एक बिन्दु भी खाली नहीं है। वह तो व्यापक है, भला व्यापक वस्तु का भी कहीं अभाव हुआ है ? बस, यह प्रविष्ट ब्रह्म ही, जिसे कि "प्रविविक्त" कहा करते हैं, बल-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सम्वन्धों के तारतम्य से देहाभिमानी और देहानभिमानी–इन दो स्वरूपों में परिणत हो जाता है। वही प्रविष्ट, सावच्छिन्न-अनवच्छिन्न–इन दो भागों में विभक्त हो जाता है। योगसम्वन्ध की पकड़ में जो प्रविष्ट ब्रह्म आ जाता है, वही "अहमस्मि"—इस प्रकार का अभिमान करने लगता है। यही प्रविष्ट नाम से व्यवहृत होता है, यही सावच्छिन्न है, इसे ही "आत्मा" कहा करते हैं; एवं जो योग-सम्वन्ध से अलग रहता है, वही "प्रविविक्त ब्रह्म" कहलाता है। यह अपरिच्छिन्न है, अनभिमानी है।

इस प्रकार एक ही ब्रह्म, वल-सम्बन्ध-तारतम्यात्–सृष्ट, प्रविष्ट, प्रविविक्त–इन तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है। इन तीनों में से जो प्रविविक्त है, वह तो वाङ्मनसागोचर है, अतएव शास्त्रानधिकृत है। विचार केवल प्रविष्ट अर्थात् आत्मा एवं सृष्ट अर्थात् शरीर ही का किया जा सकता है। सृष्ट–प्रविष्ट ब्रह्म में से चूं कि प्रधान आत्मा है, अतएव पूर्व प्रकरण के प्रारम्भ में ही प्रविष्ट का विचार किया गया है एवं बाद में सृष्ट का भी विचार किया गया है। वह आत्मा केवल बल के कारण ही सत्ता–चेतना–आनन्द स्वरूप वतलाया गया है। इसीलिए आत्मा को "सच्चिदानन्द" कहा जाता है एवं इस सच्चिदानन्द आत्मा के विषय में अन्त में यह भी वतला दिया गया है कि कहने को ये तीन हैं, वास्तव में तीनों एक हैं। तीनों का परस्पर सर्वथा अनतिरेक है, अविनाभाव है। तीनों ऐसे मिले-जुले रहते हैं–कि उन्हें अलग किया हो नहीं जा सकता। एक के हटने पर तीनों हट जाते हैं। यदि और भी सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञान–आनन्द–सत्ता–इन तीनों को हम एक ही चीज पाते हैं। जिस प्रकार आत्मा अर्थात् प्रविष्ट ब्रह्म सच्चिदानन्द है, तद्वत् इस आत्मा का शरीर भी सच्चिदानन्दम् ही है। बस, यही पिछले प्रकरण का विषय था। आत्मावत्, आत्मा ही से निर्म्मित, अन्तर्जगत् भी तद्रूप ही है, सत्-चित्-आनन्दवत् है, यही इस प्रकरण से पहले का विषय है।

यहाँ पर एक प्रश्न यह होता है कि आपने अब तक प्रविष्ट और सृष्ट का विचार किया है। प्रविष्ट आत्मा है, सृष्ट शरीर है। ये दोनों ही सच्चिदानन्द-सम्पत्ति युक्त है, यही आपका कहना है। जैसे आत्मा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नन्द का (तीनों का) परस्पर अनतिरेक ही है, तद्वत् सृष्ट अर्थात् विश्वभाव में परिणत सच्चिदानन्द का भी अनतिरेक ही है। परन्तु इसमें हमारा एतराज है। आत्मा परोक्ष है। स्वानुभवैकगम्य होते हुए भी "वह काला है—नीला है—सफेद है"—इत्यादि रूपेण उसका निर्वचन नहीं किया जा सकता। अतएव उसके विषय में थोड़ी देर के लिए हम आपका कहना मान भी सकते हैं। आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है परन्तु ये तीनों तीन वस्तु नहीं हैं, एक हैं, तीनों का अनतिरेक है—यह बात आपके युक्तिवाद से ठीक हो सकती है। आपका पूर्वोक्त सारा युक्तिवाद आत्मासम्बन्धी सच्चिदानन्द के अनतिरेक के लिए उपयुक्त हो सकता है, परन्तु सृष्ट-ब्रह्म में यह अनतिरेकभाव हमारे नहीं जँचता, क्योंकि जब सृष्ट ब्रह्म में हम सत्ता—चेतना—आनन्द—इन तीनों को सर्वथा पृथक् देखते हैं, तो फिर क्यों कर इनका अनतिरेक कहा जा सकता है? प्रत्यक्षसिद्ध वस्तु का अपलाप क्यों कर किया जा सकता है?

हमें वस्तु से आनन्द आया करता है। इससे मालूम होता है कि वस्तु अलग वस्तु है, आनन्द भिन्न वस्तु है एवं उसका अनुभव होना तीसरी वस्तु है। वस्तु से आनन्द आता है, इससे सिद्ध होता है कि वस्तु, आनन्द से पृथक् वस्तु है। एवमेव आनन्द का अनुभव होता है, इससे आनन्द और अनुभव में अर्थात् ज्ञान में और आनन्द में पृथक्त्व सिद्ध होता है। क्या घड़ा आनन्द और ज्ञान है? कौन आंखों वाला इसे मानने के लिए तैयार होगा? घट-पट को ज्ञान कौन कहेगा? वे तो सत्ता पदार्थ हैं। "हैं"—इसी के अधिकारी घट—पटादि हैं, न कि ज्ञान और आनन्द के। जरा विचार करने से सत्ता—चेतना—आनन्द इन तीनों का पृथक्त्व सिद्ध हो जाता है। विद्यार्थी से गुरुजी पूछते हैं कि—हे सौम्य! तूने पोथी पढ़ी मात्र है अथवा इसका ज्ञान भी तुझे हुआ है? बस, यही व्यवहार पृथक्त्व सिद्ध करता है। यदि पोथी अर्थात् सत्ता ही ज्ञानरूपा होती, तो फिर ज्ञान हुआ या नहीं यह प्रश्न ही क्यों होता? क्योंकि पुस्तक तो उसने पढ़ ही ली है। बस, इसलिए हम कह सकते हैं कि सृष्ट-सच्चिदानन्द का—सृष्ट-स्वरूप-युक्त सत्ता-चेतना-आनन्द का—अनतिरेक नहीं बतलाया जा सकता। अनतिरेक केवल प्रविष्ट का बतलाया जा सकता है। बस, सृष्ट ब्रह्म के, सच्चिदानन्द के, विषय में वादी का यही आक्षेप है। हम वादी के इस पूर्व

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पक्ष को मानते हुए अभ्युपगमवाद को अङ्गीकार करते हुए उसके पूर्व-पक्ष का उत्तर देते हैं और बतलाते हैं कि सृष्ट-ब्रह्म-प्रपञ्च में सर्वथा पृथगवभासित सत्ता-चेतना-आनन्द भी वास्तव में अभिन्न हैं। तीनों का अनतिरेक ही है।

पूर्व प्रकरण में आत्मावत् अर्थात् प्रविष्टवत् सृष्टब्रह्म के आनन्द–चेतना–सत्ता–भाव का भी अनतिरेक बतलाया गया है। परन्तु वादी के कथनानुसार उस पूर्वोक्त सारे प्रपञ्च को हम प्रविष्ट के ऊपर ही लागू समझ लेते हैं। वादी के कथनानुसार प्रविष्टब्रह्म के अनुरोध से ही पूर्व के प्रकरण में सत्ता–चेतना–आनन्द इन तीनों का अनतिरेक बतलाया है, यह बात हम स्वीकार करते हैं।

सृष्ट भाव के अनुरोध से इस सत्ता-चेतना-आनन्द की वास्तव में अलग-अलग ही प्रतीति हो रही है—वादी की यह बात मानने के लिए भी हम सहर्ष तैयार हैं। वास्तव में सृष्ट पर अर्थात् जगत् पर नजर डालने पर मोटी दृष्टि से देखते हैं, तो सत्ता-ज्ञान-आनन्द तीनों भिन्न-भिन्न पदार्थ मालूम होते हैं। घड़ा ज्ञान नहीं है, पत्थर आनन्द नहीं है, यही सर्वसाधारण का अनुभव है। वास्तव में सृष्टानन्द सत्ता-चेतना की पृथक्त्वेन उपसत्ति (ज्ञान) हो रही है—

"अस्तु वा प्रविष्टानुरोधेनैवायमेषामनतिरेकः। सृष्टभावानुरोधेन त्वेषां पृथक्त्वेनाप्युपसत्तिः प्रतिपद्यते।"

परन्तु इस विषय में हमारा कहना इतना सा ही है कि वास्तव में सर्वसाधारण का अनुभव आपके कथनुसार ही है, तथापि जहाँ (सृष्ट में) सत्ता-चेतना-आनन्द—इन तीनों का पृथक्त्वेन आभास हो रहा है, जिस सृष्टब्रह्म अर्थात् जगत् में सत्ता-चेतना-आनन्द की पृथक् प्रतीति हो रही है, वहां भी इन तीनों का अन्योन्याश्रयत्व सर्वथा विचलित नहीं होता है। प्रतीति तीनों की पृथक्त्वेन हो रही है, यह बात सच है, तथापि विचार करने पर तीनों का अविनाभाव-अनतिरेक सिद्ध हो जाता है। सृष्ट स्वरूप में परिणत सत्ता, चेतना, आनन्द कहने के लिए सर्व साधारण के लिए पृथक्-पृथक् हैं, परन्तु सूक्ष्म-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

द्रष्टा दार्शनिकों की दृष्टि में तीनों अविनाभूत हैं, तीनों अन्योन्याश्रित हैं, जैसा कि आगे के उदाहरणों से आपकी समझ में आ जाएगा—

"किन्तु यत्राप्येषाः पृथक्त्वेनाभासस्तत्राप्यन्योऽन्याश्रयत्वं न विचाल्यते।

प्रविष्टब्रह्मवत् सृष्टब्रह्म भी सत्ता-चेतना-आनन्दयुक्त है, यह बात तो आप मानते ही हैं। विवाद रहता है केवल अनतिरेक के भावाभाव में। हम कहते हैं, जो स्थिति प्रविष्ट-ब्रह्म की है, वही स्थिति सृष्ट-ब्रह्म की है। आप कहते हैं कि प्रविष्ट के धर्म्म सृष्ट में लागू हर्गिज नहीं हो सकते, बस आपके इसी सन्देह को मिटाते हैं—

घड़ा है, कपड़ा है, मकान है, पर्वत है, यह जो "है" वस्तु है, वही सत्ता कहलाती है। "है" को ही "सत्ता" कहते हैं एवं इस घड़े को मैं जानता हूँ, इस जानने के हिस्से को ही "ज्ञान" कहते हैं एवं जिसका ज्ञान होता है तथा जो है, वही आनन्द कहलाता है, उसे ही "रस" शब्देन व्यवहृत किया करते हैं। रस नाम पदार्थ का है जो कि जाना जाता है एवं है। पदार्थ को रस कहते हैं। चूंकि 'अस्ति' यह भी एक पदार्थ है एवं ज्ञान भी एक पदार्थ है; दोनों ही पदार्थ हैं और पदार्थ को कहते हैं–रस। तो फिर हम क्यों न इस अस्ति अर्थात् सत्ता को एवं ज्ञान अर्थात् चेतना को रस कहेंगे ? अवश्य ही कहेंगे। अस्ति और ज्ञान दोनों पदार्थ हैं। अस्ति भी एक वस्तु है, ज्ञान भी एक वस्तु है। वस्तु ही का नाम तो रस है। भला क्यों न फिर अस्ति और ज्ञान, रस कहलाएं ? आपने कहा था, तीनों अलग-अलग वस्तु हैं। लीजिए ज्ञान और अस्ति दोनों ही रस हो गए। दोनों रस हैं। जिस रस को आप ज्ञान–सत्ता से अलग बतलाते थे वह ज्ञान और सत्ता स्वयं रस-स्वरूप बन गए। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"अस्तिहि चेतनाऽप्येको रसः। सत्ताऽप्येको रसः।"

पूर्वोक्त कथन से इस भ्रम में कहीं न पड़ जाना कि फिर तो सत्ता और चेतना दो ही भाव हैं, रस तो कोई वस्तु ही न रही। आपका (हमारा) माना हुआ सच्चिदानन्दस्वरूप त्रित्व तो एकान्ततः मिथ्या ही रहा। नहीं, नहीं अस्ति और सत्ता के रस-स्वरूप होने पर भी रस एक तीसरा पदार्थ है जो अवश्य ही दोनों से (सत्ता, चेतना से) पृथक् है। यदि सत्ता और चेतना से पृथक्

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कोई रस नाम की तीसरी वस्तु न हो, तो सत्ता और चेतना शब्द किसे कहें ? सत्ता और चेतना दोनों वाचक हैं। वाचक के लिए वाच्य की नितान्त आवश्यकता है। वाच्य के बिना वाचक, वाचक नहीं कहला सकता। अतः सत्ता और चेतना–इन दोनों वाचकों के लिए, इनसे पृथक् कोई वाच्य जरूर ही मानना पड़ेगा। बस, वही हमारा तीसरा 'रस" नाम का पदार्थ है। यदि कोई मनुष्य कहता है कि मैं जानता हूँ, फौरन उससे सवाल होता है–क्या जानते हो, किसे जानते हो ? एवमेव यदि कोई कहता है कि यह है, यह है, तो फौरन सवाल होता है, क्या है ? इस प्रकार पूर्वोक्त व्यवहार से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि ज्ञान और सत्ता इन दोनों का वाच्य कोई–न–कोई अवश्य है। जो है एवं जिसका ज्ञान होता है, वह अवश्य ही रस है और ज्ञान से पृथक् पदार्थ है। यदि वह नहीं है तो ज्ञान और सत्ता शब्द बिल्कुल बेकार हैं—

"यदि रसो न स्यात् कमयं सत्ताशब्दश्चेतनाशब्दो वाऽभिदध्यात् ?"

वादी फिर चक्कर में पड़ता है कि वाह, हमने भी तो यही कहा था कि तीनों पृथक्-पृथक् हैं। रस सत्ता नहीं हो सकता। ज्ञान रस नहीं बन सकता। बस, आगे के प्रकरण से इसी चक्रव्यूह में से उसे निकालते हैं।

रस नाम है संस्रव का अर्थात् बहने का। जो वस्तु बह कर दूसरे में चली जाय, उसी का नाम "रस" है। रसति-स्रवति इति रसः। वह वस्तु दूसरे में संस्रवित हो जाती है, इसीलिए उसे रस कहते हैं। बस, रस का यही सामान्य लक्षण है—"रसः संस्रवः।"

यह सत्ता, ज्ञान में संस्रवित होती है। नाम–रूप–कर्म्म का नाम ही सत्ता है। घट–पट–वस्त्र इत्यादि जो संसार के पदार्थ हैं, उनमें नाम, रूप, कर्म्म के सिवाय और चौथी चीज है ही क्या ? घड़ा, यह नाम है, उसमें हर वक्त क्रिया हो रही है, अतएव वह कर्म्मस्वरूप है एवं काला-पीला कोई-न-कोई उसका रूप है। नाम-रूप-कर्म्म के अलावा और कुछ भी नहीं है। नाम-रूप-कर्म्म को अर्थात् घट-पटादि पदार्थों को ही सत्ता कहते हैं। यह सत्ता बह कर ज्ञान में मिल जाती है। जब हमें घड़े का ज्ञान होता है, तो कहते हैं "घटमहं जानामि।" "घटमहं जानामि" में जो सत्तास्वरूप नाम-रूप-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कर्म्मात्मक घट है, वह मेरे ज्ञान में स्रवित हो रहा है। मेरा ज्ञान घटाकाराकारित अर्थात् सत्ताकाराकारित हो रहा है। सत्ता मेरे ज्ञान के आश्रय में बैठी हुई है। मेरे ज्ञान के पर्दे पर घट-सत्ता का फोटो उतर रहा है। इसीलिए मैं "घटमहं जानामि" यह कहने का दावा करता हूँ। तात्पर्य यही है कि नाम-रूप-कर्म्मात्मक घट-सत्ता मेरे ज्ञान में स्रवित हो रही है—

"स्रवति हि सत्ता ज्ञाने"

जिस प्रकार सत्ता ज्ञान में स्रवित होती है, तथैव ज्ञान, सत्ता में स्रवित होता है—अर्थात् सत्ताश्रित ज्ञान है। जैसे सत्ता का ज्ञान होता है, तद्वत् ज्ञान की भी तो सत्ता है। ज्ञान भी है। ज्ञान नहीं है, यह बात नहीं है। अपितु ज्ञान अवश्य ही है, अर्थात् सत्ताश्रित है। यदि सत्ता न हो, तो ज्ञान कोई वस्तु ही न रहे। आप अपने ज्ञान को जब भी कभी देखेंगे, सत्ता के रंग में (घट-पटादि पदार्थों के आकार में) रंगा हुआ ही देखेंगे। निर्विषयक ज्ञान का ज्ञान नहीं होता, सत्ताविषयक घट-पटादिविषयक, ज्ञान का ही ज्ञान रहता है। जैसे घड़े में घड़ा नहीं रहता, मनुष्य में मनुष्य नहीं रहता, तद्वत् ज्ञान में ज्ञान नहीं रहता। ज्ञान के ज्ञान के लिए घट-पटादि-पदार्थ-स्वरूप सत्ता ही अपेक्षित है। ज्ञान, सत्ता के आश्रय से अपना स्वरूप कायम करता है। ज्ञान, सत्ता में स्रवित हो जाता है। इसीलिए तो ज्ञान है। यदि ज्ञान सत्ता में स्रवित न होता, तो ज्ञान था ही नहीं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"ज्ञानं च सत्तायाम् (स्रवतीति शेषः)"। सत्ता में सत्ता नहीं रहती, अतएव 'सत्ता' की सत्ता के लिए ज्ञान की अपेक्षा है। जब सत्ता, ज्ञान में घुस पड़ती है, तभी वह अपना स्वरूप स्थिर रखने में समर्थ होती है। एवमेव ज्ञान, बिना सत्ता के अपना स्वरूप कायम नहीं कर सकता। दोनों परस्पर एक—दूसरे में स्रवित हैं। इसलिए सत्ता का ज्ञान होता है। घड़ा है—इस 'है' का ज्ञान होता है। यदि ज्ञान में 'है' यह सत्ता न घुसती, तो फिर वह कोई वस्तु ही नहीं रहती। सत्ता का (घट का) 'मैं घड़े को जानता हूं'—इसीलिए हम "सत्ता, ज्ञान में स्रवित होती है"—यह कहने का दावा करते हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(संस्रवादेव) "ज्ञायते सत्ता" (घटमहम् जानामि इत्येवंरूपेण) । एवमेव चूं कि ज्ञान, सत्ता में स्रवित रहता है, अतएव 'घड़े का ज्ञान हैं'–यह व्यवहार होता है। जैसे सत्ता का ज्ञान होता है, अर्थात् सत्ता, ज्ञानाश्रित हैं, तद्वत् ज्ञान भी है अर्थात् ज्ञान, 'है' के (सत्ता के) आश्रित है। "है" का नाम है सत्ता एवं ज्ञान "है"–इससे सुतरां ज्ञान का सत्ता में स्रवित होना सिद्ध हो जाता है। इसी अभिप्राय से कहते हैं–"अस्ति च ज्ञानम्"।

पूर्व प्रपञ्च से बतलाना हमें यही है कि जो दूसरे में स्रवित होता है अर्थात् बह कर दूसरे में चला जाता है वही "रस" कहलाता है। चूं कि सत्ता, ज्ञान में स्रवित हो जाती है एवं ज्ञान, सत्ता में स्रवित हो जाता है, संस्रव-धर्मत्वेन ज्ञान और सत्ता–दोनों रस-स्वरूप में परिणत हो जाते हैं। अतः हम दोनों को ही "रस" कहने के लिए तैयार हैं—

"तस्मादुभयोः रसः" (इतिनामेति शेषः)

रस को ही आनन्द कहते हैं एवं सत्ता और चेतना हैं–रस-स्वरूप; अतएव हम, सत्ता और चेतना, दोनों को ही आनन्द कहने के लिए तैयार हैं–

"रसं ह्यानन्दमाचक्षते। तस्मादानन्द एवेयं सत्ता, आनन्द एवेयं चेतना"।

अब चलिए आनन्द और सत्ता की ओर। जैसे ज्ञान और सत्ता, आनन्द हैं, तद्वत् यह आनन्द भी ज्ञान और सत्ता-स्वरूप है। आनन्द एवं सत्ता, दोनों ही ज्ञान से बाहर कहां गृहीत होते हैं? सत्ता और आनन्द, दोनों ही मेरे ज्ञान के पेट में समा रहे हैं। यदि ज्ञान नहीं है, तो आनन्द भी नहीं है। आज दिन के १० बजे जयपुर महाराज ने आपको २० हजार रुपये जागीर का गांव प्रदान किया है। आपके नाम का पट्टा परवाना लिख दिया गया है। खास कौंसिल से आपके नाम का फर्म्मान जारी हो गया है। आप घर में बैठे हुए हैं। अभी आपको खबर नहीं हुई है कि मुझे गांव मिले हैं। बतलाइए, क्या आपको इस समय आनन्द आ रहा है? गांव मिलने की खुशी हो रही है? हर्गिज नहीं। आपको आनन्द तभी आएगा, जब आपको

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

 CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मालूम हो जाएगा कि मुझे गांव मिल जाएगा। ज्ञान ही से आनन्द है ए ज्ञान ही से वस्तु-सत्ता है। आपके घर में जमीन में गड़ा हुआ द्रव्य रखा हुआ है। आप जब तक यह बात नहीं जानेंगे, न आपको उस द्रव्य-सत्ता का पता लगेगा, न आनन्द ही आएगा। आनन्द और सत्ता, दोनों ज्ञान पर निर्भर हैं। ज्ञान से अलग सत्ता और आनन्द नहीं हैं। अतएव आनन्द और सत्ता दोनों ज्ञान-स्वरूप हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

एकमेवानन्दोऽयं ज्ञानम्। सत्तेयं ज्ञानम्। ज्ञानाद् बहिर्घेदमुभ गृह्यते।

आनन्द और सत्ता, दोनों ज्ञान-स्वरूप हैं—यही पूर्व के वाक्य का अर्थ है। एवमेव ज्ञान भी आनन्द और सत्ता-स्वरूप ही है, यही इस आगे के वाक्य का अर्थ है। जिस किसी भी पदार्थ में आनन्द का अनुभव होता है, मजे का अनुभव होता है, वह अनुभव है। सांठे-चूरमे (राजस्थान के मधुर आहार विशेष—सं.) में वड़े ही आनन्द का अनुभव हुआ—यहां पर जो 'अनुभव हुआ' वाक्य है, वह अनुभव—स्वरूप है—

यत्र क्वचिदयमानन्दोऽनुभूयते, सोऽनुभवः।

एवमेव घड़ा है, कपड़ा है, मनुष्य है, टेबिल है, कुर्सी है, पुस्तक है इत्यादि रूपेण "है" का अर्थात् सत्ता का अनुभव होता है, वह भी अनुभव है—

यत्र क्वचिदियं सत्ताऽनुभूयते, सोऽनुभवः।

अनुभव ही को ज्ञान कहते हैं। मैंने आनन्द का और सत्ता का अनुभव कर लिया; इसका अर्थ यही है कि मुझे आनन्द और सत्ता का ज्ञान हो गया। अभी अनुभव नहीं हुआ, आनन्द को नहीं पहचाना, घड़े को नहीं पहचाना; इसका अर्थ यही है कि आनन्द और सत्ता का ज्ञान नहीं हुआ। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

अनुभवं तु ज्ञानमाचक्षते

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आनन्द और सत्ता का अनुभव होता है, अतएव हम कह सकते हैं कि ज्ञान ही आनन्द है एवं ज्ञान ही सत्ता है। सत्ता, आनन्द, दोनों ज्ञानाविनाभूत हैं। ज्ञान ही आनन्द है, ज्ञान ही सत्ता है, यही निम्न वाक्य का अर्थ है—

तस्मात् ज्ञानमेवायमानन्दः। ज्ञानमेवेयं सत्ता।

अपिच आनन्द और ज्ञान, दोनों सत्ता हैं। आनन्द और ज्ञान, दोनों ही सत्तया अविनाभूत हैं। "एवमानन्दोऽयं सत्ता। ज्ञानं सत्ता।" जैसे घट-पटादि पदार्थ हैं, तद्वत् आनन्द भी एक पदार्थ है। किसी पदार्थ-विशेष का नाम ही आनन्द है। आनन्द एक वस्तु है, जिसका कि हम अनुभव किया करते हैं।—

अस्ति ह्ययं कश्चिद् भाव आनन्द:

एवमेव ज्ञान भी एक पदार्थ है। ज्ञान भी है, अर्थात् कोई वस्तु है—

अस्ति ह्ययं कश्चिद् भावो ज्ञानम्

अस्ति (है)—इसीको सत्ता कहा करते हैं। "है" का नाम ही तो सत्ता है। जबकि आनन्द भी है एवं ज्ञान भी है; तो फिर इन दोनों को सत्ता से क्यों कर खारिज किया जा सकता है ? है का नाम ही आनन्द है एवं है का नाम ही ज्ञान है। सत्ता ही आनन्द है एवं सत्ता ही ज्ञान है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

अस्तीति सत्तामाचक्षते। तस्मात् सत्तैवायमानन्दः। सत्तैवेदंज्ञानम्।

उपलब्धि (प्राप्ति) को ही ज्ञान कहते हैं। घड़ा होता, तो उसकी उपलब्धि होती, अर्थात् ज्ञान होता। चूंकि घड़ा नहीं है, अतएव उसका ज्ञान भी नहीं है, यह सर्वलोकसिद्ध ज्ञान है। बस, इसी ज्ञान के कारण सत्ता और ज्ञान की अविनाभावेन उपपत्ति होती है। "है"—इसीका नाम तो ज्ञान है। मैं घड़े को जानता हूं, मुझे घट का ज्ञान है, इसका निर्वचन "घड़ा है" इन्हीं शब्दों से तो किया जाता है। घड़ा है—यही तो ज्ञान का स्वरूप है। यदि घड़ा है, तो उपलब्धि है, अर्थात् ज्ञान है; यदि नहीं है, तो ज्ञान भी नहीं है। इसीलिए तो—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ।। (कठ० उ० २।३।१२)

यह कहा जाता है। ज्ञान और सत्ता, दोनों परस्पर अविनाभूत हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—"यदिस्यात् उपलभ्येत, नोपलभ्यते तस्मान्नास्ति इति सर्वलोकप्रतिपत्तिसामान्यात् सत्ताया ज्ञानस्य चाविनाभावोपपत्तिः" जिसकी सत्ता है, अर्थात् जो है एवं जिसका ज्ञान होता है, वही रस है। घट का ज्ञान होता है एवं घट है, बस इस ज्ञान और 'है' से अलग किन्तु अविनाभूत जो घट है, वही रस है। अर्थ जो है वह ज्ञात है एवं सत्तावान् है, अर्थात् घट सत्तावान् है एवं मैं उसे जानता हूं, बस यही अर्थ रस है—

यस्य सत्ता, यस्य ज्ञानं स रसः । सत्तावान् ज्ञातोऽर्थः ।

अस्ति और सत्ता का, रस के साथ, इसलिए भी अविनाभाव है। बिना 'अस्ति' और ज्ञान के रस नहीं रह सकता है। तात्पर्य्य सम्पूर्ण प्रपञ्च का यही बतलाना है कि प्रविष्टब्रह्मवत् सृष्टब्रह्मस्वरूप चेतना–आनन्द में भी परस्पर सर्वथा अनतिरेक ही है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर प्रविष्टवत् सृष्ट भी, अन्योन्याश्रित ही है, अविनाभूत ही है। सामान्य मनुष्य जिसे जैसा समझते हैं, वैज्ञानिक मनुष्य ठीक उसके विपरीत देखते हैं। इसीलिए भगवान् कहते हैं—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।। (गी० २।६९)

बस इसीलिए केवल सामान्य मनुष्यों का उदाहरण देकर सृष्ट-स्वरूप सच्चिदानन्द के अनतिरेक का खण्डन नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण कथन का सारांश यही हुआ कि सत्ता-चेतना-आनन्द—इन तीनों को तीन नहीं समझें, बल्कि अवस्थाविशेष मात्र समझना चाहिए। जैसे एक ही अग्नि अवस्थाविशेष से वसु रुद्रादि तत्त्वों में परिणत होता हुआ ३३ देवताओं में परिणत हो जाता है, तद्वत् यह ब्रह्म भी अवस्थाविशेष से सत्ता, चेतना, आनन्द—ये तीन स्वरूप धारण कर लेता है। जो आनन्द है, वह हृदयस्थ है अर्थात् जो ज्ञान का कन्दल है, वही

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आनन्द शब्देन व्यवहृत होता है। यह ठीक केन्द्र में रहता है एवं उस ज्ञान-कन्दल में से चारों ओर वितत जो ज्ञान–रश्मियां हैं, उन्हीं की समष्टि का नाम ज्ञान है—

तथा च आनन्दो हृदयस्थः। तस्मात् परितस्तायमाना अस्य रश्मयो ज्ञानं नाम।

हमने बतलाया था कि सूर्य्यप्रतिबिम्बवत् यही प्रविष्ट ब्रह्म अर्थात् षोडशी आत्मा, जिसे कि भगवद् गीता में "**अव्यय**" कहा गया है, महान् पर प्रतिबिम्बित हो कर, जीव कहलाने लगता है एवं जैसे कि पानी पर पड़ा हुआ सूर्य्य–प्रतिबिम्ब अपनी स्वतन्त्र संस्था कायम कर लेता है तथा सूर्य्यवत् अपने में से किरणें निकालने लगता है, तद्वत् यह जीव भी अपनी स्वतन्त्र संस्था कायम कर लेता है। अव्ययेश्वर के जो अर्क हैं, वे ही इस जीव के उक्थ बन जाते हैं। बस, इसीलिए समष्टि–व्यष्टिभेदेन सत्ता, चेतना, आनन्द, दो–दो प्रकार के हो जाते हैं। कहने को दो हैं, वास्तव में तो एक ही हैं। बस, इसी अभिप्राय से कहते हैं—

वह ज्ञान–कन्दल अर्थात् हृदयस्थ आनन्द समष्टि–व्यष्टि–भेदेन दो प्रकार का है। समष्ट्यानन्द का नाम ही ईश्वर है। व्यष्ट्यान्द का नाम ही जीव है। चूँकि समष्टि—व्यष्टि भेद से आनन्द दो प्रकार का है, अतएव उस आनन्द–कन्दल से निकलने वाली ज्ञान–रश्मियां भी दो प्रकार की हैं—ईश्वर-ज्ञानरश्मियाँ एवं जीव-ज्ञानरश्मियाँ। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

स आनन्दो द्विविधः। समष्ट्यानन्द ईश्वरः। व्यष्ट्यानन्दो जीवः। अतएव ततस्तायमाना रश्मयोऽपि द्विविधाः। ईश्वरज्ञानानि च जीवज्ञानानि च।

प्रतिफलित ज्ञान–रश्मियों का नाम ही सत्ता है। ज्ञान से ही निर्म्मित जो विषयरूप हैं, उन्हीं का नाम सत्ता है। चूँ कि जीवेश्वरभेदेन ज्ञान दो प्रकार का है, अतएव ज्ञान से निर्म्मित विषय-स्वरूपिणी सत्ता भी दो ही प्रकार की है। आनन्द–कन्दल से निकलने वाला, चारों ओर फैलता हुआ नाना प्रकार के (चन्द्र–सूर्य्य–घट–पट–पर्वत–नदी इत्यादि प्रकार के) स्वरूपों में परिणत

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

होने वाला जो ईश्वर-ज्ञान है, जो कि उसका अन्तर्जगत् है, वहिर्जगत् (हम अपेक्षा से) कहलाता है। इसी प्रकार विषय-स्वरूप में परिणत जो जीव- है, जो कि अपना वासना-स्वरूप है, उसी को अन्तर्जगत् नाम से व्यव करते हैं—

ज्ञानेन च कल्प्यमानानि विषयरूपाणि सत्ता। सत्ता अपि ता द्विवि नानाविधविषयाकारैः परिणममानमीश्वरंज्ञानं बाह्यं जगन्नाम। तथा जीवज्ञानं भावनावासनारूपं त्वन्तर्जगन्नाम।

कहना इससे हमें यही है कि आनन्द से अविनाभूत आनन्द-मू अर्थात् उसी में से रश्मिरूप से बाहर निकलने वाला ज्ञान, आनन्द से हा पृथक् नहीं माना जा सकता एवं ज्ञान से अविभक्ता, ज्ञानमूलिका अर्थात् ज्ञ ही से अपना स्वरूप बनाती हुई सत्ता, ज्ञान से अतिरिक्त (अलग) नहीं जा सकती। इस प्रकार सत्ता, ज्ञान, आनन्द, तीनों अवस्थाविशेषभेद भिन्न होते हुए भी वस्तुतः तीनों एक वस्तु हैं। वही सत्य है। यही प्रपञ्च का निष्कर्ष है। सत्यं—यह सत्तात्रय को सूचित कर रहा है। अस्ति- यही ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है। सत्ता से जो जाना जाता है, वही सत्य सत्ता से आनन्द अर्थात् रस जाना जाता है। अतः रस ही सत्य है। ज्ञा सत्ता उसकी अवस्थाविशेष मात्र है। रस ही ब्रह्म है, वही सत्य है। ती एक पदार्थ हैं। सत्य तीनों हैं अतएव "समुदाये दृष्टाः शब्दा अवयवेष्व वर्तन्ते यथापटोदग्धः" इत्यादिवत् सत्ता, चेतना, आनन्द, इन तीनों समष्टि पर लागू जो सत्य शब्द है, वह आनन्द, सत्ता, चेतना, तीनों पर ल हो सकता है, तीनों को पृथक्तया भी "सत्य" नाम से व्यवहृत कर सकते इस प्रपञ्च से कहना हमें यही है कि "सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म" श्रुति में स के लिए हमने सत्य का अर्थ सत्ता किया है, उससे भ्रम न हो जाए, इसी पूर्वोक्त कथन समझना चाहिए। बस, सारे प्रपञ्च से हमें सिद्ध क करना है—

ब्रह्मैवेदं सर्वं नेह नानास्ति किञ्चन।

इसी अभिप्राय से कहते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तथा चानन्दाविनाभूतमानन्दमूलकं ज्ञानम् आनन्दान्नातिरिच्यते। ज्ञानाविनाभूता ज्ञानमूलिका चेयं सत्ता ज्ञानान्नातिरिच्यते। तथा च सत्ताज्ञानानन्दाः परिणामविशेषभिन्ना अप्येको भावस्तत् सत्यमिति निष्कर्षः सिद्धः।

एक ही ब्रह्म मायादि पाप्मा (वल) वशात् सृष्ट-प्रविष्ट-प्रविविक्त-भेदेन भेदत्रयस्वरूप में परिणत हो जाता है। इन तीनों में से प्रविविक्त चूँकि वाङ्मनसागोचर है, अतएव शास्त्रानधिकृत है। अवशिष्ट, प्रविष्ट एवं सृष्ट वाङ्मनसगोचर हैं, अतएव निर्वचनीय हैं, निरुक्त हैं, अतएव उन्हीं का विवेचन अब तक के प्रकरणों से किया गया है। प्रविष्ट ब्रह्म अर्थात् आत्मा एवं सृष्ट ब्रह्म अर्थात् शरीर दोनों ही सच्चिदानन्दसम्पत्ति से ओतप्रोत हैं। आत्मा भी सत्ता–चेतना–आनन्द-स्वरूप है एवं शरीर (विश्व) भी सत्–चित्–आनन्दवत् है। सच्चिदानन्द के अलावा और कोई चौथा पदार्थ है ही नहीं। सच्चिदानन्द–इन तीनों में भी परस्पर अन्योन्याभाव है, अनतिरेक है। कहने को तीन हैं, वास्तव में तीनों एक चीज हैं। वही एक भाव सत्य है। बस, अब तक हमने यही बतलाया है।

सत्ता–चेतना–आनन्द–इन तीनों में से आनन्द और चेतना अर्थात् ज्ञान के विषय में फिलहाल हमें कुछ नहीं कहना। कहना है केवल सत्ता के विषय में। 'यह जगत् उसी ज्ञान से बना हुआ है अथवा ज्ञान से विजातीय है? केवल यही प्रश्न सभी प्रश्नों का सम्यक् निराकरण हो जाने पर भी बाकी बच जाता है। हम और हमारा ज्ञान दोनों एक वस्तु हैं। 'हम' हृदयस्थ ज्ञान–कन्दल है, ज्ञान उस कन्दल से चारों ओर निकलने वाली रश्मियों का नाम हैं। इस प्रकार अहं और ज्ञान, सूर्य्य बिम्ब और उसका प्रकाशमण्डल, दीपक की लौ और उसका प्रकाशमण्डल कहने को दो हैं, वास्तव में दोनों एक वस्तु हैं। अवस्थाविशेष मात्र से एक ही वस्तु दो स्वरूपों में परिणत हो जाती है। झगड़ा रहता है केवल सत्ता के विषय में। अन्तर्जगत् (जीव-जगत्) और बहिर्जगत् (ईश्वर-जगत्) के विषय में। हमारे ज्ञान में प्रतिभासित होने वाले घट-पटादि और सूर्य्यचन्द्रादि हमारे ही ज्ञान से बने हुए हैं। हम जितने भी पदार्थ देखते हैं, वे सारे के सारे पदार्थ

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अन्तर्जगत् की वस्तु हैं, हमारे ज्ञान ही से घट-पटादि (हमें दीखने वाले) बने हुए हैं, यह बात सामान्य मनुष्य के मस्तिष्क में झटिति नहीं घुस सकती। बस, इसी संशय को मिटाने के लिए इस उत्तर-सन्दर्भ का प्रारम्भ होता है। वास्तव में अन्तर्जगत् के सारे पदार्थ जिन्हें कि सत्ता शब्द से व्यवहृत किया जाता है, हमारे ही ज्ञान से बने हुए हैं एवं बहिर्जगत् के सारे पदार्थ ईश्वर-ज्ञान से ही बने हुए है। दोनों विश्वजीवेश्वर के ज्ञान ही से बने हुए हैं, ज्ञान मूलक हैं, अतएव दोनों ही अभिन्न हैं। कैसे अभिन्न हैं, सर्वसाधारण की समझ में यह बात कैसे आए, इसी के लिए निम्नलिखित प्रकरण का प्रारम्भ किया जाता है—

आनन्द, चेतना, सत्ता—इन तीनों में से, जिसे हमने सत्ता नाम से व्यवहृत किया है, वह सत्ता फिर अपने तीन स्वरूप धारण करती है। मन, प्राण, वाक् ये तीन वस्तुएं एक ही सत्ता में रहती हैं। मन, प्राण, वाक् इन तीनों की समष्टि का नाम ही सत्ता है। मन, प्राण, वाक् के संघात का नाम ही सत्ता है। घड़ा है, वस्त्र है, पुस्तक है—इत्यादि-इत्यादि लोक-व्यवहार में जो शब्द प्रयुक्त होते हैं, उस 'है' शब्द के व्यवहार में मन, प्राण, वाक् ये तीन ही पदार्थ कारणभूत हैं। 'अस्ति' इस व्यवहार के हेतुभूत ये तीन हैं। जिसमें मन-प्राण-वाक् रहते हैं —जिसमें कहना गलत है–अपितु जो मन–प्राण–वाक् है, वहीं उसी के लिए घटः अस्ति, घड़ा है, यह व्यवहार होता है। जो मन-प्राण–वाक् स्वरूप नहीं है, वह एकान्ततः 'नास्ति' ही है। आपको जगत् में जो "है, है" की प्रतीति हो रही है, उसमें प्रधान कारण मन-प्राण-वाक् ही है। अस्ति ही को कहते हैं सत्ता एवं सत्ता शब्द के व्यवहार में कारणभूत हैं–मन-प्राण–वाक्, अतएव हम मन, प्राण, वाक् इन तीनों के संघात को ही सत्ता कहने के लिए तैय्यार हैं। घटोऽस्ति (घड़ा है)–इसका तात्पर्य्य यही है कि घड़ा मन है, घड़ा प्राण है, घड़ा वाक् है। अस्ति के साथ मन–प्राण–वाक् सम्बद्ध हैं। जहां अस्ति है, वहां तीनों हैं। जहां तीनों हैं, वहां अस्ति है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

तत्रेयं सत्ता पुनस्त्रैभाव्यं रूपम् मनः प्राणोवाक् चेति। एतदेव त्रितयं संहत्य सत्ताशब्देनाख्यायते, एष भेव त्रयाणाम् 'अस्ति' व्यपदशहेतुत्वात्।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मन, प्राण-वाक् इन तीनों में से जो वाक् है, वह भूत का वाचक है। वाक् शब्देन पृथिवी, तेज, जल, वायु, आकाश—इन पांचों भूतों का ग्रहण हैं क्योंकि पृथिवी, जल आदि भूतों का वाय्वाकाश के साथ तादात्म्य है। वही वाक् अर्थात् आकाश ही, पृथिवी, जल, तेज, वायु वना हुआ है। जैसे मिट्टी से वनने वाला अतएव मिट्टी के साथ तादात्म्यापन्न घट मृत्तिका से अभिन्न है, सूत से वनने वाला, अतएव सूत के साथ तादात्म्यापन्न वस्त्र सूत से अभिन्न हैं, एवमेव सुवर्ण से वनने वाले अतएव सुवर्ण के साथ तादात्म्यापन्न कटक-कुण्डलादि सुवर्ण से अभिन्न हैं अतएव च घट-पट-कटक तीनों क्रमशः मृत्तिका, सूत्र, सुवर्ण शब्देन व्यवहृत होते हैं। वस, ठीक इसी तरह वाक् से, अर्थात् आकाश से, बनने वाले अतएव वाक् से तादात्म्यापन्न जो पृथिवी, जल, तेज, वायु हैं, वे उस वाक् से अभिन्न हैं। अतएव च मृद्घटवत्, तन्तुवस्त्रवत्, सुवर्णकटकवत् पाँचों भूतों को ही हम 'वाक्' नाम से पुकार सकते हैं। सर्वबलविशिष्ट रस को ही परात्पर कहते हैं। वही सर्वबलविशिष्ट अपरिच्छिन्न रस अर्थात् परात्पर अनिर्वचनीय मायाबलोद्भव के कारण मायी वनता हुआ अतएव परिच्छिन्न होता हुआ "अव्यय" नाम धारण कर लेता है। इस मायापरिच्छिन्न अव्यय का जो केन्द्रीय रस है, उसी का नाम मन है। मन तीन प्रकार का होता है—श्वोवसीयस मन, अनिन्द्रियमन, इन्द्रियमन। जिस मन के लिए "मनः षष्ठानीन्द्रियाणि" कहा जाता है, वह इन्द्रियमन है एवं छओं इन्द्रियों पर जो एक मन सवार रहता है, वही प्रज्ञामन है, प्रज्ञामन और इन्द्रियमन जिसके आधार पर अपनी स्थिति कायम करते हैं, उसी मन का नाम "श्वोवसीयसमन" है। इसी को 'अव्ययमन' भी कहते हैं। मायावच्छिन्न अव्यय के केन्द्रीय रस का नाम ही मन है। यही से चूंकि इच्छा उठती है अतएव मन को 'उक्थ' भी कहा करते हैं। "यस्मात् स्थानात् कामनोत्तिष्ठति तदुक्थम्"। आगे की सृष्टि—निर्म्माण की इच्छा (कामना) पहले-पहल इसी मन से उठती है। मन का पहला रेत 'काम' है। मन ही इच्छा का पिता है, इसी अभिप्राय से वेद भगवान् कहते हैं—

कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविदन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥

(ऋग्वेद मं० १०।१२९।४)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मन उस रस की सूक्ष्मतम अवस्था है। तदनन्तर और वल-प्रत्यय के कारण वही मन आगे जा कर प्राणरूप में परिणत हो जाता है। इच्छा ही प्राणरूप में परिणत हो जाती है। माया-वल के अनन्तर उसी केन्द्र में आदान-विसर्गात्मक ब्रह्मा–विष्णु–इन्द्र–अग्नि–सोमात्मक पञ्चप्राण उत्पन्न होते हैं। आदान–विसर्ग केवल वलों का ही होता है परन्तु चूंकि वल, विना रस के रहता नहीं अतएव उस जाते हुए रस को वल-भेद से भिन्न-भिन्न नामों से व्यवहृत करने लगते हैं। वहुत अंश में तो रस प्रतिष्ठित ही रहता है। वस, इस प्रतिष्ठित रस का नाम ही ब्रह्मा है। शुद्ध रस नहीं अपितु वल मिश्रित रस ही 'ब्रह्मा' कहलाता है। केन्द्र से वाहर की ओर जाने वाले वल के साथ वलाधार भूत जो रस है, वही 'इन्द्र' कहलाता है। वलों का सम्वन्ध इस ऊपर जाते हुए रस के साथ अधिक घनिष्ठ हो जाता है अतएव वलमिश्रित रस को 'प्राण' कहने लगते हैं। वाहर से केन्द्राभिमुख आने वाले वल के साथ तदाधार भूत जो रस है, वही 'विष्णु' कहलाता है। जो वल केन्द्र से वाहर जाता है, उसीका नाम 'आग्नेय प्राण' है एवं आने वाले-प्राण का नाम 'सौम्य प्राण' है। वलों के साथ बद्ध, प्रतिष्ठित एवं आने–जाने वाले रस भाग की तीन अवस्थाओं के नाम तो ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र हैं एवं आने-जाने वाले वल-भाग का नाम अग्नि-सोम है। जाने वाले का नाम 'अग्नि' है, आने वाले का नाम 'सोम' है। अग्नि ही रोमावलियों में से हो कर हर वक्त वाहर जाता रहता है। इस आग्नेय प्राण की कमी के कारण उसी केन्द्रस्थ मन में से एक 'अशनायाबल' जिसे कि 'बुभुक्षाबल' कहते हैं, उत्पन्न होता है। इसी अश-नायाबल के उक्थ, अर्क, अशिति–ये तीन भाग हैं। जहां अशनायाबल (खाऊं खाऊं इस तरह का इच्छा वल) उठता है, उसी बिन्दु का नाम तो उक्थ है एवं जो इच्छा–रश्मियां उस मन–उक्थ से वाहर चारों ओर फैलती हुई निकलती हैं उन्हीं का नाम 'अर्क' है। वे इच्छा–किरणें जिस अन्न को पकड़ कर शरीराग्नि में आहुत करती हैं, उसी आहुति–अन्न का नाम 'अशिति' है। बस, अशनाया के ये तीन धर्म्म हैं। इसी अशनाया वल को, जो कि बाहर से अन्न ला-ला कर शरीर का पालन किया करता है, पालन–धर्म्म के कारण 'विष्णु' कहते हैं इसी रहस्य को समझाने के लिए पुराणों में विष्णु को पालन–कर्त्ता कहा है परन्तु ध्यान रहे, अशनाया-वल, विष्णु-शक्ति द्वारा वाहर से ला-ला कर जितना

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भी अन्न शरीर में आहुत होता है, रोमावलियों द्वारा वही अन्न क्रमशः अर्क प्राणावस्था में परिणत हो बाहर निकलता रहता है। जितना भी आता है, उतना ही खर्च होता रहता है। केन्द्र में आया हुआ अन्न पहले अर्क बनता है, अर्क से प्राण बनता है, प्राण रोमावलियों द्वारा बाहर चला जाता है, फिर इच्छाशक्ति अन्न आहुत कर देती है, फिर अन्न अर्क बन जाता है। इस प्रकार अन्न–अर्क–प्राण के परस्परानुग्रह से शरीर–यज्ञ होता रहता है। अतएव यज्ञ का लक्षण बतलाते हुए वाजसनेय कहते हैं—**"प्राणोर्गन्नानामन्योन्य परि-ग्रहो यज्ञः"** ।

जो शक्ति प्राण को रोमावलियों द्वारा बाहर फेंकती है, उसी का नाम 'इन्द्र' है। आये हुए अन्न को बाहर फेंकने का काम इन्द्र का है एवं कमी को पूरी करने के लिए बाहर से अन्न लाने का काम विष्णु का है। इन्द्र ही को पुराण में महादेव कहा जाता है। चूंकि ये उस अन्न को बाहर फेंकते हैं अत-एव इन्हें संहारकर्त्ता कहा जाता है। अग्निसोमात्मक सृष्टि इन दोनों के मूल उस प्रतिष्ठा रस के आधार पर होती है, अतएव ब्रह्मा को सृष्टिकर्त्ता कहा जाता है। एक ही रस अवस्थाभेद से–ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र–इन तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है, अतएव—

एकामूर्त्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र–तीनों ही रसभाग के नाम हैं एवं अग्नि–सोम बल-भाग के नाम हैं। रस अप्रत्यक्ष है। रूप, बल ही का दीखा करता है। विश्व का स्वरूप अग्नि–सोम से ही बनता है, अतएव **'अग्नीषोमात्मकं जगत्'** कहा जाता है। तीनों में से विष्णु और इन्द्र यद्यपि बड़ी दूर तक दौड़ लगाते हैं तथापि तीनों हृद्य ही कहलाते हैं। तीनों अन्तर्य्यामी हैं। तीनों हृदय में रहते हैं, अर्थात् तीनों की पकड़ हृदय से है, इसीलिए केन्द्र–स्थान का नाम 'हृ-द-य' रखा गया है। आगे की सारी सृष्टियों के, सारी प्रजाओं के, अधिष्ठाता ये तीनों हैं। हृ–द–य ही प्रजापति है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

एष प्रजापतिर्यद् हृदयम्। एतद् ब्रह्म। एतत् सर्वम्। तदेतत्त्र्य-क्षरं हृदयमिति। (शत० १४।८।४)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इन तीनों में से जो विष्णु और इन्द्र हैं, उनकी परस्पर स्पर्द्धा चल रहती है। विष्णु जितना ही बाहर से लाते हैं, इन्द्र उसे बाहर फेंक देते हैं बस, इस आदान–विसर्गात्मक यज्ञ से ही प्रत्येक पदार्थ का बड़ा दूर त मण्डल बन जाता है जिसे कि वषट्कार–मण्डल कहते हैं। इसी वषट्कार मण्डल को 'महिमा' एवं 'पुनः पद' शब्द से कहा जाता है। इसी वषट्कार वेद–साहस्री, लोक–साहस्री एवं वाक्–साहस्री रहती है, जिसका कि वि विवेचन कारणशरीर, सूक्ष्मशरीर, स्थूलशरीर एवं महिमा–एतच्चतुष्टयु सृष्ट-ब्रह्म अर्थात् शरीर के महिमा-प्रकरण में किया जाएगा। इस लोक-साह का वितान इन्द्र–विष्णु की ही स्पर्द्धा से होता है। अतएव श्रुति कहती है-

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्।
(ऋग्वेद मं० ६।६६।८

इसी अभिप्राय से श्रुति में कहा जाता है—

किं तत् सहस्रमिति—इमे लोकाः इमे वेदाः अथो वागिति ब्रूयात्।
(ऐ० ब्रा० २८।

सम्पूर्ण प्रपञ्च से हमें बतलाना यही है कि रस की जो अति सूक्ष्म अवस्था है, उसी का नाम मन है एवं उससे स्थूल अवस्था में परिणत रसभाग का ना प्राण है। इस प्राण के व्यापार से वाक् उत्पन्न होती है, जो कि भूत पहली अवस्था है। यह वाक् तीन प्रकार की है—आम्भृणी वाक्, बृहती वा अनुष्टुप वाक्। इन्हीं तीनों को सर्जिका, प्रवर्त्तिका एवं प्रकाशिका कहते हैं आम्भृणीवाक् परमेष्ठि–मण्डल की वाक् है। यह वाक् आपोमयी है, इसी सारा जगत् उत्पन्न होता है। वास्तव में बात सच है। पानी से ही तो विश्व उत्पत्ति होती है। सौरवाक् प्रवर्त्तिकावाक् कहलाती है एवं क–च–ट–त एतत्स्वरूपयुक्ता वर्णप्रकाशिका जो पार्थिववाक् है, वही प्रकाशिकावाक् क लाती है। हमें अर्थसृष्टि का विचार करना है अतएव सर्जिकावाक् अर्थ पारमेष्ठ्य आम्भृणीवाक् का ही प्रकट में ग्रहण है। इस सर्जिकावाक् का य असली स्वरूप पूछना चाहो तो वेदत्रयी ही है। तो इन्द्र–विष्णु प्राण की स्प से जिस वाक्साहस्री, वेदसाहस्री, लोकसाहस्री का वितान होता है, उसी वे साहस्रीयुक्त वाक्साहस्री का ही वाक् शब्देन ग्रहण है। ऋक्–यजुः–साम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हीं वेदत्रयी कहते हैं। इनमें से ऋक्–साम नपुंसक कहलाते हैं।यजुः पुरुष कहलाता है। ऋक्–साम के स्थिर वितान में यजु–पुरुष सृष्टि–निर्म्माण करता है। यजु में यत् और जू–ये दो भाग हैं। यत् गति भाग का नाम है, जू स्थिर भाग का नाम है। जू आकाश कहलाता है, जैसा कि कहा जाता है—"जूराकाशे सरस्वत्यां" कोश के अनुसार 'जू' शब्द आकाश का वाचक है। ब्राह्मण श्रुति भी कहती है—

"वायुरेव यजुः। अयमेवाकाशो जूः" (शत०१०।३।५।१-२)

यत् कहते हैं वायु को। बस, यह वायु उस आकाश में सञ्चार करता है, तो इसके सञ्चार से ही आगे की सृष्टियाँ बनती हैं। प्राण से, जिसे कि सप्तर्षिप्राण भी कह सकते हैं, जिन्हें कि इन्द्र–विष्णु भी कह सकते हैं, पहले वेदत्रयी अर्थात् वाक् उत्पन्न होती है। इन तीनों में से चूं कि यजु से, आकाशात्मक वाक् से ही आगे की सारी सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं अतएव वाक् शब्द से हम **'आकाश'** का ही ग्रहण करेंगे। प्राण से उत्पन्न होने वाली इस वाक् से–अर्थात् आकाश से–पहले-पहल पानी ही उत्पन्न होता है। वायु का उस स्थिर आकाश में—जब संघर्ष होता है तो सर्वप्रथम पानी ही पैदा होता है। पानी का अर्थ स्थूल पानी नहीं है—अपितु पानी से अम्भः पानी अभिप्रेत है—जो कि स्थूल पानी का कारण है। यह पानी वायुस्वरूप ही है—अतएव पंचभूतों में–इसे पानी न कह कर वायु ही कहा जाता है। यह परमेष्ठिमण्डल की वस्तु है। बस, स्वयम्भू प्राण-मण्डल के अनन्तर यही पारमेष्ठ्य आकाश–स्वरूप वायुमय वाङ्मण्डल है। प्रकृतियज्ञ के प्रारम्भ में—प्राणानन्तर–उसी प्राण से यह वायु–स्वरूप पानी ही पैदा होता है जिसे कि वाक भी कहते हैं। अतएव भगवान् मनु कहते हैं—

"सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।" (मनुस्मृति १।८)

बस, यही वाक्–यही आकाश–उत्तरोत्तर ग्रन्थि-बन्धन होने के कारण वायु, तेज, जल, पृथिवी, स्वरूप में परिणत हो जाता है। आकाश भूतों में पहला भूत है। मन और प्राण दोनों असंग हैं—साक्षात् रस–स्वरूप है। अतएव दोनों ही आत्मा कहलाते हैं। इसी से—मन प्राण से ही–वाक् उत्पन्न

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

होती है। मन की स्थूलावस्था का नाम प्राण है, प्राण की स्थूलावस्था का नाम वायु है—वायु की स्थूलावस्था का नाम तेज है—तेज की स्थूलावस्था का नाम पानी है, पानी की स्थूलावस्था का नाम मिट्टी है। संचर-क्रम में वही मन मिट्टी बना हुआ है। प्रति-सञ्चर-क्रम में वही मिट्टी अपनी असली हालत में आ जाती है। इसी सृष्टि-क्रम को बतलाती हुई श्रुति कहती है—

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।" इति।। (तै० उ० ब्रह्मवल्ली, २।१)

तेज, अप्, अन्न—इन तीनों के त्रिवृत्करण से ही सारी भूत-सृष्टि उत्पन्न होती हैं। 'तेज' मन का नाम है। 'आप्' प्राण का नाम है। प्रत्येक के तीन-तीन के मिलने से सारी सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं। जो पहला तेज और प्राण है, वे रस की शुद्ध अवस्थाएँ हैं— अतएव वे भूत नहीं कहलाते—एवं अवशिष्ट पांचों में—तीनों मिले हुए हैं—अतएव वे (बहुभिर्हू तः) इस व्युत्पत्ति से भूत कहलाने लगते हैं।

शरीर छोड़ने पर आत्मा के साथ भूत-सूक्ष्म भी जाते हैं। भूत-सूक्ष्म के साथ संपरिष्वक्त हो कर ही आत्मा लोकान्तर में जाता है क्योंकि आत्मगति-विषयक श्रुति के प्रश्नोत्तर से यही सिद्ध होता है। इसी बात को बतलाते हुए भगवान् वेदव्यास कहते हैं—

"तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम्।"
(ब्रह्मसूत्र ३।१।१)

श्रुति में प्रश्न किया गया है कि—"वोभयथा पंचम्यामाहुता वापः पुरुष वचसो भवन्तीति—उत्तर में द्युम्पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष, योषितृ इन पांच अग्नियों में श्रद्धा-सोम-वृष्टि-अन्न-रेत-स्वरूप आहुति-क्रम बतलाकर अन्त में श्रुति कहती है—

"इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाथ जायते"।
(छां० उ० ५।९।१)

आगे जा कर फिर प्रश्न उठता है कि—जब श्रुति में—पानी मात्र से पुरुष की उत्पत्ति बतलायी है तो फिर प्राणोत्क्रमण में भी केवल पानी ही

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का जाना मानना चाहिए—फिर संपरिष्वक्तः का अर्थ "भूतसूक्ष्मैः"—यह कैसे किया जाता है—इसका उत्तर देते हुए भगवान् व्यास कहते हैं—

"त्र्यात्मकत्वात्तुभूयस्त्वात्।" पानी से शरीर बना है—इसका अर्थ यह नहीं कि खाली पानी ही से बना है। नहीं, अपितु तेज, अप्, अन्न—इस त्रिवृत् के भी त्रिवृत् करण से शरीर बना हुआ है। पानी का अर्थ—तेज, अप्, अन्न है—न कि पानी। इस त्रिवृत् के पुनः त्रिवृत्करण से शरीर बनता है। अतः संपरिष्वक्त का—भूत-सूक्ष्मैः सह—यह अर्थ अवश्य ही हो सकता है। कदाचित् कहो कि यदि ऐसा था तो श्रुति को सारे ही भूतों का नाम लेना चाहिए था न कि केवल पानी ही का—इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि—"भूयस्त्वात्"—शरीर बनता है त्रिवृत् पानी से ही; परन्तु चूं कि तीनों में अधिक हिस्सा पानी ही का है अतएव पानी का नाम ले दिया गया है। तेज, अप्, अन्न इनमें तेज—मनस्वरूप है। अप्—प्राणस्वरूप है एवं अन्न—वाक्स्वरूप है। बस, इनके त्रिवृत्करण से शरीर—निर्म्माण होता है, जैसा कि श्रुति कहती है—

"तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि"—इति। सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्। तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोत्"। (छा० उ० ६।३।३-४)

नीचे लिखी तालिका से—त्रिवृत्करण—विभाग स्पष्ट समझ में आ जाता है—

तेजः	आपः	अन्नम्				
॥	॥	तेजः	आपः	अन्नम्		
॥	॥	॥	॥	॥		
॥	॥	॥	॥			
॥	॥	॥	॥	तेजः	आपः	अन्नम्
॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥
॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥
(मनः	प्राणः)	आकाशम्	वायुः	तेजः	जलम्	पृथिवी
(द्वयोर्भूतत्वं नास्ति)		(वाक्)				

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कहना हमें प्रकृत में पूर्वप्रपञ्च से यही है कि–वाक् प्राण की स्थूलावस्था का नाम है एवं प्राण, मन की स्थूलावस्था का नाम है। परिच्छिन्न केन्द्रीय रस का नाम ही मन है। वही मन, अवस्था–विशेष से प्राण–वाक् स्वरूप में परिणत हो जाता है। वाक् से पांचों भूतों का ग्रहण होता है क्योंकि वाक् की स्थूलावस्था का नाम ही तो पृथिवी–जलादि है। इसीलिए "वाचीमाविश्वा भुवनान्यर्पिता" (तै० ब्रा० २।८।८।४) कहा जाता है। बस, इसी विज्ञान को लक्ष्य में रख कर–भाष्यकार कहते हैं—

"वागिति भूतमाह। पंचभूतानां वागाकाश तादात्म्यात्।" ये पाँचों ही भूत प्राण से ही उत्पन्न होते हैं, प्राण पर ही प्रतिष्ठित रहते हैं एवं अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं। जिसका जो प्रभव, प्रतिष्ठा एवं परायण (अन्तिमस्थान) होता है, वह उससे अभिन्न होता है। वाक् का प्रभव, प्रतिष्ठा, परायण प्राण है अतएव प्राण वाक् से अभिन्न है। प्राण की स्थूलावस्था का नाम ही वाक् है—

तानि च भूतानि प्राणात् प्रभवन्ति–प्राणेतिष्ठन्ति, प्राणेऽपियन्ति।

प्राण, मन से नियुक्त होकर अपना काम करता है। अर्थात् मन की स्थूलावस्था का नाम ही प्राण है। अतएव प्राण, मन से अभिन्न है। प्राण, मन के आधार पर अवलम्बित हैं एवं भूत प्राणावलम्बित हैं। वस, यह अविनाभूत जो त्रितय है, वही "अस्ति" शब्देन व्यपदिष्ट होता है। मन–प्राण–वाक् अर्थात् संसार को ही अस्ति (है` कहते हैं—

प्राणश्चायं मनोनियुक्तः प्रथते। मनोऽवलम्बितः प्राणः। प्राणावलम्बितानि भूतानि। एतदेव त्रितयमविनाभूतं "अस्ति" इति व्यपदिश्यते।

ज्ञान, क्रिया, अर्थ–सारा प्रपञ्च इन्हीं तीनों में वँटा हुआ है। हम जानते हैं कि पदार्थ हैं एवं उनमें क्रिया हो रही है। बस, ज्ञान–क्रिया–अर्थ के अलावा—जानने के, क्रिया के और पदार्थों के अलावा–और कोई चौथी वस्तु है ही नहीं। ज्ञानोत्पत्ति में पञ्चभूत अर्थात् वाक् की कारणता है। इच्छा,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ज्ञान का धर्म्म हैं, मन ज्ञानोत्पत्ति में कारण है, अतएव इच्छा का उक्थ मन को भी मान लिया जाता है।

इच्छा के अनन्तर प्राण–व्यापार होता है। इसे ही चेष्टा कहा करते हैं। यही यत्न कहलाता है। आन्तर–व्यापार को चेष्टा, कृति एवं यत्न शब्दों से व्यवहृत करते हैं।

हम कोई काम करने लगते हैं, तो सबसे पहले इच्छा होती है–मैं यह करूं। बस, पहले इच्छा होती है। हो क्यों नहीं, जब कि प्राकृतिक सृष्टि में, पहले मन के काम का ही आविर्भाव होता है। हम उसी प्रकृति के तो बच्चे हैं। इच्छा के अनन्तर प्राण–व्यापार होता है। बीमार आदमी उठने की इच्छा करता है एवं इच्छा के साथ ही चेष्टा भी करता है–परन्तु उठ नहीं सकता। बस, इच्छा-ज्ञान का अर्थात् मन का सीगा (विभाग) है,प्राण–चेष्टा का सीगा है–वाक्–उठने का सीगा है। हम चाहते हैं कि अंगुली उठाएँ। बस, चाहने के साथ ही प्राण–व्यापार होता है–प्राण के व्यापार के साथ ही इच्छा हो पड़ती है। तीनों अविनाभूत हैं। बिना इच्छा के प्राण व्यापार नहीं–बिना प्राणव्यापार के–वाग्व्यापार नहीं। इच्छा से उत्थान हो कर–वाक् पर आ कर "कृतम्" सम्पत्ति प्राप्त होती है। इसलिए कहते हैं–

"ज्ञानजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या भवेत् कृतिः।
कृतिजन्यं भवेत् कर्म्मं तदेतत् कृतमुच्यते।"

ज्ञान, क्रिया, अर्थ, यही तीन सब कुछ हैं। इनके हेतुभूत मन–प्राण–वाक् ही हैं। प्राण–व्यापार को वेद में तप कहा जाता है एवं वाग्–व्यापार को श्रम कहा जाता है। अतएव सृष्टि—प्रतिपादिका श्रुतियों में–अनेक स्थलो में—**"प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एकएवास स एशत् कथंनुप्रजायेति सोऽश्राम्यत्–स तपोऽतप्यत।"**—यह कहा जाता है। सृष्टि में इच्छा, तप, श्रम यही तीन कारण हैं। सारा प्रपंच ज्ञान–क्रिया–अर्थ मय है। मन, प्राण, वाक् के अलावा और है ही क्या ?—इसी अभिप्राय से कहते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

'मनोज्ञानोत्पत्ति हेतुः । प्राणःक्रियोत्पत्ति हेतुः । वागर्थोत्पत्ति हेतुः।"

ज्ञान, क्रिया एवं अर्थ–ये तीन ही–"अस्ति"–इस व्यवहार में हेतुभूत हैं । 'घड़ा है" इसमें तीनों चीजें मौजूद हैं। घड़े में हर पल कुछ न कुछ क्रिया हो रही है । इसी क्रिया के कारण थोड़े समय के अनन्तर घड़ा जीर्ण हो जाता है । जो मजबूती नये घड़े में रहती है वह पुराने घड़े में नहीं रहती। इसमे मानना पड़ता है कि इसमें से कुछ निकल गया । इसीलिए लोक में जीर्ण वस्तु के लिए "अब इसमें दम नहीं रहा" कहा जाता है । बस, प्रतिक्षण होने वाली क्रिया से ही वह वेदम हुआ है—यही मानना पड़ता है। चूंकि घट है—अतएव हम घड़े को प्राण–स्वरूप कह सकते हैं, क्योंकि कुर्वद्रूपता–प्राण–ही का धर्म्म है । घड़ा जगह रोकता है–स्थानावरोधी है–अर्थात् धामच्छद है–अतएव साक्षात् वाक् है । वाक्, भूत को अर्थात् मैटर (Matter) को कहते हैं । मैटर जगह रोकता है । चूंकि घड़ा जगह रोकता है, अतएव हम इसे वाक् कहने के लिए तैयार हैं। घड़े के निर्माण में मन-तत्त्व भी है, अतएव वह जाना जाता है-अर्थात् ज्ञान का विषय बनता है । हम में ज्ञान, क्रिया, अर्थ ये तीन पदार्थ हैं। सजातीय पदार्थ-स्वजातीय से ही सम्बन्ध करता है यह वैज्ञानिक नियम है । अग्नि का सजातीय सूर्य्य ऊपर है–अतः–अग्नि सदैव ऊपर की ओर ही जाता है । पृथिवी अधोभाग की ओर है । हमारा शरीर पार्थिव है, अतः हम चाहे कितने भी ऊपर उछलें–अंततोगत्त्वा, पृथिवी के आकर्षण से धड़ाम् से नीचे गिर पड़ते हैं । एक ढेले को आप कितना ही ऊंचा फेंकिए सजातीयाकर्षण से वह नीचे की ओर आ जाएगा । कहने का तात्पर्य यही है कि परस्पर सम्वन्ध सजातीय–सजातीयों का हुआ करता है । मन का मन के साथ ही सम्वन्ध होता है–प्राण का प्राण के साथ ही सम्बन्ध होता है–वाक् का वाक् के साथ ही सम्वन्ध होता है । ज्ञान, ज्ञान से मिलता है–क्रिया, क्रिया से मिलती है--अर्थ, अर्थ से मिलता है ।

घड़ा हमारे ज्ञान का विषय बनता है–हमारा ज्ञान उससे मिलता है। इससे मानना पड़ता है कि अवश्य ही उसमें मन है । यदि ऐसा नहीं होता तो हमारा ज्ञान उससे मिलता ही नहीं । अपिच, जब वह अर्थ है तो उसमें क्रिया

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भी अवश्य ही माननी पड़ेगी—एवं जब क्रिया है तो मन भी अवश्य ही मानना पड़ेगा, क्योंकि बिना मन के इच्छा नहीं होती—इच्छा के बिना क्रिया नहीं होती—क्रिया के बिना पदार्थस्वरूप स्थिर नहीं रह सकता। ये तीन ही तो "अस्ति" के कारण हैं। बस, इससे सिद्ध हो जाता है कि सारा प्रपञ्च मन—प्राण—वाङ्मय है। इसी मन—प्राण—वाक् के अविनाभूतत्व को बतलाती हुई श्रुति कहती है—

"अपो वा इदमासीत्सलिलमेव ।। स प्रजापतिरेकः पुष्करपर्णे समभवत् ।। तस्यान्तर्मनसि कामः समवर्तत इदं सृजेयमिति। तस्माद्यत्पुरुषो मनसाभिगच्छति तद्वाचा वदति। तत्कर्मणा करोति।"

(बृह० जाबाल उप०, १)

मन, प्राण,वाक्—ये तीनों—अमृत हैं—मौलिक तत्त्व हैं—अतएव इनकी समष्टि को आत्मा कहा जाता है। यह मन—प्राण—वाक्—नामरूप कर्म—सत्य से ढका हुआ है। मन—प्राण—वाक्—नामरूप कर्म—यही प्रजापति का शरीर है। इसमें आधा मर्त्य है—आधा अमृत है। इसीलिए—"अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो-मर्त्यमासीदर्द्धममृतम्"—कहा जाता है। वागमृत का मर्त्य भाग नाम है—मन—अमृत का मर्त्य भाग—रूप है, प्राण—अमृत का मर्त्यभाग कर्म है। तीन अमृत हैं—तीनों के तीन मर्त्यभाग हैं। इस प्रकार सारा संसार षाट्—कौषिक है। मन—प्राण—वाक्—नाम-रूप—कर्म्म की समष्टि का नाम ही सत्ता है। यही साक्षात् ब्रह्म का स्वरूप है। नाम-रूप-कर्म्म तीनों कर्म्म हैं। मन—प्राण—वाक् तीनों ब्रह्म है। मन—प्राण—वाक् आत्मा है। नाम-रूप-कर्म्म शरीर हैं। इसीलिए "स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयोमनोमयः" कहा जाता है।

ब्रह्म अर्थात् मन—प्राण—वाक्, कर्म्म से अर्थात् नामरूपकर्म्म से (शरीर से) ढंका रहता है। नामरूपकर्म्म भी सत्य ही है, सत्तास्वरूप के अन्तर्गत ही है। वही मन—प्राण—वाक् ही तो नामरूपकर्म्म के जनक हैं। अतः उनको मिथ्या नहीं समझना चाहिए। तीनों सत्य हैं—इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"त्रयं वा इदं नामरूपं कर्म्म । × × × × तदेतत्त्रयं सदेकमयमात्मा: । आत्मो एक: सन्नेतत्त्रयं तदेतदमृतं सत्येनच्छन्नं प्राणो वा अमृतं नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः ।" (बृह० उ० १।६।१,३)

बस, अमृत और मर्त्य दोनों ही संसारस्वरूप हैं एवं अमृत और मर्त्य संसार का मूल है । दोनों की सत्ता एक है । अत: अद्वैत में कोई बाधा नहीं आती है । सम्पूर्ण कथन का तात्पर्य यही है कि सारा विश्व मन–प्राण–वाङ्मय है । ज्ञान-क्रिया-अर्थ–इन तीनों के मूलभूत–यही मन-प्राण-वाक् हैं एवं यह ज्ञान-क्रिया-अर्थ ही–"अस्ति"–व्यवहार में कारणभूत है । अतएव हम कह सकते हैं कि मन–प्राण–वाक् समष्टि का नाम ही सत्ता है । मन–प्राण–वाक् कहने को तीन हैं । वास्तव में तीनों एक हैं । "ब्रह्मैवेदं सर्वं नेहनानास्तिकिञ्चन ।"–हमारा यही घण्टाघोष है । बस, इसी भाव को ले कर भाष्यकार कहते हैं—

"ज्ञानक्रियार्थाः—"अस्ति" (इति) व्यपदेश हेतुः"

चूं कि सत्ता मन–प्राण–वाक् समष्टि का नाम है, अतएव सत्ता के लक्षण भिन्न-भिन्न प्रकार से किये जाते हैं । इसीलिए कई दार्शनिक सत्ता का लक्षण करते हैं–"उपलब्धि:सत्"–उपलब्धि का अर्थात् ज्ञान का नाम ही सत्ता है । ज्ञायते यही तो सत्ता का स्वरूप है । पुरोऽवस्थित विषय जब आँख पर आता है तो हमारा प्रज्ञान और वह विषय दोनों मिल जाते हैं । हम विषय के समीप बैठ जाते हैं । हमारे समीप विषय बैठ जाता है । हमारा ज्ञान विषय ज्ञान में घुस पड़ता है । तह पर तह बैठ जाती है । इसी का नाम "उपलब्धि" है । ज्ञान सम्बन्धेन—"उपलब्धि: सत्" सत्ता का यह लक्षण किया जाता है । चूं कि घड़े में मन भी है । मन ही ज्ञान का जनक है । अतएव मन-सम्बन्धेन अवश्य ही "उपलब्धि: सत्" यह कहा जा सकता है । बस, सत्ता के विषय में यही पहला मत है—

(१) "उपलब्धि: सत्"–वेदान्तिनः ।

कई दार्शनिक लक्षण करते हैं—"कुर्वद्रूपं सत्" । इसी अभिप्राय से बौद्ध दार्शनिक सत्ता का–"अर्थक्रियाकारित्वं सत्"—यह लक्षण किया करते

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हैं। प्राण वास्तव में कुर्वद्रूप हैं। अतः प्राणापेक्षया "कुर्वद्रूपं सत्" यह भी अवश्य ही कहा जा सकता है। सत्ता के विषय में यही दूसरा मत है—

(२) "कुर्वद्रूपं सत्–बौद्धाः।"

तीसरा मत है—"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।"—जिसमें उत्पत्ति–स्थिति–लय तीनों भाव रहते हैं, उसी का नाम "सत्" है, यह जैनियों का मत है। वाक्-दृष्टि से देखने पर यह मत भी बिल्कुल ठीक है। वाक् पदार्थ का नाम है। जो पदार्थ है, वह अवश्य ही उत्पन्न हुआ है, वर्तमान में उसकी स्थिति भी है एवं कभी–न–कभी वह नष्ट भी अवश्य ही होगा। बस, सत्ता का यही तीसरा लक्षण है—

(३) "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्"—जैनाः।

बस, वाक्–प्राण–मन–विज्ञान–आनन्द—ये ही पाँच कोश आत्मा के स्वरूप हैं। इन्हीं पांचों कोशों को अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश कहते हैं। उस अन्न–प्राण–मन–विज्ञान–आनन्दस्वरूप—अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप पञ्चावयव आत्मा के पाँच ही आसन हैं, जो कि कोश कहलाते हैं। पाँचों पर विभागेन पाँचों बैठ जाते हैं, तह पर तह लग जाती है। दोनों परस्पर ओत-प्रोत हो जाते हैं। बस, इसी सादेश्यता के कारण अभेद–व्यवहार होने लगता है। आत्मा और शरीर का द्वैतभाव उड़ जाता है। यह विश्व उन पांचों को विभागेन अपने में प्रतिष्ठित कर, उनकी प्रतिष्ठा से स्वयं प्रतिष्ठित हो जाता है। प्रविष्टवत् सृष्ट भी सच्चिदानन्दवत् ही है, एवं आनन्दज्ञानवत् सत्ता भी अभिन्न ही है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

तेऽमी वाक्प्राणमनोविज्ञानानन्दाः पञ्चकोशा आत्मनोरूपम्। तस्मिन् कोशे विभागेन (क्रमशः) इदमन्नमयं (पञ्चभूतमयं) प्राणमयं मनोमयं विज्ञानमयमानन्दमयमिदं विश्वमाहितं प्रतितिष्ठति।

कारण–शरीर पर सूक्ष्म–शरीर रहता है, सूक्ष्म शरीर पर स्थूल शरीर रहता है। यहाँ तक तो पिण्डस्वस्वरस है। बाद में वस्तु का जो ३३ अहर्गण

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तक जाने वाला वषट्कार–मण्डल है, उसे "महिमा" कहते हैं। इन चारों को इकट्ठा मिला, कर 'विश्व" नाम व्यवहृत होता है। इन चारों में से हम सर्वप्रथम कारण–शरीर का ही स्वरूप बतलाएंगे—

कारणशरीरं, सूक्ष्मशरीरं, स्थूलशरीरं महिमा चेति चतुष्टयं संहृत्य विश्वमित्युच्यते। तत्रेदं कारणशरीरं तावद् व्याख्यास्यामः।

आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है एवं विश्व सच्चिदानन्दवान् है। तीन से अतिरिक्त कोई चौथी चीज है ही नहीं। तीन क्यों, एक ही तो वस्तु है। सत्ता चेतना, आनन्द कहने को तीन हैं, वास्तव में तीनों एक हैं। केन्द्रीय आनन्दघन आनन्द नाम से व्यवहृत होता है। आनन्द–रश्मियां ज्ञान कहलाती हैं। प्रतिफलित ज्ञान-रश्मियाँ सत्ता कहलाती हैं। एक ही तत्त्व, अवस्था-भेद से तीन नामों से व्यवहृत होता है। पूर्व प्रकरणों में इस सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा का स्वरूप बतला दिया गया। मन–प्राण–वाक् का नाम ही सत्ता है। अतएव आत्मा को आनन्द–विज्ञान–सत्ता स्वरूप भी बतला सकते हैं एवं आनन्द–विज्ञान–मन–प्राण–वाक् स्वरूप भी बतला सकते हैं चूंकि आत्मा पञ्चावयव है, अतः इस आत्मा के रहने का जो विश्व है, उसमें भी ये पाँच ही कोश हैं जो कि आनन्दमयकोशादि नाम से प्रसिद्ध हैं। पाँचों कलाएं पाँचों कोशों में स्थित रहती हैं। पांचों आत्मावयवों को अपने में प्रतिष्ठित कर यह विश्व स्वयं प्रतिष्ठित बन जाता है। आत्म-प्रतिष्ठा से ही विश्व की प्रतिष्ठा है। यदि आत्मा नहीं तो फिर विश्व भी कोई चीज नहीं। जिस विश्व में यह आत्मा रहता है, उसमें कारण, सूक्ष्म, स्थूल एवं महिमा–ये चार संस्थाएँ रहती हैं। इन चारों की समष्टि का नाम ही "विश्व" है। चारों में सर्वप्रथम कारण-शरीर का नम्बर है अतएव हम क्रमप्राप्त उसी का पहले विवेचन करते हैं।

वैदिक विज्ञान (सायन्स) निगम–परिभाषा पर अवलम्बित है। वेद की निगम और आगम, ये दो ही कुञ्जियां हैं। इन्ही के आधार पर सारे पदार्थों का विवेचन होता है। **"चतुष्टयं वा इदं सर्वम्" "आत्मैवेदं सर्वम्" त्रिवृद्वाइदं सर्वम्' "षोडशकलं वा इदं सर्वम्"**—इत्यादि अनेक निगम–वचन हैं। इन्हीं नियमों के आधार पर सारा विज्ञान अवलम्बित है। अभी हमें पूर्वोक्त नियमों

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

में से केवल **"चतुष्टयम् इदं सर्वम्"** इस निगम–प्रमाण पर विचार करना है। चतुष्ठयं वा इदं सर्वम् का सीधा–सा अर्थ यही है कि संसार में जितने भी पदार्थ हैं, उन सब की चार-चार संस्थाएं हैं, छोटे-से-छोटे से लगाकर बड़े-से-बड़े पदार्थ में चार तत्त्व (पदार्थ) रहते हैं। एक तिल में भी वे ही चारों पदार्थ हैं एवं एक महाविशाल पर्वत में भी ही चार पदार्थ हैं। **चतुष्टयं वा इदं सर्वम्** अटल नियम है, इसका विरोध कहीं भी वे नहीं बतलाया जा सकता। १–आत्मा २–सत्त्व ३–शरीर ४–महिमा–यही **चतुष्टयम्** है। इन चारों का ही विस्तृत विवेचन यद्यपि आगे के प्रकरणों में आएगा तथापि सूक्ष्मरूपेण यहां भी इनका स्वरूप बतला देना अनुचित न होगा।

आत्मा से षोडशीआत्मा अभिप्रेत है। अव्यय, अक्षर, क्षर–इन तीनों की समष्टि का नाम आत्मा है। आत्मा अव्ययक्षराक्षर स्वरूप है, त्रिवृत् है। बिना आत्मा के संसार में कोई पदार्थ रहता नहीं। बस, इसी मूल पर त्रिवृद् वा इदं सर्वम्–यह कहा जाता है। आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण, वाक्, ये पाँच कलाएं अव्यय की हैं; ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, सोम–ये पांच कलाएं अक्षर की हैं; प्राण, आप, वाक्, अन्नाद, अन्न—ये पाँच कलाएँ क्षर की हैं एवं १६ वां परात्पर है। बस इन्हीं सोलहों की समष्टि को आत्मा कहते हैं। चूंकि आत्मा संसार के यच्चयावत पदार्थों में रहता है, तथा है वह षोडशी, बस इसी मूल पर **"षोडश कलं वा इदं सर्वम्**—यह कहा जाता है। यही आत्मा सञ्चरक्रम में विश्व कहलाने लगता है एवं प्रति–सञ्चरक्रम में अपनी असली हालत में आ जाता है। आत्मा ही सब बन जाता है, आत्मा ही सब कुछ है। इसी अभिप्राय से **"आत्मैवेदं सर्वम्** कहा जाता है। विचार करना है केवल **"चतुष्टयं वा इदं सर्वम्** पर। अतः अन्य सारे प्रपञ्च को छोड़ कर फिर प्रकृत विषय पर आते हैं। चतुष्टयं में सबसे पहली वस्तु है आत्मा। इसी को षोडशी पुरुष कहा जाता है। जिस समय आत्मा की हृद्–ग्रन्थियां टूट जाती हैं, यह आत्मा अपनी १५ कलाओं को छोड़ कर उस पराव्यय में, अर्थात् ईश्वराव्यय में लीन हो जाता है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु।
कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥

(मुण्डक० उप० ३।२।७)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यही आत्मा अवशिष्ट तीनों का आलम्बन है। यदि आत्मा नहीं, तो कुछ नहीं। आत्मा के अनन्तर नम्बर आता है सत्त्व का। प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ, इन तीनों का नाम है सत्त्व। दूसरे शब्दों में, हम इन्ही तीनों की समष्टि को कारण–शरीर भी कह सकते हैं। आत्मा से सर्वप्रथम इसी सत्त्व भाव का, अर्थात् प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ का, अर्थात् अन्न का उदय होता है, जैसा कि आगे जा कर स्पष्ट हो जाएगा।

सत्त्व के अनन्तर नम्बर आता है शरीर का। यह शरीर–कारण, सूक्ष्म, स्थूल भेदेन तीन प्रकार का है। इन तीनों में से कारण–शरीर का स्वरूप बतलाना ही प्रकृत का विषय है। चौथा नम्बर है महिमा का। यह महिमा अक्षिति और पशु—इन दो भागों में विभक्त रहती है। अक्षिति और पशु–इन दो का नाम ही महिमा है। लोक, वेद, प्राण और देव–इन चारों को 'अक्षिति' कहते है एवं पुरुष, अश्व, गौ, अवि और अज–ये पांच पशु हैं। ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य एवं प्रजापति और वषट्कार ये ३३ देवता हैं। ऋक्, यजु, साम, अथर्वण–ये ४ वेद हैं एवं भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः तपः, सत्यम्—ये सात लोक हैं। (१) मत्स्य (२) अगस्त्य (३) वसिष्ठ (४) भृगु (५) अङ्गिरा (६) अत्रि (७) कश्यप (८) कौशिक (९) पुलस्त्य (१०) पुलह—ये १० ऋषि हैं। बस, इन सबकी समष्टि का नाम ही अक्षिति है।

संसार में जितने भी पदार्थ हैं, उस सब में प्रत्येक में ४–४ पृष्ठ होते हैं वे पृष्ठ निश्नलिखित नामों से प्रसिद्ध हैं—(१) चित्यपृष्ठ (२) रोदसी पृष्ठ (३) क्रन्दसी पृष्ठ (४) संयती पृष्ठ। इन चारों पृष्ठों में से जो चित्य पृष्ठ है, वह "मर्त्य पृष्ठ, कहलाता है तथा अवशिष्ट तीनों पृष्ठ 'अमृत पृष्ठ' किंवा "चितेनिधे पृष्ठ कहलाते हैं। पञ्चपुण्डीरा प्राजापत्या वशा–स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य्य, चन्द्र और पृथिवी–इन पांच लोकों में विभक्त है। इन्ही पांचों में पूर्वोक्त भूः भुवः, स्वः आदि सप्त लोक-व्यवस्थित हैं एवं इन्हीं सातों लेकों में त्रैलोक्य त्रिलोकी व्यवस्था है। हम जिस पर निवास करते हैं, वह पृथिवीलोक है, सूर्य्य द्यु–लोक है एवं सूर्य्य और पृथिवी के बीच का जो स्थान है, वह अन्तरिक्षलोक है। बस इस पहली त्रिलोकी को ही 'रोदसी त्रिलोकी' कहते हैं। जो पृथिवी है, वह

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भूर्लोक है, अन्तरिक्ष भुवर्लोक है एवं सूर्य्य स्वर्लोक है। इस प्रकार भूः, भुवः, स्वः इन तीनों लोकों का नाम ही "रोदसी त्रिलोकी" है। इन तीनों की (भूः, भुवः, स्वः की) जो समष्टि है उसे पृथिवी समझना चाहिए एवं सूर्य्य से ऊपर जो परमेष्ठि–मण्डल है, उसे द्युलोक समझना चाहिए तथा परमेष्ठी और सूर्य्य के बीच का जो स्थान है, उसे अन्तरिक्ष समझना चाहिए। बस, दूसरी त्रिलोकी का नाम ही क्रन्दसी त्रिलोकी है। रोदसी का द्युलोक क्रन्दसी की पृथिवी है। तदनन्तर परमेष्ठी को पृथिवी समझो; स्वयम्भू को द्युलोक समझो; अन्तर–स्थान को अन्तरिक्ष समझो; इसी त्रिलोकी का नाम संयती त्रिलोकी है तीन त्रिलोकियों के हिसाब से यद्यपि नौ लोक होने चाहिए परन्तु दो (स्वः तथा परमेष्ठी) लोक, द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों बन जाते हैं अतएव लोक कुल ७ ही रह जाते हैं। इस प्रपञ्च से बतलाना हमें यही है कि इन सातों लोकों के पदार्थ प्रति वस्तु में रहते हैं। सूर्य्य, जल, वायु, आकाश इत्यादि सारे पदार्थ प्रति वस्तु में रहते हैं। जिस क्रम से प्रकृति में इनका सन्निवेश है, उसी क्रम से सारे पदार्थों में इन सातों लोकों की स्थिति रहती है। सबसे पहले है शरीर भाग। शरीर मरणधर्म्मा है, विनाशी है, अतएव उसे चित्य-पृष्ठ किंवा मर्त्य-पृष्ठ कहा जाता है। बस, पहला पृष्ठ यही चित्य-पृष्ठ है। इसके अनन्तर स्थान है रोदसी त्रिलोकी का, भूः, भुवः, स्वः का। अतएव इनके जो पदार्थ इस चित्य-पृष्ठ पर आ कर इसकी अपनी चीज बन जाते हैं, उनकी समष्टि का नाम 'रोदसी पृष्ठ' समझना चाहिए। बस, यही क्रम क्रन्दसी-पृष्ठ और संयती-पृष्ठ में समझना चाहिए। चित्य-पृष्ठ शरीर कहलाता है, अवशिष्ट तीनों पृष्ठ महिमा नाम से प्रसिद्ध हैं। ये तीनों ही चूंकि पिण्ड से बाहर ३३ अहर्गण तक रहते हैं, अतएव अमृत नाम से प्रसिद्ध हैं। इन तीनों पृष्ठों में अर्थात् महिमा में, भूर्भुवः आदि सातों लोक रहते हैं, ३३ देवता रहते हैं, प्राण रहते हैं, वेद रहते हैं, पांचों पशु रहते हैं। आश्चर्य नहीं करना चाहिए। यदि आप ध्यान से सारे अनुवाक् को पढ़ जाएंगे तो आपको इस कथन की सचाई का परिचय मिल जाएगा। विषय अति गहन है अतः विस्तार से बतलाने पर भी कठिनता रह ही जाती है।

सम्पूर्ण कथन से सिद्ध हो जाता है कि संसार के यच्चयावत् पदार्थों में, चाहे वे छोटे–से–छोटे हों या बड़े–से–बड़े हों, सब में आत्मा, सत्त्व,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शरीर, महिमा–ये चार भाग (पार्ट) मौजूद हैं। चारों में से आत्मा का स्वरूप वतला दिया गया। आत्मा सत्ताघन है, आनन्दघन है, चिद्घन है। विजातीय पदार्थ से शून्य जो सजातीय संघ है, उसे ही "घन" कहते हैं। विजातीय संसृष्ट सजातीय भाव ही घन कहलाता है। विजातीय-रहित जो संसृष्ट, सजातीय भाव है, वही "घन" कहलाता है, जैसे लूण (लवण, नमक) की डली। नमक किंवा मिश्री, दोनों की डलियों को ही हम घन कहने के लिए तैयार हैं। लूण में जहाँ भी, जिस ओर भी दृष्टिपात करेंगे, नमक दिखलाई पड़ेगा। उसमें से जहाँ से भी आप उठाएँगे, नमक ही नमक मिलेगा। विजातीय पदार्थ का वहाँ प्रवेश ही नहीं है। अतएव सैन्धव-संघ को "सैंघव-घन" कहा जाता है। बस, यही दशा आत्मा की भी समझनी चाहिए। आत्मा भी सत्ता-चेतना–आनन्द–घन ही है। सत्ता, चेतना, आनन्द के अलावा आत्मा में कोई विजातीय पदार्थ ही नहीं है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

स यथा सैन्धवखिल्यः। उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेत नाहास्योद्ग्रहणायेव स्याद्यतोयतस्त्वाददीत लवणमेवैवं वाऽअरऽइदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एव × × × ×। (शत० ब्रा० १४।५।४।१२)

स यथा सैन्धवघनः। अनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एव स्यादेवं वाऽअरऽइदं महद्भूतमनन्तमपारंकृत्स्नः प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति। (शत०ब्रा० १४।७।३।१३)

सम्पूर्ण कथन का सारांश यही है कि आत्मा सच्चिदानन्दघन है। बस, इस सच्चिदानन्दघन आत्मा–तत्त्व से माया–वल के कारण सृष्टि-क्रम में सत्तावच्छेदेन, सत्ता के स्वरूपाधायक "सत्ता" स्वरूप को सुरक्षित रखने वाले प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ–ये तीन भाव उत्पन्न होते हैं। उस आत्मा से सर्वप्रथम सत्त्वोत्पत्ति होती है। सत्त्व से ही अर्थात् प्रतिष्ठादि तत्त्व–त्रय से ही "सत्ता" का स्वरूप वनता है, जैसा कि आगे चल कर मालूम हो जाएगा।

उस सच्चिदानन्दघन आत्मा से सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले यही तीन भाव हैं जो कि सत्त्व नाम से प्रसिद्ध हैं। इसी अभिप्राय से भाष्यकार लिखते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

एतस्मात् तावत् आनन्दघन, चिद्घन, सत्ताघनादात्मभावात् सत्तावच्छेदेन स्वरूपाधायकास्त्रयो भावा उत्पद्यन्ते–प्रतिष्ठा–ज्योत्तिर्यज्ञश्चेति ।

आत्म–तत्त्व से सर्वप्रथम यही तीन तत्त्व पैदा होते हैं । इसमें निम्नलिखित श्रुति ही प्रमाण है । श्रुति कहती है—

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ।। (मुण्डक० १।६)

जो सर्वज्ञ है, सर्ववित् है, जिसका तप शुद्ध ज्ञानमय है, जो सत्य–संकल्प है, उसी तत्त्व से अर्थात् आत्मा से ब्रह्म अर्थात् प्रतिष्ठा, नामरूप अर्थात् ज्योति एवं अन्न अर्थात् यज्ञ, ये तीन भाव उत्पन्न होते हैं ।

पूर्वोक्त श्रुति में ब्रह्मपद दिया है, उससे प्रतिष्ठा तत्त्व ही अभिप्रेत है । अव्यय, अक्षर, क्षर, आत्मा को त्रैधातव्य माना जाता है । इनमें से यदि शुद्ध आत्मा का स्वरूप पहचानना चाहें तो वह अव्यय ही है । आनन्दविज्ञानसत्ताघन जो अव्यय है, वही आत्मा है । अक्षर और क्षर तो उस आत्मा की परा–अपरा प्रकृतियाँ हैं । अक्षर, प्राण का नाम है । यह अक्षरप्राण (१) ब्रह्मा (२) विष्णु (३) इन्द्र (४) रुद्र भेदेन चार प्रकार का है। रुद्र दो प्रकार का है–घोर और शिव । रुद्र अग्नि है । यह अग्नि ही घोर और शिव भेदेन दो प्रकार का है। जो घोर अग्नि है, वह अग्नि नाम से प्रसिद्ध है। सूर्य्य से नीचे का जितना अग्नि है, वह सब घोर है । शरीर में चुभता है अतएव इसे घोर कहते हैं एवं परमेष्ठि-मण्डल में रहने वाला जो अग्नि है, वह पानी की वजह से ठण्डा रहता है। यही हमारे साम्ब सदाशिव भगवान् हैं । शिव और घोर एक ही रुद्राग्नि है, जो स्थान–भेद से दो स्वरूपों में परिणत हो जाता है। इसी अभिप्राय से कहा जाता है—

रुद्रो वा एष यदग्निस्तस्यै ते द्वे तन्वे घोरान्या च शिवान्या च ।

जो शिव अग्नि है, उसे सोम कहा जाता है। रुद्राग्नि को अग्नि ही कहा जाता है । इस प्रकार एक ही रुद्र–अग्नि और सोम–दो स्वरूपों में परिणत हो जाता है । जो अक्षर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र भेदेन चतुष्कल था, वही अग्नि-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सोम–भेदेन पञ्चकल हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र–ये तीनों चित्यपिण्ड में रहने वाले हैं एवं रुद्र अर्थात् अग्नि और सोम–रोदसी, क्रन्दसी एवं संयती-पृष्ठ में रहते हैं। तीनों पृष्ठ इसी रुद्र की महिमा हैं। जिसे हमने महिमा कहा है, वह अग्नि और सोम ही है। जो चित्य अग्नि है, उससे शरीर बनता है, चितेनिधे से महिमा बनती है। चितेनिधे अग्नि २२ अहर्गण तक जाता है, सोम ३३ अहर्गण तक रहता है। इसी मण्डल का नाम तो महिमा हैं।

अस्तु, इन पांचों में से सबसे पहले है ब्रह्मा। ब्रह्मा, प्रतिष्ठा–तत्त्व का नाम है, एवं इन्द्र विक्षेपणशक्ति का नाम है। विष्णु बाहर से अन्न ला–ला कर भीतर जमा किया करते हैं; एवं ठीक इसके विरुद्ध इन्द्र, प्रतिक्षण भीतर से आये हुए प्राण–रूप में परिणत अन्न को बाहर फेंका करते हैं। इस प्रकार इन्द्र और विष्णु शक्ति द्वारा आदान–विसर्गात्मिका स्पर्द्धा प्रतिक्षण चलती रहती है। इसी से महिमा–मण्डल का वितान होता है। वेदसाहस्री, लोकसाहस्री, एवं वाक्साहस्री का निर्म्माण करने वाली इन्हीं दोनों की स्पर्द्धा है, जैसा कि वेद कहता है—

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेम्॥

(ऋग्वेद, ६।६९।८)

जिस वस्तु को विष्णु-शक्ति बाहर से लाती है, उसका नाम सोम है एवं जिस वस्तु को इन्द्र-शक्ति बाहर फेंकती है, उसका नाम अग्नि है। वही सोम पेट में आ कर अग्नि बन जाता है, वही अग्नि बाहर जा कर सोम बन जाता है। इसीलिए तो "एको रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति" यह कहा जाता है। बस, इस इन्द्र और विष्णु का आदान–विसर्गात्मक व्यापार जिस वस्तु पर होता है, उसी प्रतिष्ठा–तत्त्व का नाम "ब्रह्मा" है। व्यापार, क्रिया को कहते हैं। वह तब तक उपपन्न नहीं हो सकती जब तक कि उसका कोई निष्क्रिय आधार न मान लिया जाए। बस, उस निष्क्रिय प्रतिष्ठा–तत्त्व का नाम ही "ब्रह्मा" है। ब्रह्म–प्रतिष्ठा पर ही आदान–विसर्गात्मिका क्रिया होती है। जिसमें प्रतिष्ठा–तत्त्व होता है, ब्रह्मा रहता है, उसी वस्तु की स्थिति रहती है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जिस समय हम ताली बजाते हैं, तो क्षणमात्र के लिए पटाका (पटाक्–ध्वनि) होता है, बाद में वह विलीन हो जाता है। इसका कारण प्रतिष्ठातत्त्वाभाव मात्र ही है। ब्रह्मा ही जगत् के यच्चयावत् पदार्थों की प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा से ही संसार के यच्चयावत् पदार्थ उत्पन्न होते हैं; एवं प्रतिष्ठा–तत्त्व को कहते हैं ब्रह्मा। अतएव ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता बतलाया जाता है। ध्यान दीजिए एक बीज पर, जो अभी बोया गया है, उसमें से रस निकलता है। निकलते–निकलते जब वह रस एक जगह ठहर जाता है, तो फिर वहां से शाखा निकलती है। वह रस फिर आगे जा कर ठहर जाता है एवं उसकी एक गांठ बन जाती है। पुनश्च, फिर वहां से शाखा निकलने लगती है। इस प्रकार होते–होते वह बीज एक महावृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है। इसका एकमात्र कारण रस की प्रतिष्ठा ही है। रस यदि ऊपर जा कर गाँठ में परिणत न होता–तो अवान्तर शाखाएं कथमपि उत्पन्न नहीं होतीं। एवमेव हम देखते हैं कि जिसके वीर्य्य में जितनी अधिक प्रतिष्ठा होतीं है, वह उतना ही अधिक प्रजावाला बनता है। जिनके वीर्य्य में जरा भी प्रतिष्ठा नहीं होती वे सन्तानोत्पादन–क्रिया में, नई सृष्टि में, सर्वथा असमर्थ रहते हैं। प्रतिष्ठा ही ब्रह्मा है, वही सर्वजगत् का मूल कारण है। उस आनन्दघन से सबसे पहले यही प्रतिष्ठा–तत्त्व उत्पन्न होता है। यही प्रथमज है। इससे पैदा होने वाले सारे प्रपञ्च की, यह ब्रह्मा ही प्रतिष्ठा है। यदि ब्रह्मा न हो, तो सृष्टि ही न हो। ब्रह्मालम्बन पर ही सारी सृष्टियां नाचा करती हैं। अव्ययात्मा से उत्पन्न होने वाला, पहला यही "ब्रह्मा" नाम का प्रतिष्ठा–तत्त्व है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

ब्रह्मेति प्रतिष्ठास्याह। ब्रह्मैवास्य सर्वस्य प्रतिष्ठा, ब्रह्मैवास्यं सर्वस्य प्रथमजम्।

हमने बतलाया है कि सत्तावच्छेदेन, सत्ता स्वरूपाधायक, अर्थात् सत्ता-स्वरूप को प्रतिष्ठित रखने वाले, सत्ता–स्वरूप को बनाने वाले–प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ–ये तीन भाव ही पैदा होते हैं। बात वास्तव में सच है। सत्ता का स्वरूप इन्हीं तीनों तत्त्वों से रहता है, जैसा कि आगे के प्रकरण से मालूम हो जाएगा।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC-0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सत्ता, बड़ा ही विचित्र पदार्थ है। बार-बार समझ लेने पर भी इसे ध्यान में रखना कठिन है। यह विश्वातीत पदार्थ है। इसीलिए भाष्यकार पुनरुक्ति-दोष की कोई परवाह न करते हुए दयालुतावशात्, समझाने के लिए, बार-बार हर विषय को दोहराते हैं, ताकि सर्वसाधारण की समझ में यह गहन विषय सहज ही आ जाए। सत्ता का स्वरूप बतलाते हुए भाष्यकार कहते हैं–"यह सत्ता, वस्तूपलब्धि-लक्षणा है।" घड़ा है, वस्त्र है, मनुष्य है। बस, घटपटादि वस्तुओं की जो उपलब्धि है, ज्ञान है, वही सत्ता है। उपलब्धि का, अर्थात् ज्ञान का नाम ही "सत्ता" है। ज्ञायते, घटमहंजानामि, इसी का नाम अस्ति है। ज्ञान और अस्ति, साधारण मनुष्यों की दृष्टि में भिन्न वस्तुएं हैं। वास्तव में, जो ज्ञान है, वही सत्ता है। "घड़ा है"—यही सत्ता का स्वरूप है, इसी की तो उपलब्धि है। घड़ा है, इसके अलावा और ज्ञान बच ही क्या जाता है? किसी से पूछा जाता है कि आपको घड़े का ज्ञान हो गया? वह कहता है, हो गया। आप पूछते हैं–क्या प्रमाण? वह कहता है—देखो, यह घड़ा है न! इसमें सन्देह करने की क्या आवश्यकता है? प्रत्यक्ष ही घड़े का ज्ञान हो रहा है! पूर्वोक्त वाक्य-विन्यास से, उपलब्धि को ही, सत्ता की उपाधि मिल जाती है। यह घड़ा है, इसलिए जानते हैं, यह सर्वलोक-सामान्य व्यवहार है। घड़ा है, इसलिए उपलब्धि होती है; नहीं है, इसलिए उपलब्धि भी नहीं होती, अर्थात् ज्ञान भी नहीं होता। इस लोक-सिद्ध व्यवहार से स्पष्ट ही सिद्ध हो जाता है कि सत्ता, उपलब्धि से, ज्ञान से पृथक वस्तु नहीं है। सत्ता, उपलब्धि-लक्षणा ही है। उपलब्धि का नाम ही सत्ता है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"वस्तूपलब्धिलक्षणाहीयं सत्ता।"

"सत्ता" नाम है अस्तित्व का। इस अस्तित्व के स्वरूप को रखने वाली प्रतिष्ठा ही है। ठहराव ही सत्ता का स्वरूप है। यदि प्रतिष्ठा-तत्त्व न होता, वस्तुओं में क्षणमात्र भी ठहराव न होता, तो आप घटोऽस्ति, पटोऽस्ति इत्यादि शब्द अपने मुंह से कभी नहीं बोल सकते थे। "है"—इसका आधार ठहराव ही है। यदि वस्तु ठहरी हुई है, प्रतिष्ठित है, तो आप "है"—कहने के लिए तैयार हैं। यदि उसमें ठहराव नहीं है, तो फिर उसके लिए "है"—इस सत्ता

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का प्रयोग कथमपि नहीं किया जा सकता। प्रतिष्ठा ही सत्तास्वरूपाधायक है। इसीलिए तो **"ब्रह्मैवास्य सर्वस्य प्रतिष्ठा"** कहा गया है।

सत्ता की सत्ता, यही प्रतिष्ठा है, जो कि ब्रह्म नाम से प्रख्यात है। यह प्रतिष्ठा दो प्रकार की है—एक का नाम है **"सत्ता-प्रतिष्ठा"**, दूसरी का नाम है **"विधृति-प्रतिष्ठा"**। दोनों में असली चीज सत्ता–प्रतिष्ठा ही है। यदि सत्ता–प्रतिष्ठा न हो, तो अकेली विधृति–प्रतिष्ठा क्या करे? क्या करे, इतना ही नहीं, सत्ता–प्रतिष्ठा के अभाव में विधृति–प्रतिष्ठा का कोई स्वरूप ही न बचे। सत्ता–प्रतिष्ठा वह है, जो प्रत्येक वस्तु में स्वात्माधारणानुकूला प्रतिष्ठा होती है। अपने–आप में जो एक ठहराव होता है, उसी का नाम सत्ता–प्रतिष्ठा है। यह सत्ता–प्रतिष्ठा जहां पर अथवा जिस पर प्रतिष्ठित है, वही इसकी विधृति–प्रतिष्ठा है। उदाहरणार्थ पुस्तक और टेबिल को ले लीजिए। विधृति नाम है पकड़ का। पुस्तक, टेबिल की विधृति–प्रतिष्ठा को लिए हुए है। पुस्तक की जो अपनी प्रतिष्ठा है, जिससे कि पुस्तक का अपना स्वरूप बना हुआ है, जिसके कि न होने से, पुस्तक है—यह अस्ति–व्यवहार ही उठ जाता है—वह तो है सत्ता–प्रतिष्ठा। टेबिल पर रखे रहने के कारण पुस्तक नीचे नहीं गिरती है अपितु टेबिल पर प्रतिष्ठित रहती है, यदि टेबिल पर से पुस्तक हटाली जाएगी तो पुस्तक की विधृति–प्रतिष्ठा निकल जाएगी। परन्तु ध्यान रहे, उसी समय उसमें पृथिवी की विधृति–प्रतिष्ठा घुस पड़ेगी। टेबिल में भी जमीन की विधृति–प्रतिष्ठा है एवं अपनी स्वसुप्रतिष्ठा (सत्ता–प्रतिष्ठा) भी है। कहने का तात्पर्य्य यही है कि संसार के यच्चयावत् पदार्थों में स्व–प्रतिष्ठा अर्थात सत्ता–प्रतिष्ठा एवं पर–प्रतिष्ठा अर्थात् विधृति–प्रतिष्ठा–ये दो–दो प्रतिष्ठाएं रहती हैं, जैसा कि हम इस विषय को आगे और भी खोल कर रखने वाले हैं।

इन दोनों प्रतिष्ठाओं में से जो सत्ता–प्रतिष्ठा है, वह सर्वथा स्वतन्त्र है, अनिरूपक है, अपरिच्छिन्न है, अतएव स्वाच्छद है एवं निरपेक्ष है। पुस्तक को अपनी स्वात्मप्रतिष्ठास्वरूप सत्ता के लिए अन्य की अपेक्षा नहीं है। परन्तु जो विधृति–प्रतिष्ठा है, वह सर्वथा परिच्छिन्न है, सनिरूपक है, परतन्त्र है, सापेक्ष है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अस्तु, हमें सिर्फ इतना ही कहना है कि यह सत्ता, उपलब्धिलक्षणा है। उपलब्धि ही सत्ता का लक्षण है। सत्तात्मक जो ज्ञान है उसी का नाम "ब्रह्म" है। यही सबकी प्रतिष्ठा है। ज्ञान दो प्रकार का हुआ करता है—एक वृत्यात्मक एवं दूसरा सत्तात्मक। सविषयक ज्ञान को "वृत्यात्मक ज्ञान" कहा जाता है एवं निर्विषयक ज्ञान को "सत्तात्मक ज्ञान" कहा जाता है। घड़ा है, कपड़ा है, सूर्य्य है, चन्द्र है, नक्षत्र है, इत्यादि जो ज्ञान है, वह वृत्यात्मक ज्ञान है, अतएव परिच्छिन्न है। इन सारे विषयों को एकान्ततः निकाल दो; वह शुद्ध स्वानुभवैकगम्य जो एक "है" बचेगा, व्यापक सत्तात्मक ज्ञान बचेगा, उसी का नाम ब्रह्म है। सत्तात्मक ज्ञान ही ब्रह्म है। इसी अभिप्राय से स्मृति कहती है—

प्रत्यस्ताशेष भेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम् ।
वचसामात्मसंवेद्यं तत् ज्ञानं ब्रह्म संज्ञितम् ।। (पञ्चदशी)

घट, पट, मठ, मनुष्य, स्त्री, पुत्र, रोटी, सूर्य्य, चन्द्र, इत्यादि सारे भेद जहां नष्ट हो जाते है, ऐसा जो एक सत्ता-तत्त्व बचता है, जो कि वाणी से एवं अन्य इन्द्रियों से कहा नहीं जाता है तथा स्वानुभवैकगम्य है—बस, ऐसा जो ज्ञान है, उसे ही "ब्रह्मज्ञान" नाम से व्यवहृत किया जाता है। जब सारे विषयों को ही छोड़ दिया, तो वह गोचर कैसे हो सकता है? परन्तु साथ ही हम यह कहेंगे कि वह स्वानुभवैकगम्य अवश्य है। एक पाँच वर्ष का बालक भी माँ को देखते ही कह उठता है—अहा मां आती है, मां आती है। इस 'है' का ज्ञान आपामर आविद्वत्कुल सबको समान रूप से हो रहा है, परन्तु अनिर्वचनीय है। बतलाओ रात-दिन अनुभव में आने वाली उस सत्ता का रंग काला है या पीला? इस प्रश्न का उत्तर आप कदापि नहीं दे सकते। दें कैसे, जब कि ब्रह्म अनिर्वचनीय है। खूब प्रत्यक्ष है। रात-दिन हम उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं, परन्तु खूब अप्रत्यक्ष है। कभी उसके लिए वह ऐसा है, वैसा है, इस प्रकार का एक भी शब्द मुँह से नहीं निकाल सकते।

एक ही पानी नीबू, नारंगी, अनार, झरबेरी, गुलबनफशा, गुड़हल, गुलाब, केवड़ा, इत्यादि-इत्यादि मधुर-लवणादि रसों से भिन्न-भिन्न स्वरूपों में परिणत कर दिया गया है। सब रसों का स्वाद भिन्न है। परन्तु क्या पानी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अनेकरूपा है ? हर्गिज नहीं । एक ही पानी उपाधि–भेद से नाना भावों में परिणत हो गया है । सारी उपाधियों को हटा दीजिए, वही एक पानी-का-पानी । ठीक इसी प्रकार एक ही सत्ता–ब्रह्म घट–पटादि विषयावच्छेदेन नाना भावों में परिणत दिखलाई पड़ता है । वास्तव में वह सत्ता–ब्रह्म, पानी की तरह एक ही है, जो कि स्वानुभवैकगम्य है । उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । छोड़ो ब्रह्म की चर्चा को । हम आपसे कहते हैं; आपने भिन्न–भिन्न प्रकार के १० मधुर स्वाद चक्खे हैं, बतलाइए, इनमें परस्पर कितना और कैसा तारतम्य है ? मिर्च में कैसा स्वाद आता है, पानी का जायका कैसा है, क्या आपके पास इसका उत्तर है ? सिवाय मौन व्रत के, इस प्रश्न का उत्तर आपके पास हो ही नहीं सकता । भला जब विषयानन्द का भी निर्वचन नहीं हो सकता, तो फिर ब्रह्मानन्द का तो कहना ही क्या है ? इसी भाव को लेकर कहा गया है—

घृतक्षीरद्राक्षा मधु मधुरिमाकैरवविदे–
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्र विषयः ।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
कथङ्कारं ब्रूमः सकल निगमागोचर गुणे ।। (सौन्दर्यलहरी)

भला जब विषयों के ये हाल–चाल हैं, तो फिर ब्रह्म का तो कहना ही क्या है ? रसना सारी इन्द्रियों की उपलक्षणभूता समझनी चाहिए । सम्पूर्ण प्रपञ्च से बतलाना हमें यही है कि सत्ता–ज्ञान–आनन्द इन तीनों का जहां अभेद हो जाता है, उसी का नाम सत्ता है, वही ब्रह्म है । इसी ब्रह्म का नाम वेद है, इस का नाम ही ब्रह्म है । ब्रह्म ही सबकी प्रतिष्ठा है । उपलब्धि का नाम वेद है । उपलब्धि का नाम ही सत्ता है । सत्ता ही ब्रह्म है । जो उपलब्ध नहीं होता है, समझ लो उसका वेद नहीं है । उपलब्धिर्वेदः–यह अटल सिद्धान्त समझना चाहिए । उपलब्धि ही तो सत्ता है । यह व्यापक सत्ता ही तो ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है । बस, इसी अभिप्राय को लक्ष्य में रख कर भाष्यकार कहते हैं—

"वस्तूपलब्धि लक्षणाहीयं सत्ता"

भूतों की ही उपलब्धि होती है । पृथिवी, जल, तेज, वायु, आदि की जो समष्टि है, उसी का तो ज्ञान है । घटपटादि पदार्थ ही तो ज्ञान के विषय

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बनते हैं। घट–पटादि ज्ञान का नाम ही तो उपलब्धि है। इसी भूत–प्रपञ्च को, भगवती श्रुति में 'अस्ति' शब्द से व्यवहृत किया गया है। सारे भूत–प्रपञ्च को, जिसे कि हमने उपलब्धि कहा है, श्रुति ने अस्ति शब्द से व्यवहृत किया है। ऐसी अवस्था में हम अवश्य ही सत्ता को उपलब्धि-लक्षणा कहने के लिए तैयार हैं। श्रुति-प्रामाण्यात् उपलब्धि और सत्ता का पृथक्त्व नष्ट कर देना पड़ता है एवं बाध्य होकर मानना पड़ता है कि सत्ता और ज्ञान दोनों दो वस्तुएँ नहीं हैं, एक ही चीज हैं। वह श्रुति निम्नलिखित है—

त्रय्यां एव विद्यायां सर्वाणिभूतानि। अत्र हि सर्वेषां छन्दसामात्मा, सर्वेषां स्तोमानां सर्वेषां प्राणानां, सर्वेषां देवानां ऐतद्वाऽअस्त्येतद्ध्यमृतं यद्ध्यमृतं तद्ध्यस्त्येतद्‌ तद्यन्मर्त्यम्॥ (शतपथ १०।४।२।२१)

श्रुति कहती है—ऋक्–यजुः सामात्मिका इसी त्रयी-विद्या में सारे भूत प्रतिष्ठित हैं। सारे भूत वेदमय हैं। जो भूत त्रयीविद्यामय हैं, अर्थात् ब्रह्म प्रतिष्ठामय हैं, वे कौन-कौन से हैं, इसका विशकलन करती हुई श्रुति कहती हैं—इस विद्या में सारे छन्द मौजूद हैं। छन्द–गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, वृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप, जगती, भेदेन कुल सात प्रकार के हैं। ये सातों छन्द अग्नि से सम्बन्ध रखते हैं। संवत्सर–मण्डल में ये सात छन्द हुआ करते हैं। इन सातों को ही अहोरात्र किंवा पूर्वापरवृत्त कहा जाता है। हमने बतलाया था कि इस ब्रह्म–प्रतिष्ठा पर वेद, लोक एवं वाक्–साहस्री का वितान होता है। इस मण्डल को **"वषट्कार–मण्डल"** कहते हैं। इसमें जो वाक् है, वह अग्नि से सम्बन्ध रखती है। इसीलिए **"तस्यवाएतस्याग्नेः वागेवोपनिषत्"** यह कहा जाता है। सातों छन्द अग्नि से सम्बन्ध रखते हैं। ब्रह्म की प्रतिष्ठा पर वितत वषट्कार–साहस्री में वास्तव में सातों छन्द रहते हैं, जिनका कि विशद विवेचन आगे के प्रकरणों में आएगा एवं इसी विद्या में सारे प्राणों का आत्मा रहता है। इसी ब्रह्म के सूत्र–रूप वेद–मण्डल में ही ऋषि, पितर, असुर, गन्धर्व आदि सारे प्राण रहते हैं। एवं त्रिवृत्, पञ्चदश, एकविंश, त्रिणव इत्यादि स्तोम भी इसी वषट्कार–मण्डल में रहते हैं। तथा इसी में वसुरुद्रादित्यादि सारे देवता रहते हैं। अन्त में श्रुति कहती है कि इस सारे प्रपञ्च का नाम ही अस्ति है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ऋक्–साम–यजुः—इन तीनों का नाम त्रयीविद्या है। इसी का नाम प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा का नाम ही सत्ता है। सत्ता–स्वरूपाधायक प्रतिष्ठा–तत्त्व सत्ता से पृथक विजातीय पदार्थ नहीं माना जा सकता। ऋक्–साम–यजुः का नाम वेद है। उपलब्धि का नाम ही वेद है। सत्ता उपलब्धि-लक्षणा ही है। इदमस्ति–इस वाक्य में इदं रस है और अस्ति सत्ता है एवं इदमस्ति यह समष्टि ही ज्ञान है। विषय ज्ञान से पृथक् नहीं है। घटमहंजानामि–यह घटाकाराकारित ज्ञान ही तो है। घटाकार ही तो ज्ञान का स्वरूप है। इदमस्ति–इसके अलावा उपलब्धि अर्थात् ज्ञान है ही क्या चीज ? इसीलिए तो—

"अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कुतस्तदुपलभ्यते"—यह कहा जाता है। जब कि छन्द–सोम–प्राण देवताओं की समष्टि को श्रुति भूत बतला रही है एवं इन भूतों की ही उपलब्धि होती है तथा अन्त में श्रुति "एतद्वा अस्ति" से इन सारे भूत–प्रपञ्चों की सत्ता बतला रही है, ऐसी अवस्था में सत्ता उपलब्धिलक्षणा है—सत्ता, ज्ञान से पृथक् वस्तु नहीं है—हमारे इस सिद्धांत को क्यों कर काटा जा सकता है ? हमने प्रकरण के प्रारम्भ में ही बतलाया था कि सत्ता–स्वरूपाधायक प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ, ये तीन भाव उत्पन्न होते हैं परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो ज्ञात हो जाता है कि सत्ता का नाम ही प्रतिष्ठा है। "अस्ति" ही तो ठहराव का, प्रतिष्ठा का स्वरूप है। सत्ता में मन–प्राण–वाक् तीन भाग हैं, तीन क्या, छह हैं क्योंकि नाम–रूप–कर्म्म भी इसी सत्ता में शामिल है। सत्ता का नाम ही ब्रह्म है। "है"—बस यह सत्ता–मात्र ही ब्रह्म का स्वरूप है, जो कि अगोचर है किन्तु स्वानुभवैकगम्य है। यह सत्ता–ब्रह्म, जो कि ऋक्–साम–यजुषात्मक है, अमृत–स्वरूप है। घड़ा है, कपड़ा है इत्यादि में जो घट–पटादि हैं, उनका विनाश हो जाता है, परन्तु "है"—इस सत्ता का विनाश नहीं होता। इसीलिए इस सत्ता को हम ब्रह्म कहने के लिए तैयार हैं। आत्मा को सच्चिदानन्द बतलाया जाता है। इसमें जो सत्ता है, उसमें मन–प्राण–वाक्–नाम–रूप–कर्म्म, ये छह पदार्थ हैं। इन छहों की समष्टि का नाम ही सत्ता है। जो मन–प्राण–वाक् भाग है, वह अमृत है एवं नाम–रूप–कर्म्म भाग मर्त्य है। बस, अमृत और मर्त्य, इन दोनों की समष्टि का नाम ही प्रजापति है, अर्थात् आत्मा है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सत्ता सत्य–स्वरूप है। सत्य उस तत्त्व का नाम है जो कि सदा रहे जिसका कभी भी अभाव न हो। मन–प्राण–वाक् वास्तव में ऐसे ही पदार्थ हैं, अतएव इन्हें सत्य शब्द से व्यवहृत किया जाता है। यह मन–प्राण–वाक् रूपा सत्ता, नाम–रूप–कर्म्म में रहती है अतएव नाम–रूप–कर्म्म भी सत्य हो जाते हैं। अमृत पीने से मरणधर्म्मा मनुष्य भी जैसे अमृत–स्वरूप ही हो जाता है, तद्वत् सत्ता–सत्य–प्रवेशात् मर्त्य नाम–रूप–कर्म्म भी सत्य हो जाते हैं। इस प्रकार एक ही प्रजापति अमृत-सत्य और मर्त्य-सत्य–इन दो सत्यों में विभक्त हो रहता है। अमृत और मर्त्य, दोनों सत्य हैं। इनमें आनन्द-विज्ञान–सत्ता अमृत–सत्य है, नाम–रूप–कर्म्म मर्त्य सत्य हैं। एक ही प्रजापति का आधा भाग मर्त्य है, आधा भाग अमृत है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनोमर्त्यमासीदर्द्धममृतम्।

अस्ति नाम है मन–प्राण–वाक् का, अस्ति का ही नाम है उपलब्धि अर्थात् ज्ञान एवं उपलब्धि का नाम ही है वेद। ऋक्–यजुः–साम ही की तो उपलब्धि होती है एवं उपलब्धि लक्षण जो सत्ता है, वह है सत्य। चूंकि सत्ता, उपलब्धि से पृथक् नहीं है, उपलब्धि–सत्ता है सत्य। उपलब्धि का नाम है वेद, अतएव "वेदाः सत्यम्" यह कहा जाता है।

"यःसर्वज्ञः सर्ववित् यस्यज्ञानमयंतपः" में जो "सर्वज्ञ" पद है उससे सच्चिदानन्दघन अर्थ ही अभिप्रेत समझना चाहिए। हम आनन्द, विज्ञान एवं सत्ता, तीनों को सत्ता भी कह सकते हैं। सत्ता का नाम ही तो उपलब्धि अर्थात् ज्ञान है। ऐसी अवस्था में सत्ता और ज्ञान, दो पृथक् वस्तुएं कैसे मानी जा सकती हैं? फिर, ज्ञान-कन्दल का नाम ही तो आनन्द है, भला, वह ज्ञान से पृथक् कैसे माना जा सकता है? कहने का तात्पर्य्य यही है कि आनन्द-विज्ञान, दोनों सत्ता ही हैं।

आनन्द, विज्ञान, दोनों सत्ता क्या हैं; सत्ता, ज्ञान, आनन्द, इन तीनों का जो अभेद है, उसी का नाम सत्ता है। "अस्ति" ही प्रतिष्ठा–ब्रह्म है। सत्ता–मात्र अगोचर, सर्वसाधारणाविज्ञेय, किन्तु स्वानुभवैकगम्य जो "अस्ति"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ज्ञान है, उसी का तो नाम ब्रह्म है। प्रतिष्ठा–ब्रह्म, सत्ता–घन, आत्म–भाव से उत्पन्न होता है। यह तो समझाने के लिए कहा गया है, वास्तव में देखा जाए तो ब्रह्म–प्रतिष्ठा, इस आत्म–सत्ता भाव का नाम ही तो है। सत्ता का नाम ही ब्रह्म है, इसी ब्रह्म का नाम प्रजापति है। इसके अमृत और मर्त्य, ये दो भाग हैं। इन दोनों भावों (सत्यों) की समष्टि का नाम सत्य–ब्रह्म है। सत्य ही ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है, जिसमें कि अमृत और मर्त्य, दोनों सत्य विद्यमान हैं। इसी अभिप्राय से **"सत्यं ब्रह्मेत्युपासीत"**, यह कहा जाता है। बस, इसी अभिप्राय से **"एतद्वा अस्ति"** कह कर श्रुति कहती है–**"एतद्ध्यमृतम्"**। यह जो त्रयी विद्या है, अर्थात् मन–प्राण–वाक्–मयी उपलब्धि–लक्षणा सत्ता है, अस्ति–भाव है, वही अमृत है। क्यों कि अस्ति का कभी भी विनाश नहीं होता, इसी अभिप्राय से स्पष्टीकरण करती हुई श्रुति कहती है—**"यद्ध्यमृतं तद्ध्यस्ति"**, जो अमृत है, वही तो अस्ति है, अर्थात् **"है"**—इस सत्ता–ब्रह्म का नाम ही तो अमृत है।

हमने बतलाया है कि नाम–रूप–कर्म्मात्मक सत्य, मर्त्य–सत्य कहलाता है। यह भी उसी ब्रह्म का आधा स्वरूप है। मर्त्य भाग भी ब्रह्म ही है। मर्त्य को ब्रह्म से अलग नहीं समझना चाहिए। इसी अभिप्राय से अन्त में श्रुति कहती है—**"एतद्ध्यमृतम्"** अर्थात् जो मर्त्य है, नाम–रूप–कर्म्म–सत्त्व है, वह भी यही ब्रह्म है। मर्त्य भी ब्रह्म का ही भाग है।

महिमा–मण्डल में छन्द, स्तोम, प्राण, देव, लोक इत्यादि पदार्थ रहते हैं। अशीति और पशु का नाम ही महिमा है। लोक, देव, प्राण, वेद, ये चार अशीतियाँ हैं; पुरुष, अश्व, गो, अवि, अजा, ये पांच पशु हैं, जिनका कि जिक्र हम पूर्व प्रकरण में कर आए हैं। हमने प्रत्येक पदार्थ में चार पृष्ठ बतलाए थे–चित्य-पृष्ठ, रोदसी-पृष्ठ, क्रन्दसी-पृष्ठ, संयती-पृष्ठ। इन चारों में से चित्य–पृष्ठ को शरीर बतलाया था एवं अवशिष्ट तीनों पृष्ठों को महिमा बतलाया था। उसी जगह हमने यह भी बतलाया था कि महिमा, अमृत–मण्डल है एवं चित्य–पृष्ठ मर्त्य–मण्डल है। परन्तु इसमें इतना संशोधन कर लेना चाहिए कि तीनों पृष्ठ अमृत–स्वरूप नहीं हैं, अपितु क्रन्दसी और संयती–ये दो पृष्ठ ही अमृत–स्वरूप हैं एवं चित्य–पृष्ठ और रोदसी–पृष्ठ, ये दोनों

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मर्त्य हैं। पृथिवी से सूर्य्य तक का जो स्थान है उसे रोदसी–त्रिलोकी कहा करते हैं; सूर्य्य से ऊपर स्वयम्भू तक, क्रन्दसी और संयती त्रिलोकी हैं। बस, सूर्य्य से ऊपर की जो दोनों त्रिलोकियां हैं, अर्थात् परमेष्ठी और स्वयम्भू-मण्डल हैं, वे अमृत–स्वरूप हैं। सूर्य्य से ऊपर की वस्तु कभी नहीं मर सकती। जो मनुष्य सूर्य्य–भेदन कर उस अशोक महिम–लोक में, परमेष्ठि–लोक में चला जाता है, वह अजर–अमर हो जाता है।

सूर्य्य, अमृत–मर्त्य का विभाजक है। सूर्य्य से अर्वाक् जो पृथिवी और चन्द्र–लोक हैं, अर्थात् चित्य–पृष्ठ एवं रोदसी–पृष्ठ हैं, वे मर्त्य हैं तथा सूर्य्य से पराक् स्वयम्भू, परमेष्ठी, अमृत–लोक हैं। तात्पर्य्य कहने का यही है कि महिमा–मण्डल में से रोदसी–पृष्ठ, चित्य–पृष्ठवत् मर्त्य है एवं क्रन्दसी और संयती अमृत हैं। सूर्य्य से नीचे के दोनों लोक, अर्थात् रोदसी, मृत्यु-स्वरूप है, इसी अभिप्राय से कहा जाता है—

सा या सा वागसौ स आदित्यः। स एष मृत्युः। तद्यत् किंचार्वाचीन-मादित्यात् सर्वं तन्मृत्युनाप्तम्।"

इसी वाक् को महिमा–मण्डल कहते हैं। वाक् ही तो ३३ अहंगण तक जाती है। इसीलिए इस महिमा–मण्डल को वषट्कार–मण्डल कहा जाता है। इसी वषट्कार–मण्डल में, जिसे कि हम रोदसी–पृष्ठ भी कह सकते हैं, छन्द–स्तोम–प्राण–देवता रहते हैं। चूँकि रोदसी पृष्ठ मर्त्य है, अतएव हम इन सबको मर्त्य कहने के लिए तैयार हैं। बस, इसी अभिप्राय से "एतद्वय-मृतम्" कहा गया है। मर्त्यम् से छन्द–स्तोम–प्राणादि ही अभिप्रेत हैं। छन्द, वयोनाध का नाम है, ससीमता का नाम है। महिमा–मण्डल में छन्द ही प्रधान है। यदि छन्द न होता तो वसु, रुद्र–आदित्यादि के स्वरूप ही न बनते। वस्तु–भेद करवाने वाला–यह घट है, यह पट है, इस प्रकार का भेद–प्रत्यय करने वाला यह छन्द ही है। पुस्तक की जो सीमा है, उसकी कलेवर की जो अवधि (इयत्ता) है, उसीका नाम छन्द है। अवधि (सीमा) ही भेद का कारण है। यदि छन्द अर्थात सीमा न होती, तो सब–कुछ एक ही हो जाता, भेद रहता ही नहीं। अतएव हम देवतादि भेद में प्रधान आसन छन्द को देते हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सारा वषट्कार–मण्डल छन्द ही तो है। कहां तक कहें, छन्द की महिमा इतनी बढ़ जाती है कि ऋक्–यजुः–सामात्मक वेद भी छन्द ही कहलाने लगता है। वेद के लिए "**छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति**", इस प्रकार छन्द शब्द का व्यवहार होने लगता है। वैदिक विज्ञान का सारा दारोमदार छन्द पर ही अवलम्बित है। इस छन्द–रहस्य को जानने के लिए श्रीगुरु–प्रणीत "**छन्दःसमीक्षा**" नाम का सुविस्तृत ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

महिमा–मण्डल मर्त्य और अमृत–स्वरूप है। रोदसी–पृष्ठ मर्त्य है, क्रन्दसी–पृष्ठ और संयती–पृष्ठ अमृत हैं। स्तोम–प्राणादि विभाग रोदसी में रहते हैं, अतएव हम स्तोम प्राणादि को भी मर्त्य कहने के लिए तैयार हैं। इस मर्त्य-मण्डल का, रोदसी-पृष्ठ का, स्तोम–प्राण–देवतादि का, आत्मा वही ऋक्–यजुः–सामात्मक वाङ्मण्डल है। त्रयी-विद्या ही इनका आत्मा है। इसी त्रयी-विद्या पर ये स्तोमादि अवलम्वित रहते हैं। इसी त्रयी-विद्या का नाम ब्रह्म है। सत्ता ही ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है। सम्पूर्ण कथन का सारांश यही है कि सत्ता, वस्तूपलब्धिलक्षणा ही है। इसमें पूर्वोक्त श्रुति ही प्रमाण है। श्रुति ने त्रयी-विद्या में सारे भूत बतलाए हैं। सम्पूर्ण भूतों को त्रयीमय बतलाया है एवं वे भूत ही उपलब्ध होते हैं, उपलब्धि उन्हीं भूतों की होती है। आगे जा कर इन्हीं को श्रुति "**अस्ति**" शब्द से व्यवहृत करती है। जिसकी उपलब्धि होती है, उसे ही श्रुति "**एतद्वा अस्ति**" द्वारा सत्ता रूप में बतलाती है। अतएव इस श्रुति–प्रमाण से हम अवश्य ही इस सत्ता को उपलब्धि–लक्षणा बतला सकते हैं। बस, इसी अभिप्राय को लक्ष्य में रख कर भाष्यकार कहते हैं—

"वस्तूपलब्धिलक्षणाहीयं सत्ता। त्रय्यं वाव विद्यायां सर्वाणिभूतानि। अत्र हि सर्वेषां छन्द सामात्मा, सर्वेषांस्तोमानां, सर्वेषां प्राणानां, सर्वेषां देवानाम्। एतद्वा अस्ति। एतद्ध्यमृतम्। यद्ध्यमृतं तद्ध्यस्ति। एतद्युतद्-यन्मर्त्यम्। इति श्रुतेः।"

पूर्वोक्त कथन का ही स्पष्टीकरण करते हैं—

उपलब्धि किसी प्रतिष्ठित भाव की हुआ करती है। जो पदार्थ मौजूद रहता है, उसी की उपलब्धि हुआ करती है। वही वस्तु जानी जाती है, जो कि

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सामने प्रतिष्ठित है। उपलब्धि का, ज्ञान का, एकमात्र कारण प्रतिष्ठित भाव है। यदि पदार्थ है, तो उसका ज्ञान होता है, यदि नहीं है, तो ज्ञान भी नहीं होता है। हमारे सामने पुस्तक रक्खी हुई है। पुस्तक प्रतिष्ठित है तभी तो हम उसे जानते हैं। यदि वह हमारे सामने न रहती, उसकी प्रतिष्ठा उखड़ जाती, उसकी मौजूदगी न रहती, तो फिर उसकी उपलब्धि क्यों कर हो सकती थी ? उपलब्धि प्रतिष्ठित भाव की, सत्ता की, होती है। इसमें प्रधान कारण प्रतिष्ठानुत्सादन होने पर उस वस्तु की अनुपलब्धि ही है। घड़ा है, इसलिए जानते हैं। घड़ा कोई प्रतिष्ठित भाव (पदार्थ) हमारे सामने मौजूद है, अतएव हम "मैं घड़े को जानता हूं", यह कहने का दावा करते हैं। यदि घड़ा सामने नहीं रहता, तो मैं "घड़े को मैं जानता हूं" यह कभी नहीं कह सकता था। इससे सिद्ध हो जाता है कि सत्ता, उपलब्धि से पृथक् वस्तु नहीं है। अस्ति का नाम ही उपलब्धि है। अस्ति—अतो ज्ञायते: नास्ति—अतो न ज्ञायते; यह सर्वलोक—सामान्य व्यवहार है, है—इसलिए जानते हैं, नहीं है—इसलिए नहीं जानते। इस लोक—सामान्य व्यवहार से भी हमारे कथन की ही पुष्टि होती है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

उपलब्धिश्च कस्यचिद् प्रतितिष्ठतो भवति। उत्सादनेऽनुपलब्धे।

पूर्व प्रकरण में हमने वतलाया है—स्तोम, प्राण—देवता, इत्यादि सारे प्रपञ्च की प्रतिष्ठा—यही त्रयी-विद्या है। ऋक्—साम—यजुषात्मिका त्रयी-विद्या ही संसार के यच्चयावत् पदार्थों की प्रतिष्ठा है—जिस प्रतिष्ठा को हमने ब्रह्म नाम से व्यवहृत किया है। संसार के पदार्थों में जो अस्ति—यह प्रतिष्ठात्म सत्ता—भाव देखा जाता है, वह इसी वेदत्रयी की महिमा है। ब्रह्म ही का नाम विद्या है, ब्रह्म ही का नाम वेद है। इसीलिए तो—त्रयो वेदा:, त्रयी विद्या, त्रयंब्रह्म कहा जाता है। वास्तव में सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो तीनों के स्वरूप में थोड़ा—थोड़ा अन्तर है। सत्तावच्छिन्न जो ज्ञान है वह तो ब्रह्म है; संस्कारावच्छिन्न जो ज्ञान है, वह विद्या है; शब्दावच्छिन्न जो ज्ञान है वह वेद है। परन्तु अन्त में फिर हमें यही कहना पड़ता है कि वेद चूंकि इसी ब्रह्म के निःश्वास हैं अतएव इससे अभिन्न हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उपलब्धि का नाम ही वेद है। ऋक्–साम–यजुः की ही उपलब्धि होती है। उपलब्धि सत्ता से अपृथक् होती है। सत्तावच्छिन्न उपलब्धि ही तो ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है। उपलब्धि जब त्रयी-विद्या का नाम है, तो फिर हम अवश्य ही त्रयी-विद्या को सारे पदार्थों की प्रतिष्ठा कह सकते हैं। सत्तावच्छिन्न ज्ञान ही ब्रह्म है। मन–प्राण–वाक् से ही सत्ता का स्वरूप वनता है। मन–प्राण–वाक् का नाम ही वेद-त्रयी है, जैसा कि आगे वतलाया जाएगा। भला फिर हम क्यों न वेदत्रयी को ही सवकी प्रतिष्ठा कहें ? 'है' इसी का नाम उपलब्धि है, उपलब्धि ही का नाम त्रयी-विद्या है एवं "है"—यही सवका आलम्वन है। घट–पट–सूर्य्य–नक्षत्र–चन्द्र–ग्रह इत्यादि विश्व के जितने भी पदार्थ हैं उन सव का यह 'है' ही अर्थात् अस्ति ही आलम्बन है। यदि इन सब पदार्थों में से 'है' निकाल दो तो फिर ये पदार्थ ही न रहें। अतएव वेदत्रयी को हम संसार के सारे पदार्थों की प्रतिष्ठा कहने के लिए तय्यार हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—**ऋक्–साम–यजुरितिहि त्रयीविद्या सर्वस्य प्रतिष्ठा।**

प्रतिष्ठा दो प्रकार की होती है—"आत्मधारणलक्षणा" प्रतिष्ठा तथा "विधृतिलक्षणा" प्रतिष्ठा। जो आत्मधारणलक्षणा प्रतिष्ठा है, वही सत्ता-प्रतिष्ठा कहलाती है। इसी को स्व-प्रतिष्ठा भी कहते हैं। यह सर्वथा स्वतन्त्र है, परानपेक्ष है। दूसरी प्रतिष्ठा है विधृतिलक्षणा। इस प्रतिष्ठा को "पर-प्रतिष्ठा" भी कहते हैं। यह पर-प्रतिष्ठा सर्वथा परतन्त्र है, परापेक्ष है, जैसा कि पूर्व-प्रकरण में उदाहरण द्वारा वतला दिया गया है। जो इतरानपेक्षा सत्ता है, वह प्रथमा अर्थात् आत्मधारणलक्षणा स्व-सत्ता है। पुस्तक की अपनी जो स्व-सत्ता है, जिससे कि पुस्तक का स्वरूप वना हुआ है, वह स्व-सत्ता है। उसमें टेविल वगैरः किसी परसत्ता की अपेक्षा नहीं है। एवं घट-कुण्डल इत्यादि में मृत्तिका, सुवर्णादि की तरह जो दूसरे से संक्रान्त सत्ता रहती है, वह द्वितीया, अर्थात् पर-प्रतिष्ठा है। मिट्टी की सत्ता से घड़ा सत्तावान् है। घड़े की सत्ता सर्वथा परतन्त्र है। एवमेव कटक-कुण्डलादि की जो सत्ता है, वह वास्तव में सुवर्ण की सत्ता है। सुवर्ण के विनाश से उसी समय कटक कुण्डलादिका भी विनाश हो जाता है। परन्तु पुस्तक की सत्ता, जो कि पुस्तक टेबिल पर रक्खी हुई है—टेविल से सर्वथा स्वतन्त्र है। यदि

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

टेबिल को नष्ट कर दिया जाए तो पुस्तक की परसत्ता अर्थात् विधृति-सत्ता अवश्य नष्ट हो जाएगी। परन्तु पुस्तक की जो अपनी सत्ता है, उसका टेबिल के विनाश से कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। इसीलिए तो हम स्वात्मधारण-सत्ता को इतरानपेक्षा कहने के लिए तय्यार हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"सा द्विविधा-आत्मधारण-लक्षणा विधृति-लक्षणाश्च" इतरानपेक्षा सत्ता प्रथमा। घटादिषु मृत्तिकादीनामिवेतरतः संक्रान्ता द्वितीया।

जो स्वसत्ता है—उससे वह पदार्थ अपनी स्वमहिमा में प्रतिष्ठित रहता है; आत्म-धारण से वह स्व-स्वरूप में स्थिर रहता है। महिमा उसी वाङ् मण्डल को कहते हैं—जिसे कि वषट्कार-मण्डल भी कहा जाता है। यह महिमा उसकी खुद की सत्ता है। पुस्तक का जो ३३ तक जाने वाला महिमा-मण्डल हैं—वह उस पुस्तक की स्वसत्ता के आधार पर अवलम्बित है। अपनी महिमा के उदर में, केन्द्र में, वह पिण्ड अर्थात्—चित्यपृष्ठ—तभी तक प्रतिष्ठित रह सकता है—जब तक कि—उसकी स्वसत्ता बनी रहती है। वषट्कार-मण्डल के बीच में पिण्ड की स्थिति—पिण्ड की स्वसत्ता पर निर्भर है। पुस्तक चित्य-पृष्ठ है। उसके बाहर चारों ओर ३३ तक महिमामण्डल जाता है। उस महिमा मण्डल के बीच में—यह पुस्तक स्थिर रहती है—प्रतिष्ठित रहती है। इसका एकमात्र कारण पुस्तक की स्वसत्ता है। बात वास्तव में सच है। यदि पुस्तक की अपनी सत्ता ही न रहे तो फिर पुस्तक की स्थिति का आधार ही नहीं रह पाएगा। सत्ता-विनाश हो, तो पुस्तक का विनाश है। यह सत्ता ही (स्वसत्ता ही) पुस्तक की प्रतिष्ठा है। यदि स्वसत्ता के आधार पर पुस्तक है तो उसकी प्रतिष्ठा है। यदि पुस्तक की अपनी सत्ता नहीं है तो फिर प्रतिष्ठा की कथा ही क्या है? गरज यह है कि—अपने महिमामण्डल के—वषट्कारमण्डल के—बीच में जो पुस्तक की स्थिति है उसका एकमात्र कारण—उस पुस्तक की स्वप्रतिष्ठा है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—"प्रथमया स्वेमहिम्नि तिष्ठति"

जो परप्रतिष्ठा—द्वितीया प्रतिष्ठा—है, वह समवाय सम्बन्धेन अपने कारण में रहती है। जैसे घट की सत्ता, मिट्टी की सत्ता है। मिट्टी की सत्ता से घट की विधृति हो रही है। यदि मिट्टी की अर्थात् परसत्ता

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उच्छिति हो जाए तो घड़े का कहीं पता ही न लगे। बस, यह घड़े में जो एक अस्ति है–सत्ता है–वह वास्तव में पर-प्रतिष्ठा है। इस पर-प्रतिष्ठा से यह घड़ा समवाय-सम्बन्धेन अपने कारण में अर्थात् मिट्टी में रहता है। घड़ा समवाय सम्बन्धेन मिट्टी में रहता है–इसका एकमात्र कारण पर-प्रतिष्ठा है। घड़े को इस पर-प्रतिष्ठा के कारण–समवाय-सम्बन्धेन मिट्टी में बाध्य हो कर रहना पड़ता है। जिस दिन पर-प्रतिष्ठा नष्ट हो जाएगी उसी दिन घड़े जी यमराज के अतिथि बन जाएँगे। बस स्व-प्रतिष्ठा और पर-प्रतिष्ठा में यही अन्तर है। स्व-प्रतिष्ठा से वह वस्तु अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित रहती है– एवं पर-प्रतिष्ठा से वह वस्तु समवाय-सम्बन्धेन अपने कारण में रहती है। समवाय–संयोग सम्बन्ध को भी उपलक्षण समझना चाहिए। टेबिल और पुस्तक ही निदर्शन है। टेबिल पर पुस्तक रखी हुई है। पुस्तक में टेबिल की प्रतिष्ठा घुस रही है–इसीलिए तो पुस्तक टेबिल पर रखी हुई है। बस, यही विधृति-प्रतिष्ठा–किंवा पर-प्रतिष्ठा कहलाती है। पुस्तक इस पर-प्रतिष्ठा के कारण संयोग-सम्बन्ध से उस टेबिल पर प्रतिष्ठित है। परन्तु साथ ही वह अपनी प्रतिष्ठा से स्वमहिमा में भी प्रतिष्ठित हो रही है। बस, इसी स्व-प्रतिष्ठा एवं परप्रतिष्ठा के तारतम्य को बतलाने के अभिप्राय से कहते हैं—

"प्रथमया स्वेमहिम्नि तिष्ठति। द्वितीयया समवायेन कार्य्यं स्वकारणे तिष्ठति।"

ऋक्, साम, यजुः ये तीनों–त्रयी-विद्या नाम से प्रसिद्ध हैं। ये तीनों ही सत्ताविनाभूत हैं। "अस्ति" के साथ ऋक्, यजुः साम घुसे हुए हैं। घुसे क्या हुए हैं–अस्ति का स्वरूप ही ऋक्, यजुः, साम हैं। उसी सत्ताघन से रश्मिरूप से चारों ओर ये ऋक्, यजुः, साम निकलते हैं। आनन्द, विज्ञान सत्ता का जो अविनाभाव है, वही सत्ताब्रह्म है। यह सत्ताब्रह्म–अस्तिब्रह्म- सर्वथा व्यापक है। "है" इस सत्ताभाव से आप किसी भी स्थान को शून्य नहीं बतला सकते। सत्तामात्र जो कि निरस्तसमस्तभेद-स्वरूप है–आत्मसंवेद्य है, वही साक्षात् ब्रह्म का स्वरूप है। इसी सत्ता से ऋक्–यजुः–सामात्मिका त्रयीविद्या का प्रादुर्भाव होता है। ऋक्, यजुः, साम ही ससार के यच्चयावत् पदार्थों की प्रतिष्ठा हैं। घट है–पट है–मठ है–सूर्य्य है–चन्द्र है–नक्षत्र है–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC 0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इत्यादि-इत्यादि समस्त पदार्थों के आगे जो "है" लगा हुआ है–वही तो सबकी प्रतिष्ठा है। 'है' ही घट–पट की स्थिति का प्रधान कारण है। नास्ति का साम्राज्य है तो फिर घट, पट की प्रतिष्ठा का पता ही असंभव है। उस सत्ताघन से उत्पन्न जो ऋक्, यजुः, सामात्मिका प्रतिष्ठा त्रयीविद्या है–वह उस सत्ताब्रह्म से सर्वथा अविनाभूत है।

आकाश की ओर दृष्टिपात कीजिए। अति प्रखर तेज से भगवान् सू तपते हुए नजर आएँगे। कल्पना कर लीजिए, सूर्य्य का जो गोला है–जिस कि हमारी दृष्टि नहीं ठहरती वही सत्ताघन ब्रह्म है। इस सत्ताघन ब्रह्म चारों ओर रश्मियाँ निकल कर फैल रही हैं। हमारे पास पृथिवीलोक में प्रकाश आता है वह इन्हीं सूर्य्य-रश्मियों की महिमा है। सूर्य्य-किरणें सूर्य निकल कर चारों ओर बड़ी दूर तक फैल रही हैं। जहां तक सूर्य्य-रश्मि वितत हो रही हैं–उस सीमा-क्षेत्र का नाम ही "बृहत् साम" है। आपसे पूछते हैं कि क्या ये किरणें सूर्य्य से भिन्न वस्तु हैं? दीपक निकलने वाला प्रकाश क्या दीपक से जुदा चीज है? हर्गिज नहीं। सू से निकलने वाली रश्मियाँ सूर्य्य से भिन्न कथमपि नहीं हो सकतीं। घनावस् का नाम सूर्य्य है एवं वही प्रकाश जब विरलावस्था में आता है तो रश्मि ना से व्यवहृत होने लगता है। क्या इससे रश्मियाँ विजातीय हो गईं? हर्गि नहीं। और आगे बढिए। आगे चल कर वे ही रश्मियाँ २० हजार पानी पात्रों में प्रतिबिम्बित हो कर–२० हजार सूर्य्य-स्वरूपों में परिणत हो जाती हैं। एक ही सत्ताघन सूर्य्य, रश्मियों द्वारा–सूत्र द्वारा–अनन्त स्वरूपों परिणत हो जाता है; पानी भरे प्रत्येक घड़े में पृथक्-पृथक् सूर्य्य चमक लगता है। यहां तक कि एक ही ज्योतिर्घन सूर्य्य उन अनन्त रश्मियों द्वा अनन्त सूत्रों में परिणत हो जाता है। हम आपसे पूछते हैं कि क्या वास्त में सूर्य्य अनन्त हो गये? हर्गिज नहीं। वह एक ही सूर्य्य वृत्ति-भेद से अन बना हुआ है–वस्तुतः स्वरूप से वह एक ही है। बात वास्तव में सच है। तो सर्वत्र व्यापक है। जहां पानी भरा रहता है, वहां वह चमक पड़ता है इससे पानी के अतिरिक्त–"वह नहीं है" यह थोड़े ही माना जा सकता है कहना इस प्रपञ्च से हमें यही है कि–सूर्य्यघन से–सूर्य्य-पिण्ड से–सूत्र-अर्थ

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रश्मियाँ भिन्न पदार्थ नहीं हैं। तथैव सूर्य्य के अनन्त प्रतिबिम्ब भी उससे पृथक् नहीं हैं।

ठीक इसी प्रकार वह जो सत्ताघन सूर्य्यपिण्ड–स्वरूप ब्रह्म है–वही सूत्ररूपेण–घट–पट–सूर्य्य–चन्द्र–ग्रह–नक्षत्र–वन–पर्वत इत्यादि नाना सत्ता–भावों में परिणत हो जाता है। सत्ता का नाम ही प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा का नाम ही ब्रह्म है। वेदत्रयी का नाम ही ब्रह्म है। वेदत्रयीघन–सत्ताघन उस ब्रह्म से सूत्र द्वारा प्रतिबिम्बवत् अनन्त सत्ताएँ हो जाती हैं, अनन्त वेद हो जाते हैं। प्रति पदार्थ की सत्ता पृथक्-पृथक् हो जाती है। हर एक का वेद अलग-अलग है।

इस प्रकार सत्ताघन से उत्पन्न होने वाले–सूत्ररूपेण निःश्वसित होने वाले–जो अनन्त वेद हैं–अनन्त सत्ताएं हैं–वे उस सत्ता-ब्रह्म से पृथक् नहीं कही जा सकतीं।

वह एक ही, प्रतिविम्ब–रूपेण सबके केन्द्र में बैठ जाता है। केन्द्रस्थ ब्रह्म ही अन्तर्य्यामी नाम से प्रसिद्ध है। प्रतिबिम्बवत् प्रत्येक पदार्थ का अन्तर्य्यामी भिन्न-भिन्न हो जाता है। पानी का अन्तर्य्यामी पानी को सदा नीचे ही ले जाएगा, वायु का अन्तर्य्यामी वायु को सदा तिरछा ही ले जाएगा। अग्नि का अन्तर्य्यामी अग्नि को सदा ऊपर ही ले जाएगा। इस प्रकार एक ही अन्तर्य्यामी–नाना-भाव में परिणत हो पृथक्-पृथक् काम करने लगता है। वही ईश्वर–वही अन्तर्य्यामी–उस-उस पदार्थ के अनुकूल केन्द्रस्थान में बैठा हुआ उस पदार्थ का नियमन किया करता है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥
(यजुः ३१।१९)

इसी मूल को ले कर भगवान भी कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्ररूढानि मायया ॥इति॥
(गीता १८।६१)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

एक ही मूल तत्त्व व्यपवृक्त हो नाना स्वरूपों में परिणत हो जाता है। वही सत्ताघन सूत्र द्वारा-रश्मि द्वारा-अनन्त ऋक्, साम, यजुःस्वरूपों में अर्थात् अनन्त सत्ता-स्वरूपों में परिणत हो जाता है। एक ही सत्यात्मा सृष्टिक्रम में त्रिविध-रूप सत्यों में परिणत हो जाता है। जो मूल सत्य है—उसे 'अद्वैत सत्य' कहते हैं। नाना भावों में परिणत हो जाने पर भी चूंकि वह एक ही रहता है अतएव हम उसे अद्वैत सत्य कहने के लिए तय्यार हैं। यही अद्वैत सत्य "अन्तर्य्यामी" सत्य नाम से भी व्यवहृत होता है। वही सत्य जब रश्मिरूप से चारों ओर वितत होता है तो 'सूत्र सत्य' कहलाने लगता है। वही प्रतिबिम्बवत् जब अनन्त सत्ता-भावों में, वेद-स्वरूपों में, परिणत हो जाता है तो 'वेद सत्य' कहलाने लगता है। जो अन्तर्य्यामी सत्य है, उसे ही चिदनुगृहीत 'नियति सत्य' भी कहा करते हैं। देवता-प्राण इत्यादि सारा प्रपञ्च इन्हीं तीनों सत्यों के उदर में रहता है—अतएव—"त्रिसत्या वै देवाः" कहा जाता है। नियतिसत्यम् सूत्रंसत्यम्, वेदाःसत्यः तीनों सत्य कहने को तीन हैं वास्तव में तीनों एक ही हैं। एक ही तीन बन जाते हैं। प्रतिसंचर-क्रम में तीनों एक स्वरूप में परिणत हो जाते हैं। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"तदेतत्त्रयंसदेकमयमात्मा ।
आत्मो एकःसन्नेतत्त्रयम्" ।। (बृहद् आ० उप १।६।३

सत्ताघन ब्रह्म है अद्वैत सत्य नाम से व्यवहृत होता है एवं सूक्ष्मरूपेण जो अनन्त वेद हैं—अर्थात् अनन्त सत्ता है, वही इस ब्रह्म का निःश्वास है। इसीलिए तो वेद को "ब्रह्मनिःश्वसित" कहा जाता है घट-पट इत्यादि नाना भाव जो आप देख रहे हैं वे ऋक्साम की समष्टि ही है। सत्ता-भाव चूंकि सत्ताघन-मूलक है—इन अनन्त भावों का मूल वही सत्ताघन ब्रह्म है अतएव ऋक्, यजुः सामात्मक ये अनन्त सत्ता-भाव उस सत्ताघन से अविनाभूत हैं। एक ही मिट्टी से दो सौ घड़े बनते हैं—एक ही सुवर्ण से भिन्न-भिन्न प्रकार के अनन्त आभूषण बनते हैं—एक ही सूत्र से अनन्त वस्त्र बनते हैं, परन्तु सब अपने कारण से अभिन्न हैं। सारे घड़े अपने कारणभूत मृद्-घन से अभिन्न हैं। सब घड़े मिट्टी ही तो हैं। एवमेव सारे भाव, सारे वेद-ब्रह्ममूलत्वेन-ब्रह्म ही तो हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तथाचैतानि ऋक्साम यजूंषि सत्ताघनाविनाभूतानि सत्ताब्रह्म मूलकानि सत्तातो नातिरिच्यन्ते ।"

अव्यय ही आत्मा का साक्षात् स्वरूप है। अव्यय की आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण, वाक् ये पाँच कलाएँ हैं। मन-प्राण-वाक् इन तीनों की समष्टि का नाम ही सत्ता है। ऐसी अवस्था में अव्यय को सच्चिदानन्द भी कह सकते हैं एवं आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण-वागात्मक भी कह सकते हैं। इस पञ्चकल अव्यय के सृष्टिसाक्षी और मुक्तिसाक्षी—ये दो भाव हैं। आनन्द-विज्ञान-मन ये तीन भाव तो मुक्तिसाक्षी हैं एवं मन-प्राण-वाक् ये तीन भाव सृष्टिसाक्षी हैं। संचर और प्रतिसंचर क्रम में ही दोनों भावों का उपयोग होता है। मन जब सृष्टि की ओर प्रवृत्त होता है तो—क्रमशः प्राण-रूप में परिणत होता हुआ वाक्-स्वरूप में परिणत हो जाता है। वाक् ही का संसार है। इसीलिए—"अथोवागेवेदं सर्वम्" कहा जाता है। जब मन प्रतिसंचर-क्रिया से मुक्ति की ओर झुकता है तो विज्ञान की ओर जाता हुआ आनन्द में लीन हो जाता है—सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार मन, आनन्द-विज्ञान स्वरूप मुक्ति-साक्षी भावों से एवं प्राण-वाक् स्वरूप सृष्टिसाक्षी भावों से अनवरत संचरप्रति-संचर क्रिया में लीन रहता है। विज्ञान की ओर जाना संहार कहलाता है-इसी का नाम मुक्ति एवं प्राण की ओर उन्मुख होना संसार कहलाता है—इसी का नाम सृष्टि है। यही बन्धन है। मन ही इस सृष्टि-संहार का, मुक्ति-बन्धन का कारण है।

इसी अभिप्राय से भगवान् कहते हैं—

"न देहो न च जीवात्मानेन्द्रियाणि परन्तप।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" ॥इति॥

(ब्रह्मबिन्दु उप० १।२)

मन दोनों ओर रहता है अतएव आनन्द-विज्ञान-मन ये तीन मुक्तिसाक्षी बतलाए जाते हैं। मन-प्राण-वाक् का नाम ही है—सत्ता। यही अव्यय ब्रह्म का सृष्टिसाक्षी स्वरूप है। सृष्टि करना इसी मन-प्राण-वाक् का काम है। मन इच्छा का जनक है—प्राण तप का जनक है—वाक् श्रम अर्थात् अर्थ का जनक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है। इसीलिए सृष्टि-प्रतिपादिका जितनी भी श्रुतियाँ हैं उनके प्रारम्भ में ही स ऐक्षत-स तपोऽतप्यत-सोऽश्राम्यत् (वृहद् ग्रा० उप० २।५-६) यह लिखा रहता है। इन्हीं तीनों से नई सृष्टि उत्पन्न होती है। ये ही तीनों ज्ञान-क्रिया-अर्थ-नाम से व्यवहृत किए जाते हैं, जिनका कि विवेचन पूर्व के प्रकरणों में कर दिया गया है। यहाँ हमें सिर्फ इतना ही बतलाना है कि—आनन्द विज्ञान-मन-प्राण-वाक् एतत् पञ्चकलोपेत जो अव्यय है—उसके मन-प्राण-वाक् ये तीन सृष्टिसाक्षी भाव हैं। सृष्टि इन्हीं तीनों से होती है। सत्ताघन ही सृष्टिकर्त्ता है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"मनः प्राणो वागिति त्रीणि सृष्टिसाक्षी अव्ययरूपाणि"।

प्रकरण के प्रारम्भ में बतलाया है कि सृष्टिसाक्षी जो मन-प्राण-वाक् है अर्थात् सत्ता-तत्त्व है उसी से प्रतिष्ठा-ब्रह्म अर्थात् ऋक्-यजुः-साम उत्पन्न होते हैं। अनन्त वेद उसी सत्ताघन से उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न क्या होते हैं-अवस्था विशेष का नाम ही वेद है। उसके जो प्रतिविम्ब हैं—वे ही वेदत्रयी नाम से प्रसिद्ध हैं। यही वेदत्रयी अखिल जगत की प्रतिष्ठा है जैसा कि पूर्व में बतला दिया गया है। सृष्टि में सबसे पहले सत्ताघन से इसी वेदत्रयी अर्थात् प्रतिष्ठाब्रह्म का ही प्रादुर्भाव होता है। तदनन्तर और सृष्टि होती हैं। वह ब्रह्म त्रयीब्रह्म को उत्पन्न कर फिर उस पर स्वयं प्रतिष्ठित हो कर आगे की सृष्टियों को उत्पन्न करता है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत। भूयान्त्स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्यां सैवास्मै प्रतिष्ठा भवत्तस्मादाहुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठेति।"

(शतपथ ब्रा० ६।१।१।८)

सृष्टि में सबसे पहले पानी ही उत्पन्न होता है। त्रयीविद्या को उत्पन्न कर उस पर प्रतिष्ठित हो प्रजापति भगवान् प्राण-व्यापार से वाक् द्वारा सर्वप्रथम पानी उत्पन्न करते हैं—इसी अभिप्राय से आगे श्रुति कहती है—

"तस्मादनूच्य प्रतितिष्ठति। प्रतिष्ठाह्येषा यद् ब्रह्म (त्रयीविद्या)। तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत। सोऽपो सृजत।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वाचएवलोकात् वागेवास्यसासृज्यत । सेदंसर्वमाप्नोद्यदिदं किंच । यदाप्नोत्तस्मादापः । यदवृणोत् तस्माद् वाः" ।।इति।।

(शत० ब्रा०६:१।१।९)

इसी अभिप्राय से भगवान् मनु कहते हैं—

"सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजा ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्" ।।इति।।

(मनुस्मृति १।८)

पूर्वोक्त श्रुति में कहा है कि—पुरुष प्रजापति ने इच्छा की कि मैं बहुत बनूं। 'एकोऽहं बहुस्याम्' ऐसी इच्छा कर सबसे पहले उसने वेदत्रयी को उत्पन्न किया। इच्छा करने वाला वही मनप्राणवागात्मक सृष्टिसाक्षी अव्यय ही है। वही उस वेद का उपादान कारण है। "कारणगुणाः कार्य्यं गुणानारभन्ते" यह सिद्धान्त है। अतएव मन-प्राण-वाक् से उत्पन्न जो ऋक्-साम-यजुः हैं उनमें भी तत्सदृश ही गुणों का होना आवश्यक है। तीनों वेद मन-प्राण-वाक् से उत्पन्न होते हैं। इन तीनों में जो मन है उससे सामवेद का स्वरूप बनता है-अर्थात् मन से सामवेद आविर्भूत होता है, प्राण से यजुर्वेद का स्वरूप बनता है एवं वाक् समन्वयात्-ऋक् का स्वरूप बनता है। अध्यात्म-मण्डल में मन-प्राण-वाक् इन तीनों का हमें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ करता है। इन तीनों में से जो मन है—वह सर्वथा अपरिच्छिन्न है अर्थात् असीम है। वही मन तिल पर जा कर तिलाकाराकारित बन जाता है। इससे मालूम होता है कि मन का कोई अपना आयतन नहीं है। यदि इसका कोई नियत आयतन होता तो—नियत से छोटी वस्तु पर जाने से जगह खाली रहती एवं बड़ी वस्तु पर जाता ही नहीं। परन्तु हम देखते हैं कि जिस पर भी हमारा मन जाता है—उसी का तदाकाराकारित फोटो बन जाता है। घोड़ा सामने होता है—तो मन घोड़े के स्वरूप में परिणत हो जाता है। हाथी सामने आता है तो हाथी जितना बन जाता है। इसीलिए मानना पड़ता है कि वह स्व-स्वरूप से सर्वथा असीम है। उसकी अपनी कोई सीमा नहीं है। चूंकि मन से ही साम का स्वरूप बनता है अतएव साम भी असीम है। साम का स्वरूप ऋक् के अनुसार बदलता रहता है। ऋक् क्या है ? साम क्या है ? यजुः क्या है ? इनका स्वरूप बतलाना प्रकृत से

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सर्वथा दूर जाना है। अतः हम इस प्रकरण को उठाना नहीं चाहते। फिर किसी आगे के प्रकरण में इस वेदत्रयी का स्वरूप बतलाएँगे।

यहाँ सिर्फ इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि संसार के यच्चयावत् पदार्थ ऋक्-यजुः-साम-मय ही हैं। हम जिसका प्रत्यक्ष कर रहे हैं–वही त्रयीवेद है। वेद ही का नाम उपलब्धि है। इसीलिए 'उपलब्धिर्वेदः'–यह कहा जाता है। मन-प्राण-वाक् की समष्टि का नाम सत्ता है। इसमें जो वाक्-भाग है–उसी से ऋक् का स्वरूप बनता है। ऋक् नाम है मूर्ति का, विष्कम्भ का। जिसे अँग्रेजी में डायमीटर कहा करते है–उसी का नाम ऋक् है। हम जिसका प्रत्यक्ष कर रहे हैं—वही ऋक् है। मूर्ति का प्रत्यक्ष होता है-मूर्ति का नाम ही ऋक् है। यह ऋक् अग्नि ही है–जो कि वस्तु-पिण्ड के केन्द्र में से निकल कर बड़ी दूर तक अर्थात् ३३ अहर्गण तक फैला रहता है। केन्द्र से निकलने वाली यह ऋक्–वर्गमूल के कारण उत्तरोत्तर तीन-तीन बिन्दु कम होती जाती है। इसीलिए आप उस वस्तु से ज्यों-ज्यों दूर हटते जाएँगे, त्यों-त्यों वह वस्तु आपको उत्तरोत्तर छोटी दिखलाई देने लगेगी। कारण इसका यही है कि प्रत्यक्ष होता है–इसी ऋक् का। ऋक् उत्तरोत्तर छोटी होती जाती है, अतएव वस्तु भी उत्तरोत्तर छोटी दिखलाई देने लगती है। आप दूर हटते चले जाइए। जहाँ जाने से वह वस्तु एक बिन्दु मात्र दीखने लग जाए, समझ लीजिए वहीं ऋक् की समाप्ति है।

कल्पना कर लीजिए कि आप घर से १०० गज के फासले पर खड़े हो कर देख रहे हैं। आप वहाँ पर खड़े रह कर व्यासार्ध से एक गोल वृत्त बनाइए। उस गोल वृत्त पर, जो कि आपकी स्थिति के बिन्दु के आधार पर बना है–जितने भी मनुष्य खड़े होंगे उन्हें वह वस्तु उतने ही परिमाण से दिखलाई पड़ेगी–जितने परिमाण की आप उसे देख रहे हैं। और आगे बढ़कर मण्डल बनाइए, वहां भी वही क्रम मिलेगा। बढ़ाते-बढ़ाते अन्तिम बिन्दु पर मण्डल बनाइए। उस पर जितने आदमी खड़े रहेंगे उन्हें वह वस्तु आपकी तरह बिन्द्वात्मक ही दिखलाई देगी। बस, यह जो ऋचा के समान भाव से दर्शन कराने वाला, प्रति पदार्थ में रहने वाला मण्डल है, उसी का नाम साम-मण्डल है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उस मण्डल पर खड़े हुए सारे मनुष्यों को–समान मात्रा से ऋचा के दर्शन होते हैं–इसीलिए–"ऋचा समं मने" कहा जाता है। साम का दूसरा लक्षण–"त्रिचं साम" भी किया जाता है। इसका तात्पर्य्य यही है कि विष्कम्भ को अर्थात् डायमीटर को ऋचा कहते हैं। इस डायमीटर को तिगुना कर दिया जाता है तो उस का एक मण्डल बन जाता है। अर्थात् डायमीटर के सहारे से जो मण्डल बनेगा वह उस डायमीटर की नाप से तिगुना होगा। इसी लिए "त्रिचं साम" कहा जाता है। अपिच, ऋचा जितनी देर में बोली जाती है, उससे तिगुना समय साम–मन्त्र में लगता है। तीन ऋचाएँ जितने समय में बोली जाएँ उतनी ही देर में यदि एक ऋचा बोली जाती है तो ऋचा, 'ऋचा' न रह कर 'साम' बन जाती है इसलिए भी 'त्रिचं साम' कहा जाता है। सम्पूर्ण कथन का तात्पर्य्य यही है कि मूर्ति का नाम ऋक् है–मण्डल का नाम साम है। इसीलिए–"ऋङ्मूर्तिर्मण्डलं साम"–यह कहा जाता है। इतना और समझ लेना चाहिए कि ऋक् केन्द्र से उत्तरोत्तर छोटी होती जाती है–एवं साम केन्द्र से उत्तरोत्तर बड़ा होता जाता है। साममण्डल कुल एक हजार होते हैं। इसी रहस्य को बतलाने के लिए—"सहस्र वर्त्मा सामवेदः" कहा जाता है। ऋक् अग्नि है। क्यों कि वाचासमन्वयात्–ऋक् उत्पन्न होती है। वाक् को ही अग्नि कहते हैं। जैसा कि कहा है–

"तस्य वा एतस्याग्नेः-वागेवोपनिषत्"

(शत० १०।५।१।१)

३३ अहर्गणयुक्त वाङ्मण्डल में अग्नि २१ तक जाता है–अग्नि ही का नाम ऋक् है। इसी रहस्य को बतलाने के लिए अग्नि को–एकविंशतिधा बाहुः" कहा गया हैं।

तीसरा वेद है–यजुः। यजुः का प्राण से सम्बन्ध है। ऋक् साम दोनों स्थिर हैं–उनमें क्रिया नहीं है। अतएव–"ऋक्सामे" कह कर इन दोनों को एक विभाग में बाँट दिया जाता है। दोनों स्थिर हैं। यजुः क्रियाशील है। क्रिया प्राण ही का धर्म्म है। यजु में भी यत् और जू अर्थात् आकाश और वायु ये दो पदार्थ हैं। जो यत् है वही वायु है। इसी की गति से नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। वायु से ही रक्तादि का संचार होता है। यदि वायु

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नहीं हो तो कुछ नहीं हो। चूंकि यजुः ही क्रियाशील है, इसी के आधार पर ऋक्-साम की स्थिति रहती है, अतएव तीनों में इसे ही प्रधान माना जाता है। तीनों में यजुः ही मुख्य है। अतएव–"पुरुष" यजुः को ही कहा जाता है, जैसा कि श्रुति कहती है—

"अथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूंषि स यजुषां लोकः"। (शत० ब्रा० १०।५।२।१)

हाँ तो हम बतला रहे थे कि मन से साम का प्रादुर्भाव होता है। साम, मण्डल का नाम है–जो कि ऋक् के चारों ओर रहता है। इस साम का मन की तरह अपना कोई नियत स्वरूप नहीं है, अपितु ऋक् के अनुसार इसे अपना कोई स्वरूप कायम करना पड़ता है। विषयों से जैसे मन का आयतन कायम होता है–तद्वत् ऋक् के आधार पर साम की स्थिति रहती है। यदि वस्तु छोटी है–मूर्ति छोटी है–अर्थात् ऋक्–समूह छोटा है, तो साम-स्वरूप भी छोटा होगा; यदि मूर्ति बड़ी है तो साम भी बड़ा होगा। चूंकि साम मन के सदृश है, उसका कोई निजी स्वरूप नहीं है–अतएव हम अवश्य ही–"मनसा साम्नः स्वरूपं संभवति" कह सकते हैं।

बाद में नम्बर आता है प्राण का। प्राण ही में गति है। अतएव हम यजु के लिए–"प्राणेन यजुषः स्वरूपं संभवति"–यह कह सकते हैं। तीसरा है ऋक्। वाक् ही का प्रत्यक्ष होता है। ऋक् ही मूर्ति-स्वरूप है। मूर्ति ही का तो प्रत्यक्ष होता है। कहने का तात्पर्य्य यही है कि सत्ताघन ब्रह्म जो मन-प्राण वाङ्मय है, सर्वप्रथम ऋक्-यजु-साम स्वरूप प्रतिष्ठा-ब्रह्म को उत्पन्न करता है। इसमें मन से साम का स्वरूप उत्पन्न होता है; प्राण से यजु का एवं वाचासमन्वयात् ऋक् का स्वरूप होता है। मन-प्राण-वाक् का नाम सत्ताब्रह्म है। यही सर्वज्ञ है, अन्तर्य्यामी है–सर्ववित् है। इससे सर्वप्रथम यही ऋक्-यजुः सामात्मिका ब्रह्म-प्रतिष्ठा उत्पन्न होती है–आविर्भूत होती है—

"यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते"॥ (मुण्डक उप० १।९)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तात्पर्य्य यह है कि सर्वज्ञ सृष्टिसाक्षी मन-प्राण-वाङ्मय-सत्ताघन से सबसे पहले यही ब्रह्म-प्रतिष्ठा उत्पन्न होती है। मन से साम उत्पन्न होता है, प्राण से यजु उत्पन्न होता है—वाचासमन्वयात् ऋक् उत्पन्न होता है। इन तीनों में यजु ही मुख्य है, क्यों कि ऋक् और साम यजु ही के अधीन रहते हैं। जब तक क्रिया होती रहती है तभी तक मूर्ति और मण्डल की अर्थात् ऋक्-साम की स्थिति रहती है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"तत्र मनसा साम्नः, प्राणेनयजुषो, वाचासमन्वयाद् ऋचः स्वरूपं संभवति। तत्र यजुर्मुख्यम् ऋक्सामयोस्तदधीनत्वात्"॥

प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ—उस सत्ता—ब्रह्म से ये तीन तत्त्व प्रादुर्भूत होते हैं। इनमें से प्रतिष्ठा—तत्त्व का—जो कि वेदत्रयी नाम से प्रसिद्ध है—स्वरूप बतला दिया गया; अब क्रम—प्राप्त "ज्योति" का स्वरूप बतलाते हैं—

उसी मन—प्राण—वाङ्मय—सृष्टिसाक्षी—सत्ताघन ब्रह्म से—प्रतिष्ठावत्-ज्योति का आविर्भाव होता है। नाम और रूप—इन्हीं दो भावों का नाम ज्योति है। नाम और रूप उसी सत्ता से उत्पन्न होते हैं। प्रतिष्ठित जो पदार्थ है—उसका जो प्रतिभान—स्वरूप प्रकाश है, उसी का नाम—'उपलब्धि' है—उसी का नाम 'ज्योति' है। प्रकाश-उपलब्धि-भान—ये सब ज्योति के ही नाम हैं। घट-पट-वस्त्र-पर्वत-नदी-घर इत्यादि जो प्रतिष्ठित पदार्थ हैं—उनका जो एक 'अस्ति'—यह प्रकाश है इसी का नाम ज्योति है। 'अस्ति' प्रकाश का नाम ही—भान है—अर्थात् ज्ञान है। अस्तिघट :—यही तो उस घट का प्रतिभान है एवं प्रतिभान का नाम ही तो उपलब्धि अर्थात् ज्ञान है। बस, मौजूद रहने वाले पदार्थ का जो ज्ञान है—"हम इस घड़े को जान रहे हैं अथवा जानते हैं" यह जो घट की उपलब्धि है उसे ही हम ज्योति कहने के लिए तय्यार हैं। हमसे कोई पूछता है कि बताओ, हमने तुम्हें जो बात कही थी, वह तुम्हारी समझ में आई या नहीं? यदि तुम्हें वास्तव में उस का ज्ञान होगा तो उसी समय कह बैठोगे—'हां, समझ में आ गई' तो सारा अन्धकार दूर हो गया। यदि समझ में न आएगी तो कह दोगे—अभी कुछ नहीं समझा। अभी तो अंधेरा ही है। इस प्रश्नोत्तर से यह बात साबित हो जाती है कि उपलब्धि का—ज्ञान का—नाम ही ज्योति है। "अहं जानामि" यह जो उपलब्धि है—घट-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पटादि का प्रतिभान है—इसी का नाम ज्योति है। ज्योति कहते हैं—प्रकाश को। यदि पाँचों इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय द्वारा पदार्थ का ग्रहण नहीं होता है तो—उस पदार्थ की उपलब्धि अर्थात् ज्ञान ही नहीं होता है। प्रकाश है—यह तुम ने किस इन्द्रिय से जाना ? उत्तर है चक्षु-इन्द्रिय से। यदि चक्षु-रिन्द्रिय द्वारा प्रकाश का ज्ञान—किंवा प्रत्यक्ष न होता तो—'उजाला हो रहा है' यह बात हर्गिज आपके मुँह से नहीं निकल सकती थी। चक्षु का निदर्शनमात्र है। सारी इन्द्रियों में—यही बात समझनी चाहिए। उपलब्धि का नाम ही ज्योति है, प्रकाश है। यदि किसी भी इन्द्रिय द्वारा पदार्थ का ग्रहण नहीं हो सकता हो, तो फिर उस की उपलब्धि अर्थात् ज्ञान ही नहीं हो। उपलब्धि का—प्रतिभान का—नाम ही तो ज्योति है। यदि इन्द्रिय द्वारा ग्रहण न हो, तो अनुपलब्धि है। अतएव हम अवश्य ही उपलब्धि को, 'ज्योति' कहने के लिए तय्यार हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"अथ नाम-रूपे-ज्योतिः। प्रतितिष्ठतो भावस्य योऽयं प्रकाशः प्रतिभानं सोपलब्धिस्तज्ज्योतिः। केनश्चिदपीन्द्रियेणाग्रहणे भावानुपलब्धेः।"

अस्ति घटः—यह जो घट का भासित होना है—उसी का नाम उपलब्धि है। इस उपलब्धि का नाम ही ज्योति है।

इन्द्रिय द्वारा जब तक पदार्थ का ग्रहण नहीं होता है तब तक उस की उपलब्धि अर्थात् ज्ञान नहीं हो सकता। बात वास्तव में सच है। जिह्वा से जब तक भोग्य-पदार्थों को चख न लिया जाए, तब तक उनके अच्छे-बुरे का ज्ञान क्यों कर हो सकता है ? आँखों से जब तक तस्वीर देख न ली जाए तब तक काली है अथवा पीली है—इस प्रकार का रूप-ज्ञान क्यों कर हो सकता है ? जब तक स्पर्श न किया जाए तब तक—कोमलता का, काठिन्य का—अनुभव क्यों कर हो सकता है ? तात्पर्य्य यही है कि—उपलब्धि में—ज्ञान में—प्रधान हेतु इन्द्रियों की विषय—ग्रहणशीलता है। इन्द्रियाँ—विषयों को जब ग्रहण कर लेती हैं, तभी उन विषयों की उपलब्धि अर्थात् ज्ञान होता है। उपलब्धि का एकमात्र कारण—इन्द्रियों का विषय-ग्रहण मात्र है। यहाँ इतनी विशेषता और है कि—घट-पट-मठ-सूर्य्य-चन्द्र इत्यादि वस्तुओं का ग्रहण

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अवश्य ही इन्द्रियों से होता है परन्तु इस ग्रहण में प्रधान कारण नाम-रूप-कर्म्म ही हैं। इन्द्रिय से आप विषय का ग्रहण करते हैं। इस ग्रहण-प्रक्रिया में नामरूपकर्म्म का ही साम्राज्य है। उपलब्धि में जैसे इन्द्रिय द्वारा विषय-ग्रहण की हेतुता है—तद्वत्—इन्द्रिय-ग्रहण में—नाम-रूप-कर्म्म कारण हैं। यदि पुरोवस्थित वस्तु नामरूपकर्म्मात्मक है तो—अवश्य ही इन्द्रियाँ उस का ग्रहण कर सकती हैं। यदि उस वस्तु का नामरूपकर्म्म कुछ भी नहीं है तो इन्द्रियां उसे ग्रहण नहीं कर सकतीं—करें किसका—जब कि वस्तु ही नहीं है। इन्द्रियों द्वारा वस्तुओं के ग्रहण में नाम-रूप-कर्म्म ही कारण हैं। अयं घटः—यह जो चक्षुरिन्द्रिय से घट का ग्रहण है, इसमें नाम-रूप-कर्म्म ही कारण है। घट, यह नाम स्थानावरोधि है—धामच्छद है, यही इस का कर्म्म है। रूप दो प्रकार का होता है—वर्णात्मक एवं वयोनाधात्मक अर्थात् छन्दात्मक। वयोनाध कहते हैं—आकार को। आकार भी रूप ही है। इस का प्रत्यक्ष—चक्षुरिन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय दोनों से हो जाता है। घड़े की गोलाई का अर्थात् छन्दात्मक (वयोनाधात्मक) रूप एवं काले-पीले वर्णात्मक रूप—दोनों का चक्षुरिन्द्रिय से प्रत्यक्ष हो जाता है एवं स्पर्शेन्द्रिय केवल—छन्दात्मक रूप का ही प्रत्यक्ष कर सकती है। हाथ से टटोल कर हम घड़े कीं गोलाई अवश्य बता सकते हैं परन्तु स्पर्श से यह नहीं जान सकते कि घड़े का रंग कैसा है, वर्ण कैसा है?

नाम-रूप-कर्म्म ये तीन ही—वस्तुओं के इन्द्रियों द्वारा ग्रहण में कारण हैं। यदि तीनों नहीं हैं तो—हम इसे जानते हैं-यह घड़ा है—इत्यादिस्वरूपा उपलब्धि हो ही नहीं सकती। ज्ञान, नाम-रूप-कर्म्म से ही होता है। विषयों का ग्रहण होता है—इन्द्रियों द्वारा ही, परन्तु कारण है—इसमें नाम-रूप-कर्म्म ही। यदि नाम-रूप-कर्म्म तीनों में से कुछ भी नहीं है तो फिर वास्तव में कुछ नहीं है।

इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि नाम-रूप-कर्म्म ही वस्तुओं की उपलब्धि है। 'इदमस्ति' यह उपलब्धि नाम-रूप-कर्म्म की समष्टिमात्र है। इदम्—में इदं—उस का नाम है—नाम के साथ कोई न कोई रूप है एवं तदनुकूल ही कोई कर्म्म भी है। कर्म्म भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार का

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हुआ करता है। अग्नि का कर्म्म है सदा ऊपर जाना—वस्तु को पिघला देना एवं ठोस बना देना—जला देना। वायु का कर्म्म है—पत्तों को हिलाना—रक्त का संचार करना—तिर्यक् चलना। पानी का कर्म्म है—अग्नि को बुझा देना—अन्न उत्पन्न करना—प्यास बुझाना—निम्न मार्ग की ओर ही जाना। इस प्रकार कर्म्म प्रत्यर्थ भिन्न है। हमें यहां केवल इतना ही कहना है कि नाम-रूप ज्योतिस्वरूप है। ज्योति-उपलब्धि को अर्थात् ज्ञान को कहते हैं। यह घड़ा है, यह जो प्रतिभान है—इसी का नाम 'ज्योति' है। यह उपलब्धि तब तक नहीं हो सकती जब तक कि इन्द्रियां विषय को ग्रहण न करें। विषयाग्रहण—विषयों की सर्वथा अनुपलब्धि रहती है। अनुपलब्धि का नाम ही अज्ञान है। अज्ञान का नाम ही अन्धकार है।। ज्ञान का नाम ही प्रकाश है। इसीलिए तो 'पञ्च-ज्योतिरयं पुरुषः'—यह कहा जाता है। अग्रहण में—अनुपलब्धि में—अज्ञान रहता है, अन्धकार रहता है। अतः हम अवश्य ही—उपलब्धि को 'ज्योति' कहने के लिए तय्यार हैं।

उपलब्धि में कारण है—इन्द्रिय द्वारा विषय-ग्रहण परन्तु विषयग्रहण में कारण हैं—नाम-रूप-कर्म्म। इन्द्रियों द्वारा नाम-रूप-कर्म्म का ही तो ग्रहण होता है। ऐसी अवस्था में हम इन तीनों की समष्टि को ही, उपलब्धि बता सकते हैं। यदि किसी से कोई पूछता है कि आप अमुक पदार्थ को जान गए? वह उत्तर देता है कि जान गए। फिर प्रश्न होता है—क्या जान गए? उत्तर मिलता है—यह उस का नाम है—यह रूप है एवं यह उसका काम है। कर्म्म-नाम-रूप से अतिरिक्त पदार्थ की उपलब्धि का कोई स्वरूप ही नहीं होता। अतएव नाम-रूप-कर्म्म की समष्टि को ही हम—वस्तूपलब्धि कहने के लिए तय्यार हैं। उपलब्धि का नाम ही सत्ता है।

तात्पर्य्य यही है कि मन-प्राण-वाक्-नाम-रूप-कर्म्म—सत्ता में ये छह भाव रहते हैं। इन छहों में तीन (मन-प्राण-वाक्) अमृत हैं, शेष तीन मर्त्य हैं। छहों अविनाभूत हैं। छहों की मिलित-अवस्था का नाम सत्ता है। जिसके उदर में छहों पदार्थ हैं, उसी का नाम उपलब्धि है। नाम-रूप-कर्म्म की ही उपलब्धि प्रत्यक्ष में मालूम होती है अतएव इन तीनों की समष्टि को हम अवश्य ही सत्ता कहने के लिए तय्यार हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"नामरूपे-कर्म्मेवैषां वस्तूनामिन्द्रिय द्वारा ग्रहणे हेतुः। तस्मान्नामरूपेकर्म्म च वस्तूनामुपलब्धिः (सा) सत्ता ॥'

संसार में जितने भी पदार्थ हैं, उन सब के नाम-रूप-कर्म्म सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं। यहां पर यह प्रश्न होता है कि नाम–भेद से, रूप का भेद है, किंवा रूप–भेद से नाम–कर्म्म का भेद है, किंवा कर्म्म–भेद से नाम–रूप का भेद है ? निम्नलिखित प्रकरण द्वारा–इसी प्रश्न का समाधान प्रस्तुत किया जाता है—

संसार में जितने भी कर्म्म हैं–वे सब एक-दूसरे से परस्पर सर्वथा विलक्षण हैं। हाथ का कर्म्म है—इधर-उधर चलना, रोटी खाना, चपत लगाना, लिखना। पैर का कर्म्म है–चलना। मुँह का कर्म्म है–खाना। आँखों का कर्म्म है–देखना। टेबिल का कर्म्म है अपने ऊपर वस्तुओं को प्रतिष्ठित रखना। गर्ज यह है कि–यच्चयावत् पदार्थों में परस्पर कर्म्म–वैलक्षण्य है। कबूतर का चलना, बैठना, बोलना, उड़ना यह सब कागले (कौए) की चाल-वगैरः से सर्वथा पृथक् है। मनुष्य का बोलना-चलना-हँसना-रोना-सोना इत्यादि कर्म्म भिन्न प्रकार के हैं। बस, दूसरे से विलक्षणतया जो एक कर्म्म हम किसी में देखते हैं उसके रूप-भेद का कारण वह कर्म ही है। कर्म्म–निबन्धन ही-रूप-भेद है, कर्म्म-भेद द्वारा ही रूप का भेद होता है। जो ऐसे चलता है, यों बोलता है, जिसका हँसना ऐसा है इत्यादि जो कर्म्म-विलक्षणता है–वही रूप–भेद का कारण हैं। रूप से ग्रहण है–आकार का। कर्म्म–सन्निवेश ही–रूप का कारण है। कर्म्म-भेद से ही–रूप-भेद होता है। बात कुछ सूक्ष्म है परन्तु जरा गौर से देखने पर सारा रहस्य समझ में आ जाता है। कर्म्म नाम है–बल का। बल नाम है–क्रिया का। जो बल का अवयव-सन्निवेश-क्रम है–उसी से आकार–भेद होता है। बल कहते हैं–क्रिया को। क्रिया-समष्टि का नाम ही गुण है एवं गुण-समष्टि का नाम द्रव्य है। संकलित गुण ही 'द्रव्य' नाम से–घट–पटादि पदार्थ नाम से–व्यवहृत होते हैं। दो हजार सिपाहियों की समष्टि का नाम ही सेना है। यदि एक-एक कर सारे सिपाहियों को मार दिया जाए तो 'सेना' शब्द ही न रहे। धर्म से धर्मी की सत्ता है। हजारों वृक्षों की समष्टि का नाम 'वन' है। यदि एक-एक कर सारे

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वृक्ष काट दिए जाएं तो–'वन' नाम की कोई चीज ही न बचे। इसी प्रकार गुणकूट का नाम ही द्रव्य है। इसीलिए–'गुणकूटो द्रव्यम्'–यह कहा जाता है। इसी आधार पर नास्तिक-दर्शनों में–सत्ता का–'कुर्वद रूपं सत्' यह लक्षण किया जाता है। जो स्थायी–क्रिया है अर्थात् धारा-वल से एकरूप हो रही है उसी का नाम गुण है। ऐसी गुणसमष्टि का नाम ही–द्रव्य है। रूप, आयतन का नाम है। आयतन, द्रव्याधीन है। गुणों का सन्निवेश जिस ढंग से किया जाएगा–द्रव्य के आयतन का खाका उसी ढंग का बन जाएगा। आप चित्र बनाते हैं। उसमें अपनी कलम से–गुणों को–जमा करते जाते हैं। बस, जिस क्रम से गुणसमष्टि को पटल पर बैठाते जाते हैं–उसी प्रकार का आयतन बन जाता है। मिट्टी का शेर बनाया जाता है। उसमें मिटटी का जमाव, अवयव-सन्निवेश–क्रम, हाथी से विलक्षण किया जाता है। कर्म्म-विलक्षणता ही आयतन–भेद का कारण बन जाती है। यदि मिट्टी का जमाव और तरह से किया जाता तो–वह किसी दूसरे ही स्वरूप में परिणत हो जाती। इसीलिए हम कह सकते हैं कि कर्म्म-भेदात् रूप–भेद हो जाता है एवं रूपभेद से नामभेद हो जाता है। रूप ही–आकार ही–नाम–भेद करवाता है। इसीलिए यदि किसी मनुष्य का वन्दर जैसा आकार होता है–तो वह–'वन्दर' कहलाने लगता है। चूंकि पूरी आकृति नहीं मिलती–अतएव उसे मनुष्य भी कह दिया जाता है। सम्पूर्ण कथन का तात्पर्य्य यही हुआ कि 'क्रियाकूट' का नाम 'गुण' है–'गुण-कूट' का नाम ही 'द्रव्य' है। अतएव हम यह कह सकते हैं कि घट–पटादि कर्म्म-समुच्चय मात्र हैं। रूप, आयतन को कहते हैं। आयतन, कर्म्म–सन्निवेश के अधीन है। जिस ढंग से गुणों का सन्निवेश किया जाता है, उसी ढंग का आकार वन जाता है। आकार-भेद में–रूपभेद में–कर्म्म–सन्निवेश की विलक्षणता ही कारण है। अतएव हम कह सकते हैं कि कर्म्मभेद से ही रूप-भेद होता है।

इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"यदिदमन्यवैलक्षण्येन किञ्चित् कर्म्मं प्रवर्त्तते तन्निवन्धं किञ्चिद् रूपं भिद्यते–रूपभेदान्नामभेदः"।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कहना इस प्रपञ्च से यही है कि संसार के यच्चयावत् पदार्थों का कर्म्म-सन्निवेश चूंकि सर्वथा पृथक्-पृथक् है, अतएव नामरूप भी—सब का भिन्न-भिन्न ही है। एक से दूसरे के नामरूपकर्म्म सर्वथा विलक्षण हैं। नियत सत्य से प्रति पदार्थ भिन्न-भिन्न है। बस ऐसे—इतर विलक्षण जो ये नाम—रूप—कर्म्म हमारे ज्ञान में—भासित होते रहते हैं, वे ही—'अस्ति'—इस सत्ता—व्यवहार के साक्षी हैं। नाम-रूप-कर्म्म विषयक भेद ही—'सत्ता' का ज्ञान कराने वाले हैं। घड़ा है—कपड़ा है—वस्त्र है, इत्यादि पदार्थों में जो यह 'है' भाव है, सत्ता-तत्त्व है—उस का ज्ञान नाम-रूप-कर्म्म-भेद पर ही अवलम्बित है। यदि नाम-रूप-कर्म्मभेद न होता तो—अस्ति—का व्यवहार कभी न होता। जैसे—विना ज्ञान के विषय कोई चीज नहीं—ठीक इसी प्रकार नाम-रूप-कर्म्म के बिना, सत्ता कोई वस्तु नहीं। जो 'अस्ति'—यह व्यापक भाव है, वह तो सर्वथा अविज्ञेय है—अनिर्वचनीय है—अतएव अव्यवहार्य्य है। अस्ति—यह सत्ता-भाव व्यवहार में नाम-रूप-कर्म्म के द्वारा ही परिणत होता है। 'अस्ति' कहते ही फौरन प्रश्न होता है—'किमस्ति ?' तब तक जिज्ञासा शान्त नहीं होती जब तक कि—इस अस्ति के पीछे—नाम-रूप-कर्म्म-स्वरूप—'इदम्' पद नहीं लगा दिया जाता। 'इदमस्ति'—यही अस्ति का व्यवहार है। व्यवहार में सत्ता तभी आ सकती है, जब कि उस से—नाम-रूप-कर्म्म का सम्बन्ध कर दिया जाए। 'अस्ति' ही ब्रह्म है—यही अमृत-सत्य है। नाम-रूप-कर्म्म—ये ही कर्म हैं—ये ही मृत्यु-सत्य हैं। ब्रह्म अकर्म्म है; मृत्यु, कर्म्म है। कर्म्म, विना अकर्म्म के नहीं रहता। अकर्म्म, विना कर्म के नहीं रहता। जो शुद्ध कर्म्म से सर्वथा स्वतन्त्र—अलग—ब्रह्म को देखना चाहे ऐसे—ज्ञानोपयोगवादी अर्थात् सांख्यवादी भी भ्रान्त हैं एवं जो शुद्ध-कर्म्म का ही आश्रय लेना चाहें—ऐसे कर्म्मवादी भी भ्रान्त हैं; क्योंकि कर्म्म, न विना अकर्म्म के रह सकता है एवं न अकर्म्म, कर्म्म के बिना रह सकता है। इसीलिए—कर्म्मयोगमय ज्ञानयोग एवं ज्ञानयोगमय कर्म्मयोग का ही आश्रय लेना चाहिए। बस, इसी मिलित अवस्था का नाम 'बुद्धियोग' है। यही भगवद्गीता का प्रतिपाद्य विषय है।

इसीलिए भगवान् कहते हैं—

"कर्म्मण्यकर्म्म यः पश्येदकर्म्मणि च कर्म्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्म्मकृत् ॥ (गीता—४।१८)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इदमस्ति में जो इदं है—वह नाम-रूप-कर्म्मात्मक मर्त्यसत्यं है—'अस्ति' अमृत-सत्य है। यह अस्ति-स्वरूप अमृत-सत्य सदा नाम-रूप-सत्य से ढका रहता है; अर्थात् संसार में उल्वण-स्वरूप कर्म्म का ही रहता है। ब्रह्म, कर्म्म में अन्तःप्रविष्ट रहता है अतएव इन्द्रिय-प्रत्यक्ष में नहीं आता। आए कैसे? क्योंकि नाम-रूप सत्य ने उस अमृत-सत्य को ढक रखा है।

इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"तदेतत्त्रयं सदेकमयमात्मा। आत्मो एकः सन्नेतत्त्रयम्। तदेतदमृतं सत्येनाच्छन्नम्। प्राणो वा अमृतम्। नाम-रूपे सत्यम्। ताभ्यामयं प्राणश्चच्छन्नः।"

सम्पूर्ण कथन से बताना हमें यही है कि स्वरूप से सत्ता-भाव सर्वथा अपरिच्छिन्न है, असीम है। इस को परिच्छिन्न बनाने वाले नामरूपकर्म्म ये तीन तत्त्व हैं। अवश्य ही हम इन तीनों को सत्ता-व्यवहार के साक्षी कह सकते हैं—

"तथाचेतर विलक्षणानि यान्येतानि नामरूपकर्म्माणि आभासन्ते तान्येव साक्षीणि सत्ता व्यवहारस्य।"

हमने बताया है कि—अमृत और मर्त्य प्रजापति का शरीर दो भागों में बँटा हुआ है। आनन्द-विज्ञान-सत्ता अमृतभाग है—नामरूपकर्म्म मर्त्य भाग है। मर्त्य भी ब्रह्म-मूलक, अर्थात् सत्तामूलक ही है। तो बस जैसे—ऋक्-साम-यजु सत्तामूलकत्वात्—सत्ताविनाभूत रहते हैं—तद्वत् सत्ताब्रह्ममूलकत्वात्—सत्ता से अविनाभूत—जो नाम-रूप-कर्म्म हैं—वे भी सत्ता से पृथक् नहीं हो सकते। सत्ता—व्यवहार मन-प्राण-वाक्-नाम-रूप-कर्म्म इन छहों की समष्टि में होता है, यही तात्पर्य्य है—

"तस्मात् सत्ताघनाविनाभूतानि सत्ता ब्रह्ममूलकानि नामरूपकर्म्माणि सत्तातो नातिरिच्यन्ते।"

मन-प्राण-वाक्—ये तीनों अव्ययात्मा के सृष्टिसाक्षी स्वरूप हैं। जैसे मन-प्राण-वाक् से अर्थात् सत्ताघन ब्रह्म से ऋक्-यजुः-साम उत्पन्न होते हैं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ठीक इसी प्रकार उसी मन-प्राण-वाङ्मय सृष्टिसाक्षी सत्ताघन ब्रह्म से—नाम-रूप-कर्म्म उत्पन्न होते हैं। इन तीनों में जो मन है—उससे—रूप का स्वरूप उत्पन्न होता है। रूप का अधिष्ठाता मन ही है। रूप, नाम है-आकार का। मन ही विषयाकाराकारित हुआ करता है। आकार अर्थात् रूपस्वरूप में—मन ही परिणत होता है। मन—विषयस्वरूप में परिणत हो जाता है। इसीलिए 'मनसा रूपाणां' कहा गया है।

प्राण से कर्म्म का स्वरूप उत्पन्न होता है। कर्म्म नाम है—क्रिया का। क्रिया, प्राण से ही उत्पन्न होती हैं क्योंकि गतिशील प्राण ही है। वाचासमन्वयात् नाम-स्वरूप उत्पन्न होते हैं। क-च-ट-त-प आदि वर्ण ही वाक् हैं। यही देवदत्तादि नामों की मूल जननी है। जैसे—ऋक्-यजुः-साम में यजुः मुख्य है; तद्वत् नाम-रूप-कर्म्म इन तीनों में रूप ही—आकार ही—मुख्य है, क्योंकि नाम और कर्म्म तो रूप के आधार पर रहते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर—कर्म्म ही—मुख्य प्रतीत होता है—जैसा कि पूर्व-प्रकरण में बताया गया है, परन्तु व्यवहार में रूप की प्रधानता ही देखी जाती है। शक्तिग्राहकशिरोमणेर्व्यवहारस्य यह सिद्धान्त है अतएव व्यवहारापेक्षया हम नाम-कर्म की अपेक्षा रूप को ही प्रधान कहेंगे। रूप देखते ही नाम और कर्म्म मालूम हो जाता है। शेर का रूप ज्यों ही देखा कि झट उस के नाम-कर्म्म का पता चला। बाग में हम जिस समय हवा खाने जाते हैं—उस समय यदि शेर दीख जाता है—तो सहसा हमारे मुँह से निकल पड़ता है—देखो, शेर खड़ा है; उसके पास मत जाना, नहीं तो वह मार डालेगा। इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि नाम भेद और कर्म्म-भेद का सूचक रूप ही है। नाम और कर्म दोनों ही रूपाधीन हैं। इसीलिए तो "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।" इसीलिए भाषा में सूरत के दाम लगते हैं—यह कहा जाता है। इसी अभिप्राय को लक्ष्य में रख कर कहते हैं—

"मनःप्राणो-वागिति हि त्रीणि सृष्टिसाक्षीण्यवयव रूपाणि, तत्र मनसा रूपाणां, प्राणेन कर्म्मणां वाचासमन्वयान्नाम्नां स्वरूपाणि संपद्यन्ते। तत्र रूपं मुख्यं नामकर्म्मणोरूपविशेषत्वात्।"

नाम-रूप-कर्म्म—तीनों में रूप ही श्रेष्ठ है। रूप ही प्रधान है अर्थात् मन ही प्रधान है। इस में निम्नलिखित श्रुति ही प्रमाण है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

श्रुति कहती है–ब्रह्म–परार्द्धं भाग में चला गया–

"ब्रह्मैव परार्द्धमगच्छत् ।"

रस को ही ब्रह्म कहा जाता है। यही रस–यही ब्रह्म–सृष्ट, प्रवि... एवं प्रविविक्त अपने ये तीन स्वरूप बनाता है। सृष्ट, संसार को कहते... प्रविष्ट–आत्मा को कहते हैं जो कि षोडशी नाम से प्रसिद्ध है एवं प्रविवि... वह हिस्सा है–जो कि सृष्टि से बाहर रहता है एवं जो कि विश्वातीत है।... सृष्टि का हिस्सा है वह तो परार्द्ध कैसे हो सकता है ? ऐसा तो ब्रह्म अर्थ... रस ही है–जो सृष्टि–स्वरूप में परिणत हो कर भी, फिर सृष्टि को छोड़... परार्द्ध (प्रविविक्त-भाव) में जा सकता है। यहाँ परार्द्ध-ब्रह्म से–प्रविष्ट... ही अभिप्रेत समझना चाहिए। वह भी–रात-दिन सृष्टि में रहता हुआ भी... उस से अलग ही रहता है अतएव हम इस अङ्गिभूतता के भाव की अपेक्षा... प्रविष्ट के लिए भी 'परार्द्धमगच्छत्' यह कह सकते हैं। कहना भी इसी... लिए चाहिए क्यों कि आगे जा कर श्रुति–"तत् परार्द्धं गत्वैक्षत" यह कह... वाली है। प्रविविक्त तो इच्छादि धर्म्मों से सर्वथा परे है–वह तो शास्त्रानधि... है अतः एक्षत का अधिकारी–'प्रविष्ट-ब्रह्म' ही हो सकता है।

यह तो हुआ 'परार्द्धमगच्छत्' का एक अर्थ–अब लीजिए दूसरा अर्थ... "स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य्य, चन्द्रमा एवं पृथिवी—ब्रह्म की सृष्टि में ये पां... मण्डल माने जाते हैं। इन पांचों में जो सूर्य्य से ऊपर के–स्वयम्भू और प... मेष्ठी लोक हैं–वे तो–परार्द्धभाग कहलाते हैं एवं सूर्य्य से नीचे के–पृथिवी ... चन्द्रमा अपरार्द्ध भाग कहलाते हैं। जो स्वयम्भूपरमेष्ठी है–वह चूंकि अ... स्वरूप है अतएव उसे विश्वातीत कहते हैं–पृथिवी–चन्द्रमा मर्त्यस्वरूपत्वा... विश्व कहलाते हैं। ब्रह्म अर्थात् अमृतभाग ने मर्त्यसृष्टि के बिना अपनी ... परार्द्धभाग में–सूर्य्य से ऊपर कर ली अर्थात् वहाँ शुद्ध अमृत ही रहता है... इसी अभिप्राय को ले कर श्रुति कहती है—

"अथ ब्रह्मैव परार्द्धमगच्छत् ।"

इस ब्रह्म को मन-प्राण-वाङ्मय समझना चाहिए, क्यों कि प्रका... सृष्टि का चल रहा है एवं सृष्टिसाक्षी ये ही तीनों हैं। आगे श्रुति कहती है–...

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सत्ताधन ने–वहाँ जा कर विचार किया कि सूर्य्य-पृथिवी-चन्द्रमादि जो मर्त्य-लोक हैं–उन्हें हम बेलाग रह कर कैसे पकड़ें ? अपन उनके कब्जे में आएँ नहीं और वे लोक अपने से सदा बद्ध रहें, कोई ऐसी तरकीब करनी चाहिए–

"तत् परार्द्धं गत्वैक्षत कथंन्विमाँल्लोकान् प्रत्येव यामिति ।"

आखिर सोचते-सोचते मार्ग निकल ही गया । ब्रह्म ने नाम और रूप इन दोनों सूत्रों से सारे लोकों को वश में कर लिया ।

तद् द्वाभ्यामेव प्रत्येवेह रूपेण चैव नाम्ना च ।"

आगे जा कर श्रुति नाम और रूप का स्वरूप बतलाती हुई कहती है कि–जिस किसी भी पदार्थ का जो कोई भी नाम घट-पट-मठ इत्यादि तुम रात-दिन व्यवहार में लाते हो वही तो नाम है अर्थात् व्यवहार में आने वाला है अतएव सर्वसाधारणगम्य है ।

"स यस्य कस्य च नामास्ति तन्नाम ।" जिस वस्तु का नाम मालूम नहीं होता है–उस का भी–'अस्ति किञ्चित्' करके जो ज्ञान हो जाता है, उस को भी तुम 'अस्ति किञ्चित्' करके जान जाते हो, वही रूप है । कई पदार्थ ऐसे होते हैं–जिनका नाम हमें मालूम नहीं रहता फिर भी हम कह देते हैं–'अस्तिकिञ्चित्' । बस, जिस के आधार से अस्ति किञ्चित् यह शब्द मुहँ से निकलता है–वही रूप है—

"यस्योऽपि नामनास्ति यद्वेद रूपेण इदं रूपमिति ।"

अर्थात् नाम नहीं जानते परन्तु ऐसा आकार था–यह कह बैठते हैं । इस आकार का नाम ही तो रूप है । श्रुति कहती है कि अखिल विश्व में नाम-रूप और कर्म्म के अलावा चौथी कोई भी वस्तु नहीं है । बात वास्तव में सच है–नाम-रूप-कर्म्म के अलावा और है ही क्या ?

"एतावद् वा इदं यावद् रूपं चैव नाम च ।"

श्रुति ने प्रारम्भ में कहा था कि ब्रह्म ने यह चाहा कि–बेलाग रह कर इन लोकों को अपने कब्जे में रखूं । बात वस्तुतः वही हुई । ऐसे ही पदार्थों से

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विश्व का संचालन किया गया जो सब कुछ हैं तथापि वेलाग हैं। नाम-रूप-कर्म्म तीनों ऐसे ही पदार्थ हैं। नाम हम मुंह से बोलते हैं—न मालूम कहां गायब हो जाता है? नाम तो हम मुंह से बोलते हैं—उस का पदार्थ से क्या सम्बन्ध? एवमेव जो रूप है, आकार है—वह भी कोई वस्तु नहीं है। भावाभाव की सन्धि का नाम ही रूप है।

नाम रूप-दोनों ही ब्रह्म-स्वरूप हैं—इसीलिए तो असंग हैं। असंग ब्रह्म क्यों कर पकड़ में आ सकता है?

अभ्व उस पदार्थ को कहते हैं—जो कुछ न हो कर प्रतिभासित होता रहता है। इसीलिए तो उस का नाम अभ्व है। 'अभूत्वा भाति' यही अभ्व शब्द की व्युत्पत्ति है। नाम-रूप वास्तव में अभ्व ही हैं। रूप, आकार का नाम है। आकार रात-दिन प्रतिभासित होता रहता है। कोई गोल है—कोई चपटा है—कोई त्रिकोण है—कोई षट्कोण है इस प्रकार रूप का हम रात-दिन प्रत्यय कर रहे हैं परन्तु वास्तव में—आकार कोई वस्तु नहीं है; सब कुछ है-परन्तु कुछ भी नहीं। जितना प्रत्यक्ष है, साथ ही उतना अप्रत्यक्ष है। भावाभाव की सन्धि का नाम ही आकार है। रूप-सूत्र से ब्रह्म में संसार का स्वरूप बना हुआ है—परन्तु रूप वेलाग है। संसार में रहता हुआ भी असंग है। यही बात नाम के विषय में है। घट-पट-मठ-पुस्तक-कलम इत्यादि जो नाम हैं—उन्हीं से तो संसार का व्यवहार चलता है। यदि नाम न होते तो हम मुहँ से बोलते ही क्या? रात-दिन नाम से ही हम व्यवहार किया करते हैं। नाम सर्वानुभूत हैं। पाँच वर्ष के बच्चे से भी—नाम-महिमा छुपी नहीं है। बाल-वृद्ध सब को नाम के प्रत्यक्ष-दर्शन हो रहे हैं—परन्तु नाम है क्या चीज? जिस को तुम घट कह रहे हो—क्या वह पुरोवस्थित वस्तु का नाम है—हर्गिज नहीं। नाम तो तुम अपने मुंह से बोलते हो—वह तो तुम्हारी वस्तु है न कि सामने रखी हुई वस्तु की। नाम तुमने मुँह से बोला कि उसी समय गायब। बड़ा ही विचित्र पदार्थ है। वास्तव में अभ्व है। रात-दिन प्रतीत होता हुआ भी पकड़ में नहीं आता—वेलाग रहता है। यही हालत कर्म्म की है। कर्म्म नाम है—क्रिया का। कोई पूछता है—क्या कर रहे हो जी? उत्तर मिलता है—काम कर रहा हूं। इस प्रकार कर्म्म का—क्रिया का रात-दिन प्रत्यक्ष हुआ करता है—परन्तु

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

क्रिया का स्वरूप हर्गिज नहीं बताया जा सकता। जैसे रसादि अनिर्वचनीय हैं तथैव क्रिया भी अनिर्वचनीय ही है। तीनों ही ब्रह्म के महा अभ्व हैं। कुछ नहीं हो कर भी ये तीनों सब कुछ बन रहे हैं।

इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"ते है ते ब्रह्मणो महती अभ्वे।"

वास्तव में तीनों विचित्र बलाएँ हैं। जितना-जितना गहरा गोता लगाते हैं—गहरे डूबते हैं—तीनों बलाएँ उतनी-उतनी ही आगे हटती जाती हैं। तीनों ही अपने स्वरूप को खूब प्रकट करती हुई भी खूब छुपी हुई हैं। इसीलिए तो इसे बलाय कहते हैं। गन्धर्व-नगरवत् इन तीनों का स्वरूप है। गन्धर्व नगर बिल्कुल सामने साफ दिखलाई पड़ता है। परन्तु उसको पकड़ने के लिए, उसमें प्रविष्ट होने के लिए, उसके स्वरूप को पहचानने के लिए, ज्यों ही पास जाते हैं कि जाने के साथ ही वह फिर और आगे बढ़ जाता है। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते रहते हैं त्यों-त्यों वह भी आगे बढ़ता रहता है। बड़ी ही विचित्र बलाय (आफत) है। बस ठीक यही हालत नाम-रूप की है। नाम-रूप बिन्दु बिल्कुल पास दिखलाई पड़ते हैं परन्तु पकड़ना चाहा तो एकदम गायब हो जाते हैं।

इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"ते है ते ब्रह्मणो महती यक्षे।"

अन्त में श्रुति कहती है कि नामरूपकर्म्म इन तीनों में से रूप ही प्रधान है। वैज्ञानिक दृष्टि से यद्यपि कर्म्म ही प्रधान सिद्ध होता है—परन्तु ज्ञान, रूप की प्रधानता का ही होता है। रूप से नाम और कर्म्म का अनुमान होता है। प्रत्यक्ष रूप का होता है। रूप से नाम-कर्म्म का अन्दाज लगाया जाता है। साँप का रूप देखते ही मालूम हो जाता है कि यह साँप है एवं काटना इसका कर्म्म है। रूप ही नाम कर्म्म का परिचायक है। कर्म्म वास्तव में रूप ही तो है इसीलिए हम कर्म्म को अलग कहने के लिए तय्यार नहीं। बाकी बचते हैं—नामरूप। नाम-रूप में भी रूप ही प्रधान है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"तयोरन्यतरज्ज्यायो रूपमेव ।"

अन्त में नाम भी खारिज हो जाता है । घट-पट ये नाम प्रतीता यद्यपि अवश्य होते हैं—परन्तु सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर मालूम हो जाता है कि नाम भी रूप ही तो है । घट में घ-ट ये दो अक्षर हैं । घ यह भी एक आकार विशेष ही हैं । ट यह भी आकार विशेष ही है । आकार को ही तो रूप कहते हैं। इससे सिद्ध हो जाता है कि नाम भी रूप ही है—

"यद्यपि नाम रूपमेवतत् ।"

ब्रह्म ने परार्ध भाग में जा कर नामरूपकर्म्म-स्वरूप अभ्वसूत्रों से—इन लोकों को अपने वश में कर रखा है। नाम-रूप-कर्म्म ही संसार का स्वरूप हैं। नाम-रूप-कर्म्म के अलावा संसार में कुछ नहीं है । इन तीनों में से जो कर्म्म है वह अन्न-विभाग में जाएगा एवं नाम-रूप ज्योति विभाग में शामिल हैं । नाम-रूप ही सत्ता व्यवहार के साक्षी हैं । यदि नाम-रूप न हो, तो अस्ति की प्रतीति ही न हो । घड़ा है—कपड़ा है इत्यादि जो प्रतीति है, भान है, एक प्रकार का प्रकाश है, उसका एकमात्र कारण नाम-रूप ही है । चूंकि सत्ता—ब्रह्ममूलक नाम-रूप सत्ता से अभिन्न हैं, यही संसार के प्रतिभान में कारण हैं—अतएव हम नामरूपसमष्टि को ज्योति कहने के लिए तय्यार हैं । बस, सत्ताघन से उत्पन्न होने वाला अतएव उस से अभिन्न—प्रतिष्ठा के अनन्तर—यह ज्योतिर्भाव ही है । इसी के लिए 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' में—'नामरूपम्'—यह कहा जाता है। नामरूप का नाम ही ज्योति है ।

अथ यज्ञ-विवेचन प्रारम्भ

'तस्मादेतद् ब्रह्म, नामरूपमन्नं च जायते"—यह कहा गया है । इस में—ब्रह्म से प्रतिष्ठा-तत्त्व का ग्रहण है, नामरूप से—ज्योतिर्भाव एवं अन्न से यज्ञ अभिप्रेत है । ब्रह्म—नामरूप—अन्न, तीनों के क्रमशः प्रतिष्ठा, ज्योति, यज्ञ तीन नाम हैं । इनमें से प्रतिष्ठा और ज्योति का स्वरूप बतला दिया गया है। अब क्रम—प्राप्त यज्ञ का स्वरूप बतलाते हैं—

'अन्न' को ही 'यज्ञ' कहते हैं । संसार में जितने भी पदार्थ प्रतिभासित हो रहे हैं, वे सारे के सारे कुर्वंद् रूप हैं । संसार में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है जिसे निष्क्रिय समझा जा सके। यच्चयावत् पदार्थ सदा क्रियया आक्रान्त रहते हैं। पर्वत-घट-पट-मठ-पुस्तक-टेबिल-दावात इत्यादि अनिन्द्रिय पदार्थों को आप शायद स्थिर समझते होंगे, परन्तु आप भूल में हैं। आप को विश्वास कर लेना चाहिए कि–स्थिर से स्थिर–भाव में प्रतीत होने वाले पदार्थ भी प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। उन में अनवरत-क्रिया होती रहती है। संसार में जो "है" कहने लायक पदार्थ है--वह इस नित्य-क्रिया से अविनाभूत है। प्रत्येक पदार्थ में प्रतिक्षण कुछ-न-कुछ सक्रियता होती रहती है। जिस पर्वत को आप स्थिर एवं क्रिया-शून्य समझ रहे हैं, उसकी कितनी ही तो ऐसी स्थूल क्रियाएं हैं जो सहज ही समझ में आ सकती हैं। पहला काम पर्वत का यही है कि वह स्व-स्वरूप में स्थिर है। स्थिरता के लिए भी व्यापार करना पड़ता है। हम जिस समय आप को बैठे दिखाई पड़ते हैं–उस समय भी हमें क्रिया-व्यापार करते रहना पड़ता है। स्थिर भाव के लिए भी कोशिश करनी पड़ती है। कोशिश अर्थात् प्रयत्न का नाम ही तो क्रिया है। कहने का मतलब यह है कि–जिसे आप स्थिर समझ रहे हैं–उस पर्वत में पहला व्यापार वही है जिससे कि उसकी स्थिरता बनी हुई है। जिस दिन स्थिरता-योजक व्यापार पर्वत में से निकल जाएगा, उस दिन पर्वत की स्थिरता नष्ट हो जाएगी। ऐसी कोई भी स्थिति नहीं है जिस में गति न हो। जिसे आप स्थिर समझ रहे हैं–वह प्रतिक्षण गतिशील है। एक रस्से को दो पहलवान खींचते हैं–एक उधर खींच रहा है–एक इधर खींच रहा है। चूंकि एककालावच्छेदेन–दोनों ओर गति हो रही है अतएव आप को रस्सा स्थिर दीख रहा है। यदि एक तरफ की ही गति होती तो–रस्से की स्थिरता मारी जाती। रस्से की स्थिरता का एकमात्र कारण–दोनों ओर से एक-कालावच्छेदेन होने वाली गति ही है। दूसरी क्रिया पर्वत में है–स्थान रोकने की। पर्वत ने बड़ी लम्बी-चौड़ी जमीन घेर रक्खी है। वह भी क्रिया की ही महिमा है। तीसरा काम है–इधर-उधर से आने वाली हवा को, धूप को रोकना। इस प्रकार कितने ही व्यापार तो ऐसे स्थूल हैं–जिनका हमें सदा प्रत्यक्ष होता रहता है। अपिच एक जबरदस्त कारण ऐसा है जिससे अवश्य ही यच्चयावत् पदार्थों को कुर्वद्रूप मानना पड़ता है। वह कारण है–वस्तु के स्वरूप का परिवर्तन। जो वस्त्र–आज नया या मजबूत है, वही दस वर्ष

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बाद पुराना हो जाता है। ऐसा वस्त्र भी पुराना हो जाता है जो कि नूतनावस्था में—कोशिश करने पर भी फाड़ा नहीं जा सकता था। लकड़ी दस वर्ष पहले—लोहे के कुठार से भी बड़ी कठिनता से कटती थी—आज उसी को आप जहां से उखाड़ना चाहते हैं—उखड़ जाती है। ये तो उदाहरण मात्र हैं। संसार के यच्चयावत् पदार्थों में आपको यही परिवर्तन मिलेगा। पैदा होने के समय प्राणी एक बिलांद (बालिश्त) का होता है—वह इसी परिवर्तन के कारण आज साढे तीन हाथ (सवा पाँच फुट) का युवा दिखलाई पड़ता है एवं इसी परिवर्तन के कारण थोड़े ही समय में बुड्ढा हो कर मर जाता है। सब कुछ हो जाता है—परिवर्तन का क्रम बन्द नहीं होता। पदार्थ में परिवर्तन-रूपा क्रिया अनवरत हुआ ही करती है, अन्यथा पदार्थ का स्वरूप बन ही नहीं सकता। यदि क्रियाशील न होते तो सारे पदार्थ सदा एक-रूप रहते। परन्तु हम हर पदार्थ को बदलता हुआ देखते हैं। अतएव मानना पड़ता है कि संसार के यच्चयावत् पदार्थ जो भासमान हैं—प्रतीयमान हैं, अर्थात् जिन्हें हम देख रहे हैं, वे कुर्वद्रूप हैं। उनमें प्रतिक्षण क्रिया होती रहती है। इसी अभिप्राय से भगवान् कहते हैं—

"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत् ।
कार्य्यते ह्यवशः कर्म्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ (गीता ३।५)

बस, इसी प्राकृतिक लीला को लक्ष्य में रखते हुए भाष्यकार कहते हैं—

"अथान्नं यज्ञः । सर्वं हि भासमानं वस्तु कुर्वद्रूप लक्षणं भवति ।"

संसार के यच्चयावत् पदार्थों में कुछ-न-कुछ कर्म्म घटित होते ही रहते हैं। ये कर्म्म भिन्न-भिन्न होते हैं। कर्म्म-भेद से ही संसार के यच्चयावत् पदार्थ अपने-अपने पृथक् नाम-रूप धारण करते हैं। कर्म्मवैलक्षण्य ही नामरूप में हेतु है। कर्म्म नाम है—क्रिया का। क्रिया की समष्टि का नाम ही द्रव्य है इसलिए "गुणकूटो द्रव्यम्" यह कहा जाता है। क्रिया को ही कर्म्म कहते हैं। कर्म्म ही नामरूप-व्यवहार का कारण है। जब गुणों की समष्टि होगी-कर्म्म का समुच्चय होगा—तभी तो द्रव्य का स्वरूप बनेगा और तभी वह नामरूप

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का अधिकारी होगा। चूंकि कर्म्म अर्थात् गुणसमष्टि प्रत्येक पदार्थ की भिन्न-भिन्न है एवं कर्म्म द्वारा ही—नाम-रूप भेद होता है, अतएव संसार के यावन्मात्र पदार्थों के नाम-रूप भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

कुछ विशिष्ट कर्म्म करते हुए ही ये सर्व-भाव अर्थात् यच्चयावत् पदार्थ-समूह अपने-अपने नाम-रूप को धारण किए हुए हैं। 'घट'—यह जो नाम है एवं जो घट का रूप है—दोनों की स्थिति घट-कर्म्म पर ही अवलम्बित है। यदि कर्म्म न हो तो नामरूपात्मक घट कोई वस्तु ही न रहे। कर्म्म ही नाम-रूप का आधार है। चूंकि कर्म्म पृथक्-पृथक् ही हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"किञ्चत् कर्म्म कुर्वाणएवायं सर्वो भावः स्वेस्वे नामरूपे धत्ते।"

अन्न कहते हैं—यज्ञ को। यज्ञ अर्थात्—अन्न से ही संसार के यच्चयावत् पदार्थों की सत्ता रहती है। जो अन्न का भक्षण करने वाला पदार्थ है—वह अग्नि कहलाता है, इसी को "अन्नाद (भोक्ता) भी कहते हैं एवं जो अन्न (भोग्य) इस भोक्ता में आहुत होता है—उसी का नाम "सोम" है। अग्नि में सोम के गिरने का नाम ही तो यज्ञ है। इस यज्ञ से ही सब पदार्थों की स्थिति रहती है। इसीलिए—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥ (गीता ३।१०)

यह कहा जाता है। अन्नस्वरूप यज्ञ से ही—अग्निसोमात्मक यज्ञ से ही—संसार के यच्चयावत् पदार्थ उत्पन्न होते हैं, यज्ञ से ही इनकी स्थिति रहती है एवं यज्ञ से ही इनका विनाश होता है। इसीलिए—"तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः।" इत्यादि कहा जाता है। जिस पदार्थ से-पदार्थ-सत्ता रहती है—उसे अन्न कहते हैं। अन्न को यज्ञ कहते हैं क्योंकि यह पदार्थ में हुत होता रहता है। इस अन्न की आहुति होती रहती है। आहुति का नाम यज्ञ है। ऐसी अवस्था में अवश्य 'अन्न' को 'यज्ञ' शब्देन व्यवहृत कर सकते हैं।

हमने बतलाया है कि जो "है" कहने लायक पदार्थ है—उन सब की स्थिति का एकमात्र कारण कर्म्म है। कर्म्म से ही पदार्थों की स्थिति

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रहती है। जब तक हाथ-पैर चलते रहते हैं–तभी तक गनीमत है। पदार्थों के जीवन का धारक कर्म्म ही है। क्रिया ही संसार का रूप है। निष्क्रिय तो विश्वातीत भाव है। चूंकि कर्म्म से ही पदार्थ-सत्ता रहती है एवं जिस पदार्थ से पदार्थ की सत्ता रहती है–उसे कहते हैं–अन्न, अन्न को कहते हैं–यज्ञ–अतएव हम यज्ञ को ही संसार के सर्वभावों का–सारे पदार्थों का–कर्म्म बतलाने के लिए तय्यार हैं। कर्म्म ही इन पदार्थों का अन्न है। कर्म्म से ही इन की जिन्दगी रहती है। जिन्दगी क्या रहती है–कर्म्म-समष्टि का नाम ही पदार्थ है। अन्न से हमारी जिन्दगी क्या रहती है हमारा शरीर ही अन्न से बना हुआ है, अन्न का पुतला है। कर्म्म ही–इस नामरूपात्मक सर्व-भाव का यज्ञ है, अर्थात् अन्न है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"तदिदं कर्म्मैवास्य यज्ञो भवति"

यह यज्ञ अर्थात् कर्म्म कुल पाँच ही प्रकार का होता है–१. आदान-यज्ञ २ अर्पणयज्ञ ३ उत्सर्गयज्ञ ४ भैषज्य यज्ञ एवं ५ विकास यज्ञ।

संसार के जितने भी पदार्थ हैं–चाहें वे जड़ हों या चेतन, सब ये ही पाँच कर्म्म करते रहते हैं। प्रत्येक पदार्थ में ये पाँचों यज्ञ होते रहते हैं। 'पाङ्क्तो वै यज्ञः' (शत० ब्रा० १।१।२।१६) यह कहा जाता है। पञ्चावयव ही पाङ्क्त का अर्थ है। कर्म्म-यज्ञ चूंकि–आदान-अर्पणादि भेदेन पंचावयव है अतः हम वास्तव में इस कर्म्म–प्रपञ्च को यज्ञ कह सकते हैं। संसार में–कोई भी प्राणी इन पाँचों के अलावा एक भी कर्म्म नहीं करता है। करे कैसे? जब कि पाँच के अलावा कोई छठा कर्म्म है ही नहीं। चूंकि संसार के यच्चयावत् प्राणी पाँच ही कर्म्म करते हैं, अतएव ये पाँच ही 'ज्ञ' अर्थात् "है" तत्त्व के लक्षण बनते हैं। सत्ता का लक्षण–यही पञ्चावयव यज्ञ है। इसी पञ्चावयव यज्ञ से पदार्थ की स्थिति रहती है–पदार्थ-स्थिति का नाम ही–"अस्ति"–अर्थात् सत्ता है। अतएव हम कह सकते हैं कि सत्ता पञ्चावयव यज्ञ-लक्षणा ही है। सत्ता का–अस्ति का–स्वरूप इन्हीं पाँचों से बनता है–

"स यज्ञः पञ्चविधः–१आदानम् २ अर्पणम् ३ उत्सर्गः ४ भैषज्यम् ५ विकास इति। एतान्येव पञ्चकर्म्माणि सर्वो लोकः कुरुते। नातोऽन्यदेकमपि किञ्चित् कर्म्म क्रियते। तस्मात् पञ्चैव ते महायज्ञाः सत्ता-लक्षणं भवति।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पाँचों यज्ञों के स्वरूप को बतला कर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं। पहला यज्ञ है–(१) 'आदान-यज्ञ"—

जीवात्मा स्व-आत्मा के लिए बाहर से कुछ लिया करता है। आत्म-सत्ता के लिए यह जीवात्मा अपनी आत्मा में–अन्य जीवात्मा को आहुत कर लेता है। जीवात्मा स्व-सत्ता रक्षार्थ–अन्य जीवात्मा का भक्षण कर जाता है। बस, इसी का नाम–'आदान-यज्ञ' है। संसार के यच्चयावत् प्राणिमात्र हर-वक्त कुछ–न-कुछ खाया करते हैं। यदि यह खूराक उन्हें नहीं मिलती है तो थोड़े अर्से में ही उन का विनाश हो जाता है। प्राणि-मात्र से हमारा तात्पर्य्य जड़-चेतन दोनों से है। जड़-चेतन–व्यवहार सेन्द्रिय–अनिन्द्रय मात्र का सूचक है; इसीलिए—

"सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम् ।"

कहा जाता है। वास्तव में–जड़ कोई है ही नहीं। सब में आत्मा है। आत्मा–मन-प्राण-वाङ्मय है। इच्छा-तप-श्रम यही आत्मा के धर्म्म हैं। जब संसार के यच्चयावत् पदार्थों का क्रिया-स्वरूप देखते हैं तो अवश्य ही–उन में आत्मा मानना पड़ता है। क्रिया, तप अर्थात् प्राणव्यापार के बिना नहीं होती, प्राण-व्यापार बिना इच्छा के नहीं होता एवं इच्छा बिना मन के नहीं होती। इसलिए मानना पड़ता है कि क्रियामय पदार्थों में मन और प्राण दोनों मौजूद हैं। मन-प्राण-वाक् को ही तो आत्मा कहते हैं–स वा एष आत्मा वाङ्मयो-मनोमयो प्राणमयः।" (बृहद् आ० उप० १।५।३) यही तो आत्मा का लक्षण है। ऐसी अवस्था में हम क्यों कर–अनिन्द्रिय पदार्थों को आत्मा की श्रेणी से बाहर निकाल सकते हैं? कहने का तात्पर्य्य यही है कि जौ–गेहूँ-चना-मूंग-मोठ बाजरा-पर्वत-पुस्तक-घट-पट-मठ इत्यादि पदार्थों को आप जड़ समझ रहे हैं, यह आपकी भूल है। सब जीवात्मा हैं। मन-प्राण-वाङ्मय आत्मा सब में है। इसीलिए गीता-विज्ञान-भाष्य के प्रारम्भ में ही कहा गया है—

"ज्ञानजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या कृतिःभवेत् ।
कृतिजन्यं भवेत् कर्म्म चिदात्मानिन्द्रियेष्वपि ॥"

हम अन्न खाते हैं–वह अन्नरूप में जीवात्मा को ही खाना है। हम अन्न को क्या खाते हैं–स्व-जीवात्म रक्षार्थ अपने आत्मा में दूसरे जीवात्मा की

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आहुति देते हैं। हम ही नहीं, जिन्हें आप जड़ समझ रहे हैं—वे भी अन्न खाते हैं। जीवात्मा की आहुति उन में भी होती है। जौ की खेती में यदि खाद और पानीस्वरूप जीवात्मा की आहुति न हो तो जौ-गेहूँ उत्पन्न ही न हों। मकान हर वक्त-वायु, धूप इत्यादि का आहार करता रहता है। आप मकान को बन्द करके चले जाइए। दो वर्ष बाद आ कर सम्भालिए—आपको जगह-जगह से वह जीर्ण मिलेगा। कारण इस का—हवा और धूपस्वरूप अन्न का न मिलना ही है। संपूर्ण प्रपञ्च से प्रकृत में हमें यहीं बतलाना है कि आत्मा के लिए—जो कुछ जीवात्मा लेता है—उस अन्य जीवात्मा को स्वात्मा में यह आहुत कर लेता है।

इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"तथा हि यदात्मात्मने किञ्चिदाददते तदिदं स्वात्मनि परं जीवात्मानमाजुहोति ।"

आहुत अन्न से यह जीवात्मा—अपनी जीवन-सत्ता बनाये रखता है अर्थात् जीता रहता है एवं आप्यायित अर्थात् पुष्ट भी हो जाता है। हमें एक सेर अन्न खाना चाहिए। यदि उतना अन्न हमें मिलेगा तो न हम दुबले होंगे, न मोटे, किन्तु समान श्रेणी में रहेंगे। नियत अन्न के मिलने से—पुष्टि ही होती है तथा जीवन में कोई बाधा नहीं आती। जितनी आमदनी होनी चाहिए उतनी यदि होती रहती है तो जीवसत्ता बनी रहती रहती है। यदि जरूरत से ज्यादा अन्न आ जाता है तो—जीवन के साथ-साथ ही पुष्टि भी हो जाती है। एक दुवले-पतले मनुष्य को—खूब घी-दूध खिलाना शुरू करो और देखो कि थोड़े ही दिनों में वह कैसा पुष्ट हो जाता है। बस, अन्न-आहुति के—ये दो ही फल हैं। जीवसत्ता रहती है एवं पुष्ट होती है, यही जीवात्मा का जीवन-यज्ञ है।

जीवन-यज्ञ से एक जीवात्मा का ही जीवन रहता है एवं एक की ही पुष्टि होती है, अतएव एक प्रकार से हम इसे—"स्वार्थयज्ञ' भी कह सकते हैं। बस, यही पहला आदान-यज्ञ है। आदान से केवल पेट में जो अन्न जाता है—वही नहीं समझना चाहिए अपितु आदान-यज्ञ से—हाथी-घोड़ा-धन-धान्य एवं जमीन सब तरह का आदान अभिप्रेत है। सब में आत्म-सत्ता है एवं सब से

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आत्मा की पुष्टि होती है। जिसके पास जितनी अधिक सम्पत्ति होती है–वह उतना ही महाशय होता है, इसीलिए–'यावद्वित्तं तावदात्मा' कहा जाता है। जो केवल अन्नदानयज्ञ है–वह तो "भैषज्य" यज्ञ कहलाता है। बस, आदान और भैषज्ययज्ञ में यही अन्तर समझना चाहिए। अस्तु, कहना हमें यही है कि स्वात्मा में स्वसत्ता के लिए जो अन्य जीव की आहुति है वह आदान-यज्ञ कहलाता है, जिससे जीव-सत्ता रहती है एवं उसकी पुष्टि होती है।

इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"तथा हि यदात्मने किञ्चिदादते तदिदं स्वात्मनि परं जीवात्मानमाजुहोति। तेनास्याक्षमात्मा क्षयमगच्छन् (न प्राप्त होता हुआ) जीवति चाप्यायते च। सोऽयमेकस्य जीवात्मनो जीवन-यज्ञः"।

(२) "अथ अर्पणयज्ञः द्वितीयः"

दूसरे यज्ञ का नाम है–अर्पण-यज्ञ। अपने से अन्य किसी जीव विशेष के लिए यह जीवात्मा जो कुछ अर्पित करता है–वह जीवात्मा ऐसा करता हुआ उस अन्य जीवात्मा में–अपने आत्मा की आहुति देता है। इसी का नाम अर्पणयज्ञ है। हमने आदानयज्ञ में बतलाया है कि आत्मा की जो सम्पत्ति है, वह आत्मा ही है। इसीलिए सम्पत्ति पर "अहं" भाव रहता है। इसीलिए "यावद् वित्तं तावदात्मा" यह चरितार्थ होता है। आत्मा की जो सम्पत्ति है–वह आत्मा ही है। इसीलिए सम्पत्ति-विनाश से आत्मा को दुःख हुआ करता है।

कहना इस प्रपञ्च से यही है कि हम अपनी वस्तु यदि किसी को देते हैं तो गोया (मानों) हम अपनी आत्मा को ही देते हैं अपनी किसी भी वस्तु को किसी अन्य जीव के लिए देना–उसमें अपने जीवात्मा की आहुति देना है। इसी का नाम–अर्पण-यज्ञ है। इस अर्पण-यज्ञ में जो वस्तु अर्पित की जाती है, उस पर उस अन्य जीवात्मा का सत्त्व हो जाता है एवं अर्पणकर्त्ता का अपना सत्त्व उस अर्पित वस्तु पर से उठ जाता है। इस अर्पण-यज्ञ से–अन्य आत्मा द्वारा प्राप्त आहुति से–यह आहुति ग्रहण करने वाला जीवात्मा क्षय-भाव को प्राप्त न होता हुआ–अपनी जीवन-सत्ता बनाए रखता है। बाज मौकों पर

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

स्वात्मसमर्पण भी कर दिया जाता है। इस स्वात्मसमर्पण-योग को ही—शरणागति किंवा प्रपत्ति-योग कहते हैं। इसी अर्पणयज्ञ—शरणागति-यज्ञ—का स्वरूप बताते हुए भगवान कहते हैं —

"यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।।"
(गीता—९।२७)

"सर्व धर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।"
(गीता—१८।६६)

अर्पणयज्ञ भी आदानयज्ञवत् जीवात्मा का जीवन-यज्ञ ही है। अर्थात् इससे भी एक ही जीवात्मा की सत्ता एवं पुष्टि होती है। आदान-यज्ञ वत् अर्पण-यज्ञ भी स्वार्थयज्ञ ही है। इसी का स्वरूप बताते हुए कहते हैं—

"अथयदन्यस्मै कस्मैचिद् जीव विशेषाय यत्किञ्चिदर्पयतितत् परास्मिन् जीवात्मनि स्वात्मानमाजुहोति। तेनायमव्ययात्मा क्षयमगच्छन् जीवतिचाप्यायते च। सोऽयमेकस्य जीवात्मनो जीवनयज्ञः"

(३) "अथ उत्सर्गयज्ञस्तृतीयः"

तीसरा है उत्सर्ग यज्ञ। अर्पण में इच्छा रहती है—उत्सर्ग में इच्छा नहीं रहती। अर्पण हमारे अधीन है—उत्सर्ग पराधीन है। मल-मूत्र का जो उत्सर्ग है—वह अपने-आप होता रहता है। इस के लिए हमें उद्योग नहीं करना पड़ता। यदि इच्छा मान भी ली जाए तब भी इस में—किसी को लक्ष्य नहीं बनाया जाता कि हम अमुक के लिए उत्सर्ग कर रहे हैं। किसी को लक्ष्य बना कर जो आत्मांश दिया जाता है—उस का नाम अर्पण-यज्ञ है एवं किसी को लक्ष्य न बना कर जो आत्मवित्त छोड़ा जाता है—वह उत्सर्ग-यज्ञ कहलाता है। इस से विश्व में अपने आत्मवित्त की आहुति होती है अर्थात् उत्सर्ग में—दी हुई वस्तु की आहुति से—विश्व का शरीर पुष्ट होता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दूसरे प्रकार का उत्सर्ग है—सड़क बनवाना, तालाब बनवाना, कूआ बनवाना, बन्धे की पाल बँधवाना, धर्म्मशाला बनवाना, पाठशाला बनवाना, चिकित्सालय बनवाना, इत्यादि। अपने पैसे से जो इन पूर्वोक्त कार्य्यों को करना है—वह आत्मा का ही उत्सर्ग है। अपने वित्त को संसार के काम में व्यय करना आत्मा को व्यय करना है—अपने आप की आहुति देना है। आत्म-वित्त की आहुति देना स्वात्मा की आहुति देना है, क्यों कि वित्त भी—आत्मा ही बन जाता है। सम्पति मेरी नहीं रहती—अपितु—अधिक ममत्व के कारण—मैं ही सम्पत्ति बन जाता हूँ। इसीलिए—ममताप्रिय मनुष्य का यदि धन छीन लिया जाता है तो वह—अरे ! मैं तो मर गया।" इस प्रकार चिल्लाने लगता है। धन का नष्ट होना, आत्मा का नष्ट होना है। इतना ही नहीं—बाज मौकों पर सम्पत्ति का नाश होने पर आत्मा का विनाश तक हो जाता है। इसी मूल के आधार पर श्रुति कहती है—

"यावद्वित्तं तावदात्मा।' इस श्रुति के आधार पर हम कह सकते हैं कि आत्मवित्त का जो उत्सर्ग करना है—अपनी सम्पत्ति को—किसी को लक्ष्य-बना सामान्यतया उत्सर्ग करना है—वह विश्व में अपनी आत्मा की ही आहुति देना है। अर्पणयज्ञ का व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध है। उसमें अपना सत्त्व हटाया जाता है एवं उस अन्य का सत्त्व कायम किया जाता है। अर्पित वस्तु का, अर्पण-कर्त्ता मनुष्य उपभोग नहीं कर सकता। जिस को अर्पित की जाती है—मात्र वही उस वस्तु का अधिकारी रहता है। किन्तु उत्सर्ग-यज्ञ में किसी व्यक्ति विशेष का सत्त्व कायम नहीं होता। उत्सर्ग सर्व-सामान्य मनुष्यों का हितकारी बनता है। अपना सत्त्व-हटा कर—सामान्य सत्त्व कायम करने का नाम ही उत्सर्ग है। जिसका उत्सर्ग कर दिया जाता है, उस पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं रहता। अब वह जन-जन की वस्तु है। कोई भी उसका उपभोग कर सकता है। जो धर्म्मशाला बनाई गई है—हम भी उस में रह सकते हैं। किन्तु अर्पण-यज्ञ में यह स्वातन्त्र्य नहीं है। बस, उत्सर्ग और अर्पण में यही अन्तर है। धर्म्मशालादि अपने पैसे खर्च करके बनवाना—उत्सर्ग-यज्ञ है। इसी का नाम परमार्थयज्ञ भी है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"अथ जीव विशेषं कंचिदलक्षयित्वैव यद्यात्मवित्तं त्यजति तदिदं विश्वस्मिन् स्वमात्मानमाजुहोति—"यावद्वित्तं तावदात्मा" इति श्रुतेः। पन्थानं पुष्करिणीं कूपं सेतुमारामं, धर्म्मशालां, पाठशालां भैषज्यशालामन्यद् वा किञ्चिदेवं विधं संस्थानं स्व-वित्तेन सम्पादयति स परमार्थयज्ञः।"

इस उत्सर्गयज्ञ से विश्वात्मा भगवान्—कृतरूप बन कर एक विशेष स्वरूप धारण कर लेते हैं एवं विश्वात्मा भगवान् पुष्ट हो जाते हैं। एक जंगल जो कि विलकुल शून्य पड़ा हुआ है—जहाँ जरा भी रौनक नहीं है, उसमें यदि धनिक व्यक्ति अनेक मकान बनवा देता है, कुएँ खुदवा देता है, बाग बनवा देता है, तालाब बनवा देता है, धर्म्मशाला पाठशालादि बनवा देता है तो उसका स्वरूप और-का—और ही हो जाता है। विश्वस्वरूप की वृद्धि हो जाती है। यह परमार्थ—यज्ञ भिन्न-भिन्न प्रकार का है। संसार में जब रेल-तार-बैलून (गुब्बारा) वगैरः नहीं थे तब इस का स्वरूप और ही कुछ था—आज और ही कुछ है। ऐसे-ऐसे नए आविष्कारों से—जो कि उत्सर्ग-यज्ञ में दाखिल हैं, विश्वरूप की वृद्धि हो जाती है। एवमेव—जिस ज्ञान का विश्व में अभाव था—वही एक परमोपयोगी शास्त्र—निर्म्माण से पूरा हो जाता है। उस ज्ञानमात्रा से—पुस्तक-रचना से—विश्व में ज्ञान-वृद्धि हो जाती है—इससे विश्व का स्वरूप पुष्ट हो जाता है।

इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"तेनैष विश्वात्मा कृत रूपो विशिष्यते स आप्यायते।"

स्त्री और पुरुष दोनों—अपने शुक्र-शोणित का उत्सर्ग कर जो पुत्र उत्पन्न करते हैं-वह कर्म्म भी परमार्थयज्ञ ही है। स्त्री, शोणित का उत्सर्ग करती है—पुरुष, शुक्र का उत्सर्ग करता है। दोनों के उत्सर्ग से पुत्र उत्पन्न होता है। यह उत्सर्ग भी परमार्थ-यज्ञ में ही सम्मिलित है, क्यों कि पुत्र पौत्रादि-सन्तानों से—विश्व के ही स्वरूप का उपबृंहण होता है। जंगल में यदि—बीस हजार आदमी रहने लगते हैं—तो जंगल में मंगल होने लगता है। विश्व में पुत्रादि से विश्वस्वरूप की ही वृद्धि होती है अतएव हम इस उत्सर्ग को भी—परमार्थ-यज्ञ कहने के लिए तय्यार हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"स्वं रेतः स्वं च शोणितमुत्सृज्य यदिदमपत्यं दम्पतीजनयतः सोऽप्येष परमार्थयज्ञः—पुत्रादिसन्तानानां विश्वरूपोपबृंहणत्वात् ।

बस, यही तीसरा उत्सर्ग-यज्ञ है जिसे कि परमार्थ-यज्ञ भी कहा जाता है ।

(४) "अथ भैषज्ययज्ञश्चतुर्थः"

चौथा यज्ञ—भैषज्ययज्ञ नाम से व्यवहृत होता है । केवल अन्न के आदानविसर्ग का नाम—भैषज्य-यज्ञ है । पहले जो आदानयज्ञ था उसमें तो—सब का आदान था एवं भैषज्ययज्ञ में केवल अन्न का ही आदान है । हमारी रोमावलियों में से हर वक्त प्राण खर्च होता रहता है परन्तु साथ ही—बाहर से इसकी क्षतिपूर्ति भी होती रहती है । यह भैषज्ययज्ञ अपने आप भी होता रहता है एवं इस के लिए कोशिश भी करनी पड़ती है । हम जब १०-५ कोस का सफर करते हैं तो प्राण अधिक मात्रा में खर्च हो जाने के कारण निर्बल हो जाते हैं । उसी को थकान कहते हैं । आखिर अति थकान के कारण विश्राम लेने हेतु हम एक स्थान पर बैठ जाते हैं—थोड़ी देर में सारी थकान मिट जाती है । इस थकान को मिटाने वाला वही प्रकृतिस्थ प्राण-मण्डल है, जो कि आसमन्तात् भरा हुआ है । इसी का नाम भैषज्ययज्ञ है । जो प्राण कम हो गया था उसकी चिकित्सा हो जाती है अतएव हम इसे भैषज्ययज्ञ कहने के लिए तय्यार हैं ।

दूसरा प्रकार—कोशिश (प्रयत्न) पर अवलम्बित है । प्रातःकाल दस बजते ही भूख लगती है—कारण इसका वही प्राण—विस्रंसन है । बस, इस कमी को पूरी करने के लिए—विष्णु-भगवान्—जिनकी कि शक्ति का नाम अशनाया बल है—अन्न-आहुति द्वारा आत्मा की उस क्षति को पूर्ण कर देते हैं । इस प्रकार इस भैषज्ययज्ञ द्वारा केन्द्रस्थ विष्णु भगवान् अन्नाधान द्वारा एवं उपायान्तर से—क्षीण आत्मा को फिर तृप्त कर देते हैं । बस, यही भैषज्य कहलाता है । सर्वाधान का नाम—आदान-यज्ञ है "उदरे अन्नाधान" का नाम भैषज्य-यज्ञ है । जिस समय यह अन्न विष्णु द्वारा आत्मा में आहुत होता है तो रसासृग्मेदोमांसादि में परिणत होता हुआ वही अन्न—"ऊर्क्" रस में परि-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

णत हो जाता है। शरीर में जो एक प्रकार का स्फूर्तिबल है—उत्साह शक्ति है—उसी का नाम—ऊर्क् बल है। जिस के मुंह पर मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं जो सदा रीं-रीं—किया करता है, समझ लो इस में—ऊर्क् बल की मात्रा बहुत ही कम है। वृष्टि हुए बाद—वृक्षों पर जो एक रौनक आ जाती है—उसी का नाम ऊर्क् बल है। इस ऊर्क बल के प्रदाता—'अवि' प्राण हैं।

इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"अविर्वै नाम देवतर्ते नास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः॥"

(अथर्ववेद १०।४।८।३१)

कहना यही है कि—अन्न से ऊर्क्-रस बनता है एवं ऊर्क्, प्राणरूप में परिणत हो जाता है। बस, जहाँ ऊर्क्-प्राण क्षीण हुआ नहीं कि ऊर्क् रस रोमावलियों द्वारा बाहर जाने लगा नहीं। उस कमी को पूरा करने के लिए फिर अन्न की आहुति दी जाती है। अन्न फिर ऊर्क् बन जाता है, ऊर्क् फिर प्राण बन जाता है। इस प्रकार अन्न-ऊर्क्-प्राण तीनों के परस्परानुग्रह से—यह भैषज्य-यज्ञ होता रहता है।

इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"अन्नोर्क् प्राणानामन्योन्य परिग्रहो यज्ञः"

भैषज्य-यज्ञ में यह लक्षण किया जाता है। इस यज्ञ के संचालक हैं-विष्णु। विष्णु बाहर से अन्न ला-ला कर भैषज्य-यज्ञ किया करते हैं। पुराणों में—विष्णु को पालन करने वाला बतलाया जाता है। इसी का स्वरूप बतलाते हुए भाष्यकार कहते हैं—

"अथान्नादादानादन्नोर्क् प्राणानामन्योन्य परिग्राह स लक्षणो यज्ञो भवति। अनेन यज्ञेन प्रकारान्तरेण वा स (विष्णुः) अन्नाधानात् क्षीणमात्मानं पुनराप्याययति स भैषज्य यज्ञः।"

(५) "अथ विकास यज्ञः पञ्चमः"

पृथिवी का जो पिण्ड है—इसका नाम शरीर है एवं इसका जो रथन्तर साम है—वह महिमा-मण्डल कहलाता है। यह पृथिवी पिण्ड से उत्तरोत्तर—बड़ा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

होता जाता है अतएव इसे विकास-यज्ञ भी कह सकते हैं। बस, पृथिवी से रथन्तर साम तक की जो संस्था है—उसे ही हम विकास-यज्ञ कहेंगे। सूर्य्य का साम पृथिवी की अपेक्षा बहुत बड़ा है अतएव वह "वृहत्साम" के नाम से व्यवहृत होता है। इस सूर्य्य की वृहत्साम पर्य्यन्त जो संस्था है उसी का नाम विकास-यज्ञ है। मूल में संकुचित रह कर उत्तरोत्तर जो विकसित होना है—वही विकास कहलाता है। पृथिवी एवं सूर्य्य दोनों ही मूल में संकुचित रह कर—उत्तरोत्तर विकसित हो जाते हैं। पृथिवी और सूर्य्य दोनों का साममण्डल उत्तरोत्तर बड़ा होता जाता है अतएव हम इसे विकास-यज्ञ कहने के लिए तय्यार हैं। एवमेव औषधिवनस्पत्यादि की अंकुर से प्रारम्भ कर फलपतनान्ता जो अवस्था है वह भी इसी विकास-यज्ञ की श्रेणि के अन्तर्गत है। एवमेव मनुष्य, पशु-पक्षी आदि चेतन-समूह की बचपन से ले कर बुढ़ापे तक की जो अवस्था है उसे भी हम विकास-यज्ञ कहेंगे। पूर्वोक्त सारे उदाहरण विकास-यज्ञ के ही हैं। यह भी सर्वसाधारण यज्ञ है। संकोच इसी विकास-यज्ञ के उदर में अन्तर्निहित रहता है अतएव उस को पृथक् नहीं बतलाया है। इसी विकास-यज्ञ का स्वरूप बतलाते हुए भाष्यकार कहते हैं—

"अथ येयं पृथिव्या रथन्तरसामान्ता, सूर्य्यस्य बृहत्सामान्ता संस्था भवति। वृक्षादीनामङ्कुराब्धा फलपतनान्ता संस्था। मनुष्यादीनां बाल्यारब्धा स्थाविरपर्य्यान्तावस्था स एष सर्वो विकास-यज्ञः।

चूंकि यज्ञ कुल पाँच ही प्रकार के होते हैं एवं कर्म्मलक्षण यज्ञ-पाँच ही अवयवों में विभक्त रहता है अतएव 'पाङ्क्तोवै यज्ञः' यह कहा जाता है। संसार में जितने भी पदार्थ हैं उन सब का निर्म्माण—अग्निवायुसूर्य्य आदि प्राणदेवताओं से ही होता है। इसीलिए—"जायमानो वै जायते सर्वाभ्यो एताभ्यो एव देवताभ्यः" कहा जाता है। इससे कहना हमें यही है कि संसार में जो कुछ तुम देख रहे हो, वह देवसमष्टि है। देव—समुच्चय का नाम ही पदार्थ है। चूंकि कर्म्मस्वरूप यज्ञ इन पदार्थों की खूराक है तथा यज्ञ से ही इन पदार्थ देवताओं की स्थिति रहती है, अतएव 'यज्ञो हि देवानामन्नम्'—यह कहा जाता है। इस श्रुति से बतलाना यही है कि अन्न से—यज्ञ का अर्थ ग्रहण करना श्रुति-सिद्ध है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यज्ञ को श्रुति अपने मुंह से–अन्न बतला रही है । बस इसी बल पर हमने–"तस्मादेतद् ब्रह्मनामरूपमन्नं च जायते" में अन्न से–"यज्ञ" का ग्रहण किया है ।

अपि च हमने यज्ञ को–कर्म्मस्वरूप बतलाया है । जैसा कि यज्ञ-विवेचन के प्रारम्भ में ही–"तदिदं कर्म्मैवास्य यज्ञो भवति" यह कहा है । इस प्रकार यज्ञ को कर्म्म बतलाना एवं कर्म्म को यज्ञ कहना भी श्रुति-विरुद्ध नहीं समझना चाहिए । 'इषेत्वोर्जेत्वा' मन्त्र के "श्रेष्ठ तमाय कर्म्मणे" इस भाग का अर्थ करती हुई ब्राह्मण-श्रुति कहती है–

"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म्म"[1]

कहना इस से हमें यही है कि अन्न का यज्ञ अर्थ कर लेना एवं कर्म्म को यज्ञ बतला देना सर्वथा श्रुति-सिद्ध है, अतएव मान्य है । इसीलिए कहते हैं–

"पाङ्क्तोयज्ञः यज्ञोहि देवानामन्नम्" इति हि श्रूयते । "यज्ञोहि श्रेष्ठतमं कर्म्म" इति च श्रूयते ।

यह कर्म्मयज्ञ पुरुष के जन्म से प्रारम्भ हो कर आयु-पर्य्यन्त अनवरत होता रहता है । प्रतिदिन, प्रतिक्षण, कर्म्मस्वरूप यह यज्ञ हुआ करता है, जैसा कि श्रुति कहती है–

"अहरहर्वा एष यज्ञस्तप्यते ।" प्रतिदिन यह यज्ञ बड़ी दूर तक वितत होता रहता है । बड़ी दूर से मतलब है-महिमा-मण्डल । महिमा-मण्डल तक यह आत्म-यज्ञ फैला रहता है । 'अहरहः संतिष्ठते'-प्रतिदिन अपने उसी महिमा-मण्डल में स्थित रहता है अर्थात् खूब वितत होता है–खूब दौड़ लगाता है–परन्तु महिमा-मण्डल को नहीं छोड़ता–'अहरहरेनं स्वर्गस्य लोकस्य गत्यै युङ्क्ते" ।

महिमा-मण्डल में–हमने रोदसी-क्रन्दसी-संयती ये तीन पृष्ठ बतलाए थे । रोदसी का जो द्यु-लोक है–वह सूर्य्य-स्थानापन्न है । इसी का नाम स्वर्ग है । वह यज्ञ-प्रतिदिन-हरवक्त-उस स्वर्गलोक में जाने के लिए-केन्द्रस्थ अन्त-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

र्यामी भगवान् द्वारा प्रेरित किया जाता है अर्थात् प्रत्येक वस्तु के केन्द्र में रहने वाले प्राण-स्वरूप जो प्रजापति हैं–जिनके लिए कि–"प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तर जायमानः"–यह कहा जाता है, उनके धक्के से यज्ञ स्वर्ग तक (२१ वें स्थान तक) जाता है। प्रत्येक पदार्थ में अग्नि भरा रहता है। अग्नि से ही पिण्ड बनता है। यह अग्नि अपने वषट्कारमण्डल के इक्कीसवें अहर्गण तक जाता है परन्तु जाता है–प्रजापति की केन्द्रशक्ति के धक्के से। अग्नि का नाम ही तो यज्ञ है। बस इसीलिए—

"अहरहरेनं स्वर्गस्य लोकस्य गत्यै युङ्क्ते।" यह कहा जाता है। इसी का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं—

"अहरहरेनेन स्वर्गं लोकं गच्छति।"

पूर्वोक्त श्रुति से सिद्ध हो जाता है कि–यह यज्ञ प्रत्येक पदार्थ में–उस की आयु-पर्य्यन्त अनवरत हुआ करता है।

सिवाय इन पूर्वोक्त पाँचों यज्ञों के–जो कि पाँचों ही कर्म्मयज्ञ नाम से प्रसिद्ध हैं, संसार में कोई भी अन्य वस्तु नहीं हैं। संसार का सारा काम यज्ञ ही यज्ञ है। जिससे यज्ञ किया जाता है, वह भी यज्ञ है–जो यज्ञकर्त्ता है वह भी यज्ञ है। जहाँ यज्ञ किया जाता है, वह भी यज्ञ है।

इसीलिए तो—

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन्"
(ऋग्वेद १।१६४।२)

यह कहा जाता है। बस, संसार के निखिल प्राणियों का प्रकृति-सिद्ध इतना ही कर्म्म है। इस पंचावयव यज्ञकर्म्म के अलावा और कोई विजातीय कर्म्म है ही नहीं।

"एतावदेवाखिलस्य प्राणिनः प्रकृतिसिद्धं स्वं-स्वं कर्म्म।"

पूर्वोक्त पाँचों यज्ञों में से जो जीवार्थ–यज्ञ हैं जो कि आदान-यज्ञ एवं अर्पण यज्ञ नाम से व्यवहृत हैं, स्वार्थ-परायणता प्राधान्यात् मन्दफल है अर्थात् उससे पुण्यलोक की प्राप्ति नहीं हो सकती।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"तत्रैक जीवार्थो यज्ञो मन्दफलः ।" उत्सर्ग नाम का विश्वोत्कर्ष का कारण-भूत जो परमार्थ-यज्ञ है वह महाफल है उत्सर्ग-यज्ञ से ही पुण्य-लोक की प्राप्ति होती है । यह बात सच है कि स्वार्थ-यज्ञ किए विना अर्थात् आदान किए विना काम नहीं चल सकता परन्तु मनुष्यों को चाहिए कि परमार्थ यज्ञ को लक्ष्य में रख कर ही स्वार्थ-यज्ञ करे अर्थात् व्यर्थ ही पेट न पालते रहें, कुछ दुनियाँ का भी उपकार करें । जो परमार्थ-यज्ञ न कर केवल अपना पेट ही पालता है वह घोर पाप का भागी बनता है ।

स्वार्थ-यज्ञ के लिए-अपना पेट पालने के लिए–जो मनुष्य संसार से अन्न ले कर अपनी जिन्दगी बिताता है–वह विश्व का उपकार न करते हुए उस का ऋणी वनता है, संसार का कर्जदार बनता है ।

वस इन ऋणों को चुकाने के लिए–बह्मयज्ञ, ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, एवं मनुष्ययज्ञ इन पञ्चमहायज्ञों को सदा करते रहना चाहिए ।

इन पाँचों यज्ञों की व्याख्या अन्यत्र (शतपथ काण्ड ११।७।२ में) की गई है ।

इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"परमार्थं यज्ञं कर्त्तुमेवायं जीवात्मा स्वार्थं यज्ञं कुर्वीत् । परमार्थमकृत्वातु स्वार्थं कुर्वाणः पापीयान् भवति । स्वार्थयज्ञाय विश्वतोऽन्नं गृहीत्वा यो जीवति स विश्वात्मानमनुपकुर्वाणो विश्वस्य ऋणी भवति । तदिदमृणमपाकर्तु पञ्चयज्ञान्नहावयेत् ब्रह्मयज्ञमृषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं मनुष्ययज्ञम् इति । तेऽमी यज्ञा अन्यत्र व्याख्याताः ।"

कहना इस प्रपञ्च से हमें यही है कि उस सत्ताघन से प्रतिष्ठा ज्योतिवत् यह यज्ञ उत्पन्न होता है जिसने कि संसार के स्वरूप को बना रखा है इसी यज्ञ का नाम कर्म्म है । इस प्रकार प्रतिष्ठा, नामरूप एवं कर्म्म का ही नाम विश्व है–यह बात सिद्ध हो जाती है ।

प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ ये कर्म्म-त्रितय आनन्द-विज्ञान-सत्तास्वरूप ब्रह्म–त्रितय में जव युक्त हो जाते हैं तो इस समष्टि का नाम विश्व कहलाता

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है। प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ-ये तीनों कर्म्म हैं। हम इन तीनों को कर्म्म इसलिए कहने के लिए तय्यार हैं कि ये तीनों ही अनन्त हैं। प्रतिष्ठा भी अनन्त है, ज्योति भी अनन्त है एवं यज्ञ भी अनन्त है। यद्यपि प्रतिष्ठा, सत्ता का ही नाम है, इसीलिए प्रतिष्ठा तत्त्व को ब्रह्म बतलाया गया है तथापि यह प्रतिष्ठा प्रत्येक पदार्थ में भिन्न-भिन्न होती है। ऋक्-यजुः-साम का नाम ही प्रतिष्ठा है। वेद को ही प्रतिष्ठा कहते हैं। सत्ताघन ब्रह्म इसी प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हो कर सारी सृष्टि का निर्म्माण किया करता है। ऋक्-यजुः-साम का नाम ही उपलब्धि है। यह उपलब्धि नाम-रूप-भेद के कारण प्रति पदार्थ में भिन्न-भिन्न हो जाती है। पुस्तक की उपलब्धि, अर्थात् वेद-अर्थात् प्रतिष्ठा-घट की प्रतिष्ठा से भिन्न है। घट की प्रतिष्ठा पुस्तक की प्रतिष्ठा से भिन्न है। तात्पर्य्य यह है कि सूर्य्य-चन्द्र-नक्षत्र-ग्रह-पर्वत-मनुष्य-पशु-पक्षी-कृमि-कीट इत्यादि यच्चयावत् पदार्थों की प्रतिष्ठा भिन्न-भिन्न है। अपनी-अपनी प्रतिष्ठा में सब स्वतन्त्र हैं। घट की प्रतिष्ठा के विनाश से–पट की प्रतिष्ठा का नाश नहीं होता। कपड़े के नष्ट हो जाने से घड़े का कुछ नहीं बिगड़ता। सब अपनी-अपनी प्रतिष्ठा में स्वतन्त्र हैं। प्रतिष्ठा नानारूप है। नाना-भाव को ही कर्म्म कहते हैं। इसीलिए हम प्रतिष्ठा को कर्म्म कहने के लिए तय्यार हैं। यद्यपि प्रातिस्विकरूपेण प्रतिष्ठा, ब्रह्म ही है तथापि विषयावच्छेदेन प्रतिष्ठा को कर्म्मस्वरूप में परिणत हो जाना पड़ता है। घड़ा है–कपड़ा है–मकान है–मनुष्य है–पशु है–पक्षी है–में जो 'है' का भाव है उसी का नाम प्रतिष्ठा है। यह प्रतिष्ठा–यह 'है' भाव–प्रति पदार्थ में भिन्न-भिन्न है। इसी का नाम तो संसार है। जब घट-पट-मकान-बाग-बगीचा-सूर्य्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-मनुष्यादि विषयों को 'है' से अलग निकाल दिया जाएगा तो फिर संसार ही न रहेगा। नानाभाव का ही नाम संसार है। संसार के यच्चयावत् पदार्थों में जो एक 'है' भाव है, इसी का नाम प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा का नाम ही ब्रह्म है। परंतु यह विषयावच्छेदेन अनन्त है। जो वस्तु नाना-भाव होती है–वह ब्रह्म नहीं कहला सकती, अतएव प्रतिष्ठा को प्रातिस्विकरूपेण विषयोपहितरूपेण–ब्रह्म समझते हुए भी–विषयावच्छेदेन नाना होने के कारण कर्म्म कहने के लिए तय्यार हैं। घड़े का 'है'-कपड़े का 'है' मकान का 'है'-एक दिन नष्ट होने वाला है। कोई समय ऐसा आएगा–जिस दिन न घड़े का 'है' रहेगा–न कपड़े का

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रहेगा—न मकान का रहेगा—सारे 'हैं'—एक 'है' में मिल जाएँगे। सारे 'हैं' अनित्य हैं अर्थात् नाना अस्तित्व-भाव विनाशी हैं—सच्चा केवल एक अस्ति है। अतएव नाना-स्वरूप इस वेद-प्रतिष्ठा को हम कर्म्म कहने के लिए तय्यार हैं। यही बात नामरूप में है। जब तक विषय-भेद है तब तक नामरूप भिन्न हैं। विषयावच्छेदेन नामरूप-भेद होता है। घड़ा कपड़े से अलग है, इसीलिए घड़े का नामरूपकर्म्म भिन्न है—कपड़े का नामरूपकर्म्म भिन्न है। एक ही मिट्टी से बने हुए—दो हजार तरह के मिट्टी के बर्तन रखे हुए हैं। चूँकि सब भिन्न-भिन्न रूप के हैं, सब की शक्ल (आकृति) भिन्न-भिन्न है अतएव सब के नाम-रूप भिन्न-भिन्न हैं। ये सारे नाम-रूप—कहाँ बैठे हैं—यह यदि पूछना चाहो तो इस का उत्तर है—सत्ताघन ब्रह्म में। उस एक 'है' के ऊपर प्रतिष्ठा के अनन्त-वेद नृत्य कर रहे हैं। उस एक ही सत्ताघन पर ये अनन्त नामरूप नृत्य कर रहे हैं। तीसरा पदार्थ है—यज्ञ—जिसे कर्म्म कहा है। यह कर्म्म भी उसी ब्रह्म पर नाच रहा है। सत्ताघन ब्रह्म से उत्पन्न होने वाले प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ तत्त्व उसी पर नृत्य कर रहे हैं। सूर्य्य की रश्मियाँ सूर्य्य से उत्पन्न हो कर सूर्य्य से ही बद्ध रहती हैं।

प्रतिष्ठा—तत्त्व—विवेचन में हमने प्रतिष्ठा को—सत्तास्वरूप अतएव ब्रह्म कहा था। परन्तु अब हम नामरूप की तरह—इस प्रतिष्ठा को भी कर्म्म कहते हैं। इस में कोई विरोध न समझा जाए, इसीलिए हमें प्रतिष्ठा के विषय में इतना और कहना पड़ा है। आत्मा, अव्यय का नाम है। अव्यय की आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण-वाक्—ये पाँच कलाएँ हैं। पाँचों में से आनन्द-विज्ञान-मन का नाम ब्रह्म है—मन-प्राण-वाक् का नाम कर्म्म है। मन-प्राण वाक् का ही नाम वेद-प्रतिष्ठा है। इनमें नाम-रूप-कर्म्म ये तीन मर्त्यभाग हैं एवं मन-प्राण-वाक् समष्टि को—ब्रह्म एवं सत्ता कहा है। परन्तु यह प्रतिष्ठा नामरूपकर्म्म-स्वरूप विषय—भेद से प्रत्यर्थभिन्न हो जाती है। प्रातिस्विक रूपेण नित्य होती हुई भी विषयावच्छेदेन नाना अतएव अनन्त हो जाती है। इसीलिए हमें प्रतिष्ठातत्त्व को—ऋक्-यजुः-साम-समष्टि को—मन-प्राण-वाक् समुच्चय को—बाध्य हो कर—'कर्म्म' नाम से व्यवहृत करना पड़ता है। परन्तु ध्यान रहे, प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ तीनों उस आनन्द-विज्ञान-मनस्वरूप, सच्चिदानन्दस्वरूप, आत्मा से सर्वथा अभिन्न रहते हैं। सूर्य्य से हजारों रश्मियाँ उत्पन्न

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

होती हैं परन्तु सारी रश्मियाँ सूर्य्यानुगत हैं, सूर्य्यपिण्ड से बद्ध हैं; तथैव उस सर्वज्ञ सर्ववित्-ज्ञानमूर्ति ब्रह्म से उत्पन्न होने वाले प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ, तीनों रहते हैं अभिन्न ही। तीनों उसी आत्मालम्बन पर रहते हैं। प्रतिष्ठा-ज्योति यज्ञ का, नाना-भाव का, नाम ही तो विश्व है। ये नाना-भाव (अनेकता) प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ की ही तो महिमा हैं। अनन्तप्रतिष्ठा-अनन्तज्योति अर्थात् नामरूप-अनन्तयज्ञ अर्थात् कर्म्म—यही तो संसार का स्वरूप है। इनके अलावा संसार है ही क्या ? चूँकि प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ ये तीनों ही आनन्द-विज्ञान-सत्ता इस त्रिक्ब्रह्म से अविनाभूत रहते हैं, विना ब्रह्म-त्रितय के—यह कर्म्मत्रितय नहीं रहता अतएव हम छहों की समष्टि को ही विश्व कहने को तय्यार हैं। त्रितय ब्रह्म में संपद्यमान अर्थात् अनुगत जो प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ त्रितय है, वही—'विश्व' कहलाता है। इसी अभिप्राय से भाष्यकार कहते हैं—

"तदित्थं प्रतिष्ठाज्योतिर्यज्ञ इत्येत् कर्म्मत्रितयमानन्दविज्ञानसत्तैतत्त्रितये ब्रह्मणि संपद्यमानमिदं विश्वमाख्यायते।"

बस, ब्रह्म-त्रिसमानुगत—जो प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ त्रितय है—इतना बड़ा एक प्रत्यय है। 'इदमस्ति' यह एक जो ज्ञान है—प्रत्यय है—उसमें ब्रह्म-त्रयानुगत-प्रतिष्ठाज्योतिर्यज्ञ ये तीनों भाव मौजूद हैं। संसार से जो कुछ हम देख रहे हैं अथवा आप देख रहे हैं, सब प्रत्यय ही अर्थात् ज्ञान ही है। 'इदमस्ति' इस प्रत्यय के अलावा और कुछ भी नहीं है। संसार है—यह भी प्रत्यय ही है। सूर्य्य भी है—यह भी प्रत्यय ही है। आसमान है—यह भी प्रत्यय ही है। स्त्री-पुत्र-धन-धान्य-कुटुम्ब सब प्रत्यय ही प्रत्यय हैं। 'इदमस्ति'—यही प्रत्यय का स्वरूप है। इस 'इदमस्ति' स्वरूपप्रत्यय के उदर में—ब्रह्मत्रयानुसंहित-प्रतिष्ठा-ज्योति और यज्ञ तीनों विद्यमान हैं। तीनों की क्यों, छहों की समष्टि का नाम 'इदमस्ति' है। इदमस्ति ही तो प्रत्यय का अर्थात् ज्ञान का स्वरूप है। यह है—इस के अलावा और प्रत्यय बच ही क्या जाता है ? इदमस्ति ही तो ज्ञान का स्वरूप है। इदमस्ति में ब्रह्मत्रयानुसंहित कर्म्म-त्रितय रहते हैं—हमारा यह कहना मिथ्या नहीं है। हम दोनों तत्त्वों का आप को प्रत्यक्ष करवा सकते हैं। इदमस्ति में जो 'इदम्' है, वह तो कर्म्म है एवं 'है' ब्रह्म है, 'है'—नित्य तत्त्व है—'इदम्' अनित्य है। 'है'—बदलता नहीं; इदम्—बदलता है। बदलना

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कर्म्म का स्वरूप है, नहीं बदलना ब्रह्म का स्वरूप है। सामने एक घड़ा रखा हुआ है। उस के लिए 'इदमस्ति' यह प्रयोग होता है। इस घड़े में जो एक स्वात्म-प्रतिष्ठा है—जिसके कारण ही 'घड़ा है' इस नाम से व्यवहृत होता है, उसी का नाम प्रतिष्ठा है एवं घड़े का 'घड़ा' यह जो नाम है एवं घड़ा गोल-गोल आकार का है, इस आकार को ही तो 'रूप' कहते हैं एवं घड़ा कुर्वद्रूप है, इस घड़े में प्रतिक्षण क्रिया हो रही है। प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है। घड़ा हर समय प्रकाश वगैरः को खा रहा है एवं साथ ही छोड़ भी रहा है इसीलिए तो कालान्तर में जा कर यह घड़ा जीर्ण हो जाता है। इस आदान-विसर्गात्मिका क्रिया का नाम ही यज्ञ है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ में हम प्रतिष्ठा-ज्योति अर्थात् नामरूप एवं यज्ञ अर्थात् क्रिया का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। इदमस्ति यही प्रत्यय का स्वरूप है, यही ज्ञान का स्वरूप है। इस प्रत्यय में ज्ञान और विषय दो भाव हैं। ज्ञान, ब्रह्म है, विषय, कर्म्म है। आनन्द-विज्ञान-सत्ता ये ज्ञान-भाग हैं, मन-प्राण-वाक् ये कर्म्मभाग हैं। मन-प्राण-वाक् में ही नामरूपकर्म्म बैठे हुए हैं। मन-प्राण-वाक् तो प्रतिष्ठा है, नाम-रूप-ज्योति-कर्म्म-यज्ञ है। एक प्रत्यय में—इदमस्ति इस प्रत्यय में—ब्रह्म-त्रितयानुसंहित-प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञस्वरूप कर्म्म-त्रितय बैठा हुआ है। छहों की समष्टि से प्रत्यय का स्वरूप बनता है। सब प्रत्यय ही तो प्रत्यय है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"एतावानयमेकः प्रत्ययः। प्रत्यय एवैतत् सर्वम्।"

सारा प्रपञ्च प्रत्यक्षस्वरूप ही है। इस का विस्तृत विवेचन (स्व० गुरु—पं० मधुसूदन ओझा कृत) संशयतदुच्छेदवाद के—"प्रत्ययोपनिषत्" नामक प्रकरण में देखना चाहिए।

इस प्रत्यय में छहों भाव हैं—जैसा कि पूर्व में बतला दिया गया है। छहों में आनन्द-ज्ञान-सत्ता ये तो ब्रह्मकाण्ड हैं एवं प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ ये तीन कर्मकाण्ड हैं। सारा प्रत्यय—सारा प्रपञ्च—ब्रह्मकाण्ड और कर्म्मकाण्ड इन दो काण्डों में ही विभक्त है। ब्रह्म और कर्म्म के अलावा और कुछ भी नहीं है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ब्रह्म और कर्म्म का हमें साक्षात्दर्शन हो रहा है। जिसे वस्तु कहा जाता है, वही रस है। भाव का ही नाम तो रस है। प्रत्येक पदार्थ में पदार्थ और परिच्छेद अर्थात् सीमा—ये दो भाव रहते हैं। जो पदार्थ, पदार्थ का हिस्सा है वह ब्रह्मनिबन्धन है। पदार्थ जिसे कहा जाता है—वह रस है जो कि अनिर्वचनीय है। सेना एक पदार्थ है परन्तु सेना के स्वरूप को पकड़ कर आप दिखला नहीं सकते। सैनिक स्वरूप कर्म्मसमष्टि पर रहने वाला असंग-ब्रह्म ही—सेना है। सेना का खूब प्रत्यक्ष हो रहा है परन्तु साथ ही-खूब ही अप्रत्यक्ष भी हो रहा है। कहना यही है कि पदार्थ-भाव का नाम ही रस है, रस को ही ब्रह्म कहते हैं। परिच्छेद-परिच्छेदभाग-कर्म्मनिबन्धन है। कर्म्म का सीमाबद्धता (लिमिट) धर्म्म है। कर्म्म, क्रियास्वरूप है। क्रिया, प्रति-क्षण में नष्ट होती रहती है। उत्पत्ति-स्थिति-लय, क्रिया में यही लीला होती रहती है। स्थिति भी बदलती ही रहती है। भला, ऐसी क्रिया की उत्पत्ति तब तक कैसे मानी जा सकती है—जब तक कि उसका कोई निष्क्रिय-आलम्बन न मान लिया जाए, परिवर्त्तनीया क्रिया के लिए कोई अपरिवर्त्तनीय तत्त्व अवश्य ही मानना पड़ता है। बस, उसी का तो नाम ब्रह्म है। क्रिया तो विनाशिनी है इस का प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? प्रत्यक्ष तो ब्रह्म का ही होता है। जिसे पदार्थ कहते हैं—भाव कहते हैं—वही ब्रह्म का स्वरूप है। एवं परिच्छेद को ही कर्म्म कहते हैं। वास्तव में कर्म्म कोई वस्तु नहीं है, भावा-भाव का ही नाम कर्म्म है। भावाभाव ही तो भेद का कारण है। इसी से तो भेद-प्रत्यय होता है। भावाभाव असल में कोई वस्तु नहीं है, फिर भी जगत् में वह जगतरूपेण प्रतिभासित हो रहा है इसीलिए तो कर्म्म को अभ्व कहते हैं। इस कर्म्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड के अलावा और है ही क्या? प्रत्यय में ये दोनों काण्ड मौजूद हैं। आनन्द-विज्ञान-सत्ता-ब्रह्मकाण्ड है एवं प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ, कर्म्म-काण्ड है—

"तत्रानन्द ज्ञानसत्ता ब्रह्मकाण्डम्। प्रतिष्ठाज्योतिर्यज्ञाः कर्म्म-काण्डम्।"

संसार में जितने भी पदार्थ हैं—प्रतिपदार्थ में—प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञ भिन्न-भिन्न हैं। सब की प्रतिष्ठा—सब का नामरूप, सब का कर्म्म—परस्पर सर्वथा भिन्न-भिन्न है। जैसा कि प्रकरण के प्रारम्भ में बतलाया गया है, भिद्य-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मान जो सत्ता है–उसी का नाम प्रतिष्ठा है। भेद को ही मृत्यु कहते हैं। मृत्यु का नाम ही कर्म्म है। इसीलिए इस प्रतिष्ठा को हम–कर्म्म कहने के लिए तय्यार हैं। चूंकि प्रत्यर्थ प्रतिष्ठा–ज्योति–यज्ञ भिन्न-भिन्न हैं, अतएव हम इन तीनों को मृत्यु कह सकते हैं। तीनों मृत्युमय–कर्म्मकाण्ड है। तात्पर्य्य यही है कि प्रतिष्ठा–ज्योतिर्यज्ञ प्रतिपदार्थ में भिन्न हैं। इस भेदानुप्रवेश के कारण ही–भेद के कारण ही–प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ-मृत्युमय कहलाते हैं। मृत्यु का ही तो नाम–कर्म्मकाण्ड है। अतएव हम इन तीनों मृत्युमय भावों को–भेदस्वरूप, मृत्युतत्त्व को–कर्म्मकाण्ड कहने के लिए तय्यार हैं।

कर्म्म शब्द मृत्यु-निवन्धन है। कर्म्म का ही नाम मृत्यु है। मृत्यु नाम है–मरणधर्म्मा तत्त्व का। क्रिया ही, अर्थात् कर्म्म ही, प्रतिक्षण में विनष्ट होता रहता है अतएव हम कर्म्म को–मृत्यु कह सकते हैं। कर्म्म वास्तव में मृत्यु-निवन्धन है। मृत्यु ही–कर्म्म का स्वरूप है एवं मृत्यु शब्द ही भेद-निबन्धन है। मृत्यु नाम है–वल का। बल संख्यातः अनन्त है–दिग्-देशकालतः परिच्छिन्न है। ब्रह्म एक है–व्रल, अनन्त हैं, ब्रह्म नित्य है–वल, अनित्य है, ब्रह्म, अमृत है–वल, मृत्यु है। जो वस्तु मरणधर्म्मा है, वही नाना है। घट-पटादि नष्ट होने वाले हैं–अतएव अनन्त हैं। अस्ति यह भाव नित्य है अतएव वह एक है। कहना यही है कि मृत्यु ही भेद का कारण है एवं मृत्यु का ही नाम है–कर्म्म। चूंकि प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ भिन्न-भिन्न हैं; भेद, मृत्यु-निबन्धन है। भेद, मृत्यु का ही स्वरूप है। मृत्यु को ही तो कर्म्म कहते हैं। बस, इसीलिए हम प्रतिष्ठा-ज्योति एवं यज्ञ इन तीनों मृत्युमय भावों को कर्म्मकाण्ड कहने के लिए तय्यार हैं—

"भिद्यन्ते प्रत्यर्थं प्रतिष्ठाज्योतिर्यज्ञाः। तेन च भेदानुप्रवेशादिदं मृत्युमयं रूपं कर्म्मकाण्डमित्युच्यते। कर्म्मशब्दस्य मृत्युनिबन्धनत्वात्–मृत्युशब्दस्य च भेदनिवन्धनत्वात्।"

प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ, इन तीनों के साथ ही आनन्द-विज्ञान-सत्तात्मक ब्रह्म-त्रितय भी मौजूद है। आनन्द-विज्ञान-सत्ता ये तीनों ही नाम-रूप-कर्म्म की अपेक्षा न रख कर स्वरूपतः भिन्न नहीं होते। नाम-रूप-कर्म्म की अपेक्षा से आनन्द-विज्ञान-सत्ता में भेद दिखलाई पड़ता है। जहाँ नाम-रूप-कर्म्म को

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

छोड़ा कि तीनों का भेद गायब हुआ। इससे मालूम होता है कि यह भेद उस का प्रातिस्विक नहीं है, अपितु नाम-रूप-कर्म्म का निवन्धन है। पुत्र का आनन्द, स्त्री का आनन्द, नाटक का आनन्द, बाग का आनन्द, कविता का आनन्द, घर का आनन्द, रुपये-पैसे का आनन्द, पुस्तक का आनन्द—इस प्रकार जो यच्चयावत् विषयानन्द हैं, वे सर्वथा परस्पर भिन्न हैं। सारे आनन्दों का स्वरूप अलग-अलग है परन्तु इन भिन्न-भिन्न आनन्दों का एकमात्र कारण पुत्र-स्त्री-घर-रुपये-जमीन-इत्यादि विषय ही है। आनन्दभेद विषय-निवन्धन है। यदि इन सारे विषयों को एकान्ततः निकाल दिया जाए तो—फिर आनन्द-आनन्द सब एक हैं। वहाँ भेदभाव का पता भी नहीं रहता है। एक ही पानी को दस वर्तनों में डाल दिया। डाल कर, दसों में-नींवू-नारङ्गी-अनार-गुडहल-गुलाब-केवड़ा-संतरा-आम-खसखस का शर्वत अलग-अलग मिला दिया। सारे शर्वतों का स्वाद भिन्न-भिन्न है। क्या इससे पानी भी दस प्रकार का हो गया ? हो गया—परन्तु शर्वत के भेद से। यदि उन सारे शर्वतों को निकाल लो—अलग कर दो—तो पानी स्व-स्वरूप से एक है। एवमेव आनन्द स्व-स्वरूप से एक है। यही बात, ज्ञान के विषय में भी समझनी चाहिए। घट-पट-मठ-पर्वत, इन सब का ज्ञान भिन्न-भिन्न है। सारे विषयों को निकाल दीजिए—ज्ञान एक है। इसीलिए घड़ा है, कपड़ा है—वस्त्र है—घर है—सब हैं—सारे अस्तिभाव भिन्न-भिन्न हैं। सारे विषयों को निकाल दीजिए—एक 'है' बच जाएगा। स्वस्वरूप से आनन्द-ज्ञान-सत्ता अभिन्न हैं। तीनों की अनन्तता का मूल—एक ही है। केन्द्रीय आनन्दघन का नाम—आनन्द है—इस की रश्मियों का नाम—ज्ञान है एवं प्रतिफलित रश्मियों का नाम सत्ता है। कहने को ये तीन हैं परन्तु वास्तव में तीनों एक हैं। नामरूपकर्म्मनिपेक्ष स्व-स्वरूप से तीनों अभिन्न हैं। तीनों एक ही वस्तु हैं—

"अथ नायमानन्दो न ज्ञानं न सत्ता नामरूपकर्म्मानपेक्षं स्वरूपतोऽभिद्यन्ते।"

भेदाननुप्रवेश होने के कारण ही अर्थात् अभिन्नता के कारण ही हम इन तीनों को ब्रह्मकाण्ड कहने के लिए तय्यार हैं। ब्रह्मशब्द-अमृतनिवन्धन है। अमृततत्त्व का नाम ही ब्रह्म है एवं अमृतशब्द एकसत्ता-निवन्धन है। भेद-भाव

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का हटना—एक ही "है" भाव का रहना, यही अमृत का स्वरूप है। जो एक है—नाना नहीं है—वही अमृत है एवं भिद्यमान-सत्ता का नाम मृत्यु है। चूंकि भिद्यमान-सत्ता को ही प्रतिष्ठा कहते हैं अतएव हमने प्रतिष्ठा—कर्म्म-काण्ड में बतलाया है कि जो एक सत्ता है—उसी का नाम—अमृत है, अमृत को ही ब्रह्म कहते हैं। चूंकि आनन्द-विज्ञान-सत्ता तीनों वास्तव में एक हैं अतएव हम इन तीनों की समष्टि को अवश्य ही 'ब्रह्मकाण्ड' कहने के लिए तय्यार हैं—

"तस्माद् भेदानुप्रवेशादेतत्त्रितयं ब्रह्मकाण्डम् । ब्रह्मशब्दस्यामृत निबन्धनत्वात् । अमृतशब्दस्य चैकसत्ता निबन्धनत्वात् ।"

नाना-सत्ता का—नाना-भाव का-नाम, मृत्यु है एवं एक सत्ता का-एक भाव का नाम, अमृत है। इसमें निम्नलिखित श्रुति ही प्रमाण है—

"यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।। (कठोप० २।१।१०)

नाना भाव से मृत्यु प्राप्ति बतलाई जाती है अतएव हम नाना-भाव को मृत्यु—एक-भाव को अमृत कहने के लिए तय्यार हैं। अमृत—ब्रह्म है, मृत्यु कर्म्म है। ब्रह्म एक है—कर्म्म नाना हैं।

इस आनन्द-विज्ञान-सत्तास्वरूप अमृतमय ब्रह्मकाण्ड में, सत्तावच्छेदेन प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ-स्वरूप कर्म्मकाण्ड अनुस्यूत रहता है। ब्रह्म और कर्म्म दोनों परस्पर अविनाभूत हैं। अकर्म्म में कर्म्म अनुस्यूत रहता है। ब्रह्म, बिना कर्म्म के नहीं रहता। कर्म्म, बिना ब्रह्म के नहीं रहता। इसीलिए तो छहों की समष्टि को प्रत्यय बतलाया है। आनन्द-विज्ञान-मन का नाम ब्रह्म है, मन-प्राण-वाक् का नाम कर्म्म है। ब्रह्म-कर्म्म मिले रहते हैं। कर्म्म-मृत्यु है-ब्रह्म-अमृत है। दोनों के मेल से प्रजापति का स्वरूप बनता है—

"अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीदर्धममृतम् ।"
(शत० ब्रा० १०।१।४।१)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यह अटल सिद्धान्त है। मृत्यु तो प्रजापति का आधा शरीर है; भला वह क्यों कर उस अमृतभाग से अलग हो सकता है? इसीलिए शुद्धज्ञान एवं शुद्धकर्म्म का खण्डन करते हुए एवं बुद्धियोग का स्थापन करते हुए भगवान् कहते हैं—

"कर्म्मण्य कर्म्म यः पश्येदकर्म्मणि च कर्म्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्म्मकृत् ॥" (गीता ४।१८)

इस से सिद्ध हो जाता है कि सत्तावच्छेदेन—ब्रह्म में कर्म्मकाण्ड परित्यक्त रहता है—

"अमृतेऽस्मिन् ब्रह्मकाण्डे सत्तावच्छेदेन परित्यक्तमिदं कर्मकाण्डम्।"

'अस्ति'—यही सत्ता का स्वरूप है। इस अस्ति में ही नाम-रूप-कर्म्म रहते हैं। यदि नास्ति तो, नाम-रूप-कर्म्म भी नास्ति। यदि अस्ति तो नाम-रूप-कर्म्म भी सन्ति। 'है' इस सत्ता के आश्रित ही—कर्म्मकाण्ड—अर्थात् प्रतिष्ठा-ज्योति और यज्ञ—रहता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण—भवति और प्रतीयते—यही है। भवति—यह गृह्यमाणसत्ता का अभिनय कर रहा है। "मृत्तिकायां घटो भवति" अर्थात् मृत्तिकायां घटः सत्तां धारयति। सत्तां धारयते यही भाव—भवति से बतलाया जा रहा है। यहाँ पर वह कर्म्मसत्ताश्रय है एवं प्रतीयते अर्थात् ज्ञायते—घटो ज्ञानाश्रयः। इसमें घट ज्ञान का आश्रय है। भवति घटः में—सत्ताश्रय घट है—प्रतीयते—ज्ञायते घटः—यहाँ ज्ञानाश्रय है। सत्ता-ज्ञान-अभिन्न वस्तु है। सत्ता ही इनका आश्रय है। कर्म्मकाण्ड सत्ताब्रह्म में अनुस्यूत रहता है इसीलिए तो भवति—प्रतीयते—यह कहा जाता है—

"भवति च प्रतीयते चेति।"

चूँ कि यह कर्म्मकाण्ड-सत्ताश्रय है—सत्ता ही—'अस्तिभाव' ही—प्रतिष्ठा ज्योति-यज्ञ का आलम्बन है अतएव ये सत्य कहलाने लगते हैं। सत्ताश्रयत्वात्-कर्म्मकाण्ड-सत्य कहलाने लगते हैं। इस में वेदाःसत्यम्-नामरूपेसत्यम् यह श्रुति ही प्रमाण है। वेद नाम है—प्रतिष्ठा का—नामरूप का-ज्योति का। नाम-रूप में जो—रूप है, उसे कर्म्म का भी उपलक्षण समझना चाहिए क्योंकि रूप

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कर्म्मनिबन्धन ही होता है। रूप नाम है—आकार का। कर्म्म नाम है—गुण-कूट का। गुणकूट ही द्रव्य कहलाता है। 'गुणकूटोद्रव्यम्' यह सिद्धान्त है। संकलित शक्तियों का नाम ही तो द्रव्य है। संकलित वृक्षों का नाम ही तो वन है। प्रासाद-समुच्चय का नाम ही तो ग्राम है। सिपाही-समूह का नाम ही तो सेना है। शक्ति को ही कर्म्म कहते हैं। कर्म्म-समष्टि ही घट-पटादि द्रव्य है। घट-पट का जो आकार है—वह इसी द्रव्य के आधार पर तो आलम्बित है। ऐसी हालत में रूप—कर्म्म, विना द्रव्य क्यों कर रह सकते हैं ? अतः रूप को अवश्य ही कर्म्मकाण्ड का उपलक्षण समझना चाहिए—

"सत्ताश्रयत्वात् सत्यमाख्यायते। वेदाः सत्यं-नाम-रूपे सत्यमिति श्रवणात्। नाम-रूपे सत्यमिति श्रुतौ नाम-रूप-शब्दः कर्म्मणोऽप्युपलक्षणं भवति। कर्म्म-निबन्धनत्वाद् रूपाणां कर्म्माविनाभावात्॥"

यह ब्रह्मकाण्ड सत्य का भी सत्य कहलाता है। 'सत्यस्य सत्यमनुयत्र युज्यते' में सत्य का सत्य वह ब्रह्म ही अभिप्रेत है। चूंकि सत्ताश्रयात् सत्य, जो प्रतिष्ठा-ज्योति और यज्ञ-सत्य है, अर्थात् जो सत्य कर्म्म-काण्ड है—वह अव्यतिरेकेण-अविनाभावेन-उस ब्रह्मकाण्ड में रहता है अर्थात् ब्रह्म में सदा कर्म्मकाण्ड अनुस्यूत रहता है। कर्म्मकाण्ड सत्ताश्रयत्वात् सत्य है। यह सदा ब्रह्मकाण्ड में रहता है अतएव ब्रह्मको सत्य का भी सत्य कहा जाता है। इस प्रकार—कर्म्मकाण्ड विशिष्ट जो ब्रह्मकाण्ड है, वह सत्य का सत्य एवं खाली सत्य इन दोनों ही नामों से व्यवहृत किया जाता है। सत्य का सत्य भी उसे कह सकते हैं एवं वह वास्तव में सत्यस्वरूप ही है, अतएव उसे सत्य भी कह सकते हैं।

"अथेदं ब्रह्मकाण्डं तु सत्यस्य सत्यमित्याख्यायते। सत्यस्य कर्म्म-काण्डस्यैतद् ब्रह्मकाण्डेऽव्यतिरेकेणानुपस्थानात्। तथाचेदं कर्म्मकाण्डविशिष्टं ब्रह्मकाण्डं सत्यस्य सत्यं वा—सत्यमेव वा व्यपदिश्यते।"

सत्ता-चेतना-आनन्द ये तीनों तीन नहीं हैं अपितु तीनों एक ही हैं। तीनों कहने को तीन हैं वास्तव में तीनों एक हैं। इसी के लिए—"यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः" (मुण्डक उप० १।१।९) यह कहा गया

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है। इस ब्रह्म से सर्वज्ञ—सर्ववित् ब्रह्म से—ब्रह्म-नामरूप—एवं अन्न अर्थात् प्रतिष्ठा-ज्योति और यज्ञ ये तीन भाव पैदा होते हैं। तीनों ही चूंकि सत्ताश्रित रहते हैं अतएव सत्य कहलाते हैं। बस, ब्रह्म-प्रतिष्ठा-ज्योति और यज्ञ—समुच्चित जो यह चतुष्टय है—उसे ही सत्य कहते हैं। समुदाय में सत्य शब्द अनुस्यूत है। चूंकि चारों सर्वथा अविनाभूत रहते हैं अतएव हम चतुष्टय के समुच्चित रूप को ही सत्य कहेंगे। "समुदाय में व्यवहृत होने वाले शब्द, समुदाय के एक देश में भी व्यवहृत होते हैं।" यह न्याय है। कपड़े के एक देश के जलने पर भी "पटोदग्धः" यह कहा जाता है। ग्राम की एक झोंपड़ी जल जाने पर भी—"ग्रामोदग्धः" यह कहा जाता है। बस, इसी तरह—समुच्चय में—समुदाय में रहने वाला सत्य-शब्द प्रत्येक में व्यवहृत होने लगता है इसीलिए आनन्दः सत्यम्, ज्ञानं सत्यम्, सत्ता सत्यम्, ब्रह्म सत्यम्; नामरूपे-सत्यम्, यह व्यवहार होने लगता है।

"समुच्चितमेतच्चतुष्टयं सत्यम्। समुदाये द्रष्टा शब्दा अवयवेऽपि वर्त्तन्ते इति। न्यायात्—तदेकैकास्मिन्नपि सत्य-शब्दः—आनन्दःसत्यम्, ज्ञानंसत्यम्, सत्तासत्यम्, ब्रह्मसत्यम्, नामरूपेसत्यम् इति।"

यह घड़ा है, यह कपड़ा है, यह मकान है, यह सूर्य्य है, यह चन्द्रमा है, यह पुस्तक है, यह कलम है, यह दवात है, यह टेविल है—इस प्रकार जो यह एक-एक भाव कहलाता है अर्थात् पदार्थ कहलाता है, वही रस है। रस में ही भावशब्द प्रयुक्त होता है। भाव, रस का ही वाचक है। भावशब्द से रस ही अभिप्रेत है। हम घट को जानते हैं एवं घट बन रहा है। यहाँ पर जो ज्ञान और बनने का अर्थात् सत्ता और ज्ञान का आश्रय है, वह यही भाव है। भाव का ही नाम तो रस है। भवति—इसका अर्थ है—सत्ता घाटयते। घटो भवति—इस का अर्थ है—घटो मृतसत्तां धारयति। वर्तमान सत्ता के अभिनय में—भवति का प्रयोग होता है। घटो भवति से—सत्ता धारण कर रहा है, यह प्रतीति होती है एवं घटोऽस्ति में गृहीत पूर्व-सत्ता का अभिनय है। घटोऽस्ति से अतीत काल की सत्ता का भाव प्रतीत हो रहा है। घटोऽस्ति का तात्पर्य्य है—घटः प्रतिष्ठां धत्ते, घट ने प्रतिष्ठा धारण कर रखी है, घट प्रतिष्ठित है एवं घटो भवति का तात्पर्य्य है—घटः प्रतिष्ठां धारयते—घट

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठा को धारण कर रहा है। अस्ति का अर्थ है 'है', इस से गृहीत पूर्व-सत्ता का अभिनय होता है एवं भवति का अर्थ होता है-'हो रहा है'-इस से गृह्यमाण सत्ता का-वर्तमान सत्ता का-अभिनय हो रहा है। भवति भी सत्ता है-अस्ति भी सत्ता है परन्तु अर्थ में अन्तर है। इसी अन्तर को बतलाते हुए भाष्यकार कहते हैं—

"भवति सत्तां धारयते।"

जो सत्ता का आश्रय बन रहा है-वही भाव है। वही पदार्थ है-जो भवति-वही पदार्थ है। वही भाव है। वही रस है। भवति से-सत्ताश्रय रस का ही अभिनय हो रहा है। जो हो रहा है-जो होने का, सत्ता का, आश्रय बन रहा है-वही भाव है, वही रस है, वही ब्रह्म है—

"स हि सत्ताश्रयो भावः।"

यह तो हुआ सत्ता द्वारा रस का अभिनय। अब लीजिए ज्ञान द्वारा अनुभाव्यते-ज्ञायते घटः। यह घट-भावनामय भाव है। ज्ञायते घटः में-घट-ज्ञानाश्रय है। ज्ञायते घटः में ज्ञान द्वारा घट का अभिनय हो रहा है अतएव अनुभाव्यते-ज्ञायते में-आश्रितभाव-भावनामय है अर्थात् ज्ञानमय है। भवति घटः में-भाव सत्तामय है-वहाँ इस भाव का अभिनय सत्ता द्वारा हो रहा है एवं अनुभाव्यते घटः में-भाव ज्ञानमय है। ज्ञान से-भाव का, रस का, अभिनय हो रहा है—

"अनुभाव्यते ज्ञायते स हि भावनामयो भावः"

रस ही सत्ता को धारण करता है एवं इसी का ज्ञान होता है अतएव हम रस को ही भाव कहने के लिए तय्यार हैं। यह रस ही ब्रह्म है।

सत्ता-ज्ञान-रस तीनों का नाम ही-अमृतभाव है। तीनों ही वास्तव में रस हैं। इन तीनों की जो समुच्चित अवस्था है-उसी का नाम प्रतिष्ठा है। बस, इस त्रयीविद्यास्वरूप प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होने वाला-नामरूपकर्म्म को धारण करने वाला-जो रस है-वही सत्य शब्देन व्यवहृत होता है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विश्व का स्वरूप यही सत्य है—जिस में ब्रह्मप्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ तीनों पदार्थ हैं। कहने का तात्पर्य्य यही है कि सारा प्रपञ्च ही सत्य है। सत्य से अलावा—प्रत्यय से अलावा—और कुछ भी नहीं है।

"रस एव हि सत्तां धारयते च अनुभाव्यते चेति रसो भावः। स हि त्रय्यां विद्यायां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठते नामरूपे धार्य्यमाणः कुर्वद् रूपः सत्यः शब्दः।

पूर्णानन्द घन, सविज्ञान घन, सर्वशक्तिघन, जो एक अमूर्त्त-तत्त्व है, वही साक्षात् सत्य भगवान् है—जिस का कि स्वरूप पूर्व प्रकरण में विशद्‌रूपेण बतला दिया गया है। यद्यपि संसार में यच्चयावत् पदार्थ सच्चिदानन्द-स्वरूप ही हैं—हम भी सच्चिदानन्द हैं—सूर्य्य भी सच्चिदानन्द है—पृथिवी भी सच्चिदानन्द है—सच्चिदानन्द के अलावा और चौथी वस्तु है ही नहीं—तथापि हम सब उस सच्चिदानन्दघन के अंशस्वरूप हैं। हम अंश हैं—वह अंशी है। हम अर्क हैं—वह उक्थ है। हमें भी आनन्द आता है, हमारी तरह ही अन्य मनुष्यों को भी आनन्द आता है। एक गधे को भी आनन्द आता है। कुत्ते को भी आनन्द आता है। बिल्ली को भी आनन्द आता है। कृमि को भी आनन्द आता है। तात्पर्य्य यह है कि संसार के यच्चयावत् प्राणी आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। सब को आनन्द आता है—सब आनन्दमय हैं। बस, सम्पूर्ण आनन्द का जो घन है, जहाँ से कि ये आनन्द निकलते हैं—वही सत्य भगवान् है। सूर्य्य को सत्य भगवान् समझिए। सूर्य्य से चारों ओर वितत होने वाली सूर्य्य-रश्मियों को उस सूर्य्य—बिम्ब से निकले हुए—अनन्तजीव समझिए। सूर्य्य एक है—जो कि ज्योतिर्घन है। इस में से चारों ओर अनन्त किरणें निकलती हैं। सूर्य्य की प्रत्येक किरण पानी में प्रतिबिम्बित हो कर एक नये उक्थ में अर्थात् सूर्य्य के बिम्ब-स्वरूप में परिणत हो जाती है। एक रश्मि का प्रतिबिम्ब बम्बई में है—एक का कलकत्ते में है—एक का मद्रास में—एक का पूना में है—एक का जयपुर में है। रश्मिभेद से—सारे प्रतिबिम्ब भिन्न हैं एवं सब का स्वरूप भिन्न-भिन्न है। परस्पर एक दूसरे में कोई सम्बन्ध नहीं। बम्बई में घड़े के फूटने से—वहाँ का प्रतिबिम्ब गायब होगा—न कि जयपुर का। जयपुर के घड़े के फूटने से जयपुरस्थ प्रतिबिम्ब का तिरोभाव होगा न कि बम्बई

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

के प्रतिविम्ब का । सब की संस्था भिन्न-भिन्न है । इन सब अंशों का जो एक मूलघन है—वही सत्य भगवान् है । उसी घन में से अंश-अंश ले कर हम अपने आनन्द का स्वरूप बना रहे हैं । हम सब प्राणिवर्ग भिन्न-भिन्न प्रकार के आनन्द का अनुभव करते हैं । ऐसी अवस्था में मानना पड़ता है कि इन सारे आनन्दों का कोई मूल अवश्य ही है । बस, जो इन का मूल है—वही सत्य-भगवान् है ।

इसी प्रकार विज्ञान में समझो । प्राणिवर्ग का ज्ञान पृथक्-पृथक् है । सब को ज्ञान होता है । अपने-अपने ज्ञान में सब स्वतन्त्र हैं, परन्तु इन सब के ज्ञानों का एक मूल अवश्य ही मानना पड़ता है । जिस में से ज्ञान मात्रा ले कर यह सारा प्राणिवर्ग अपने को ज्ञानी कहने के लिए परिबद्ध होता है; वही सर्वं ज्ञानघन जो सत्य-तत्त्व है—वही सत्य-भगवान् है, वही ईश्वर है । हम उसी से उद्भूत हैं एवं उसी में विलीन हो जाते हैं ।

तीसरा तत्त्व है—सत्ता । शक्ति-समुच्चय का नाम ही सत्ता है । संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब शक्तिस्वरूप हैं । बल—समष्टि का नाम ही सत्ता है । इस बल को ही तो सत्ता कहते हैं । हमारे में जो शक्तियाँ हैं—इन अशेष शक्तियों का जो खजाना है—जिस खजाने में से कि हमें शक्तियाँ मिला करती है, वह सर्वशक्तिघन अतएव सर्व जगन्नियन्ता—जो एक तत्त्व है—वही सत्य-भगवान् है जो कि अमूर्त्त है अतएव कृष्ण नाम से व्यवहृत है । यही सत्यभग-वान्—अव्ययेश्वर नाम से प्रसिद्ध है—

"स एष पूर्णानन्दघनः सविज्ञानघनः सर्वशक्तिघनः सर्वजगन्नियन्ता कश्चिदार्थो भगवान् सत्यः ।"

इसी सत्य से यह सारी प्रजा उत्पन्न होती है । एक ही सूर्य्य से जैसे अनन्तानन्त प्रतिविम्ब उत्पन्न हो जाते हैं तद्वत् इस एकही सच्चिदानन्दघन सत्य ईश्वर से—यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है । चूंकि सारा ब्रह्माण्ड इसी सत्य-ब्रह्म से उत्पन्न होता है, सारी प्रजा का अधिष्ठाता यही है अतएव इस सत्य-तत्त्व को प्रजापति भी कहते हैं । इस सत्य से, जो कि प्रजापति स्वरूप है-सारा विश्व उत्पन्न हुआ है । सत्य प्रजापति से ही सारा विश्व उत्पन्न हुआ है । सत्य ही विश्व-रूप में परिणत हो गया है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"स प्रजापतिः। तस्माद्धि सत्यात् प्रजापतिरेवेदं विश्वं जज्ञे।"

प्रजापति ने ही संसार के यच्चयावत् पदार्थों को बनाया है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"प्रजापतिस्त्वेवेदं सर्वमसृजत यदिदं किञ्च।" (श० ब्रा० ६।१।२।११)

संसार में जो कुछ 'है' कह कर व्यवहृत करने लायक पदार्थ हैं, उन सब को उस प्रजापति ने ही उत्पन्न किया है।

प्रजापति ही देवता और भूतों को उत्पन्न करता है। प्रजापति भगवान् से दो ही प्रकार की प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं—देवता और भूत। देवता प्राण-तत्त्व का नाम है—अमृतभाग का नाम है और भूत मर्त्य तत्त्व का नाम है। अव्यय-अक्षर-क्षर की समष्टि का नाम प्रजापति है। इन तीनों में जो क्षर भाग है—वह आत्म-विकार-यज्ञ भेदेन तीन प्रकार का है। आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण-वाक्—ये पाँच कलाएँ अव्यय की हैं। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-अग्नि-सोम—ये पाँच कलाएँ अक्षर की है। प्राण-आप्-वाक्-अन्नाद-अन्न—ये पाँच कलाएँ क्षर की हैं। सोलहवाँ, परात्पर है। बस, इस षोडशीपुरुष को ही प्रजापति कहा जाता है। इन में से जो प्राण-आप्-वाक्-अन्नाद-अन्नस्वरूप पञ्च विकार-क्षर हैं—इन पाँचों की इन्हीं पाँचों में आहुति हो जाती है। बस, इसी सर्वहुत यज्ञ से जो कि—अव्यय के—प्रजापति के मन-प्राण-वाक् व्यापार से हुआ है—पाँच यज्ञक्षर उत्पन्न होते हैं। ये पाँचों ही—यज्ञक्षर—स्वयम्भू-परमेष्ठी-सूर्य्य-चन्द्र एवं पृथिवी नाम से व्यवहृत होते हैं। जो आदि प्रजापति है—वह परम-प्रजापति कहलाता है। ये पाँचों ही प्रतिमा—प्रजापति नाम से व्यवहृत होते हैं। वही प्रजापति पाँच लोक-स्वरूपों में परिणत हो इनके केन्द्र में बैठ जाता है। "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"—यह सिद्धांत है। उस परम-प्रजापति से ये पाँचों लोक उत्पन्न होते हैं एवं पाँचों को उत्पन्न कर, उनके केन्द्र में—उन पिण्डों का अधिष्ठातास्वरूप प्रजापति बैठ जाता है। सूर्य्य का जो प्रतिबिम्ब है, वह प्रतिमा-प्रजापति कहलाता है। सूर्य्य परम्-प्रजापति कहलाता है। इसी प्रकार उस के अंशस्वरूप इन पाँचों-मण्डलों को तो प्रतिमा-प्रजापति समझना चाहिए एवं उस कारणभूत प्रजापति को परमप्रजापति समझना चाहिए। उस परम प्रजापति से ही सारे लोक उत्पन्न होते हैं। वह

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रजापति-लोकों को उत्पन्न कर उस में प्रतिष्ठित हो गया। प्रवर्ग्य बन कर इस पृथिवी की वस्तु बन गया। सूर्य्य-चन्द्र-परमेष्ठी आदि सभी में–वह प्रजापति बैठा हुआ है। परन्तु हमारा सम्बन्ध केवल इस पृथिवी से ही है अतः हम इसी का विवेचन करेंगे। जिस पृथिवी-लोक में हम बैठे हुए हैं–वह उसी परम प्रजापति से उत्पन्न हुआ है। इस लोक को उत्पन्न कर प्रजापति इस पृथिवी में ही प्रतिष्ठित हो गया। पानी के लोटे में–सूर्य्य का ताप प्रविष्ट हो, पानी की ही वस्तु बन जाता है। सूर्य्यास्त होने पर भी–पानी गरम ही रहता है। सूर्य्य की गर्मी सूर्य्य से पृथक् है–पत्थरों में आ जाती है इसीलिए गर्मी के दिनों में–सूर्य्यास्त होने पर भी पत्थर ठण्डे नहीं हो पाते। इसी को प्रवर्ग्य भाग कहते हैं। इसी का नाम उच्छिष्ट है। सूर्य्य की गर्मी सूर्य्य से अलग हो कर अन्नादि में जा कर उन की वस्तु बन जाती है, तभी अन्नादि का परिपाक होता है। अन्न से ही सारे भूत उत्पन्न होते हैं। इस अन्न का एक-मात्र कारण है–सूर्य्य से अलग छँटा हुआ अतएव उच्छिष्ट नाम से व्यवहृत होने वाला ताप–इसीलिए "उच्छिष्टात् सकलं जगत्" यह कहा जाता है। प्रकृत में सिर्फ इतना ही कहना है कि प्रजापति, पृथिवी-लोक को बना–प्रवर्ग्य भाग से उसमें प्रतिष्ठित हो जाता है। इस प्रजापति में–आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण-वाक् ये पांच कलाएँ हैं। पाँचों में आनन्द-विज्ञान-मन ये अमृतभाग हैं एवं मन-प्राण-वाक्–ये मर्त्यभाग हैं। प्रजापति का आधा भाग अमृत है–आधा भाग मर्त्य है इसीलिए—

"अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीदर्द्धममृतम्।"(शत०ब्रा० १०।१।४।१)

यह कहा जाता है। जो आनन्द-विज्ञान-मन है, वह ऊर्ध्वभाग कहलाता है क्योंकि आनन्द-विज्ञान का प्रवेश मुख-भाग से ही होता है एवं मन-प्राण-वाक्-अधोभाग कहलाता है।

दूसरी तरह से यों भी समझना चाहिए–सूर्य्याभिमुख जो स्थान है, वह ऊँचा कहलाता है–सूर्य्य-प्रतिदिक् स्थान नीचा कहलाता है। उत्तर नाम है–ऊँचा का, दक्षिण नाम है–नीचा का। पृथिवी में प्रतिष्ठित होने वाला जो प्रजापति है–उस में मर्त्य और अमृत दोनों प्राण हैं। जो ऊर्ध्वप्राण है–वह अमृतप्राण है, जो अधोप्राण है–वह मर्त्यप्राण है। प्रजापति

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अग्निस्वरूप है। अग्नि दो प्रकार का होता है–मर्त्य और अमृत। अमृतभाग ही असली वस्तु है। यह अमृताग्नि पिण्ड से बाहर रहती है। इसी अमृताग्नि का नाम महिमामण्डल है। बस, यही प्रजापति का ऊर्ध्वप्राण कहलाता है। इस प्राण से देवता उत्पन्न होते हैं एवं जो पिण्डाग्नि है–वह मर्त्यप्राण है अतएव इस का अवाक्-प्राण है। इसमें भूत उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार एक ही प्रजापति से देवता और भूत–दो प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं।

यद्यपि देवता और भूत के अलावा पशु भी उत्पन्न होते हैं परन्तु पशु, देवता और भूत के अनुगत रहते हैं। अनुगत पदार्थ का नाम–पशु है। अतएव इन का अलग नाम नहीं लिया गया है। कहना यही है कि प्रजापति से ही दैवतप्रजा और भौतिक प्रजा उत्पन्न होती है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"प्रजापतिरेवेमान् लोकान् सृष्ट्वा पृथिव्यां प्रत्यतिष्ठत्। स ऊर्ध्वेभ्यः एव प्राणेभ्यो देवानसृजत् येऽवाञ्चः प्राणास्तेभ्यो मर्त्याः प्रजाः।" इति।

ऊर्ध्वप्राण से–सूर्य्य की ओर इशारा है–अधः-प्राण से पृथिवी की ओर इशारा है। सूर्य्य-प्राण का नाम देवता है–सूर्य्य से ही देवता उत्पन्न होते हैं। सूर्य्य ही देवप्राणघन है इसीलिए—

"चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।"

(ऋ० वे० १।११५।१)

कहा जाता है। इसीलिए—

"प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः।" (प्रश्न उप० १।८)

यह भी कहा जाता है। भूत का सम्बन्ध पृथिवी से है।

८ वसु–११ रुद्र–१२ आदित्य–दोनों अश्विनीकुमार–वषट्कार इत्यादि सारे देवता एवं भूत–इस प्रजापति के ही अनुगत रहते हैं। सूर्य्य से निकलने वाली रश्मियाँ जैसे सूर्य्य से बद्ध रहती हैं–कभी सूर्य्य से अलग नहीं होतीं–सूर्य्यास्त के समय उसी में विलीन हो जाती हैं; ठीक इसी प्रकार प्रजापतिघन से–रश्मिरूपेण उत्पन्न होने वाली दैवत-भौतिक प्रजा, प्रजापति से ही बद्ध रहती है, उसी से उत्पन्न होती है, उत्पन्न हो उसी की पकड़ में बद्ध रहती है–अन्त में उसी में विलीन हो जाती है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"तेऽमी विश्वेदेवाः प्रजापतिमन्वेवोपासते—"

इसी अभिप्राय से वेद भगवान् कहते हैं—

"यदक्षरं पञ्च विधं समेति युजो युक्ता अभि यत् संवहन्ति ।
सत्यस्य सत्यमनु यत्र युज्यते तत्र देवाः सर्वे एकं भवन्ति ।।
(ऐ० आ० २।३।८।२०)

अव्यय-अक्षर-क्षर-प्रजापति में तीन भाव रहते हैं। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-अग्नि-सोम ये पाँच अक्षर कहलाते हैं। इन में जो ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र ये तीन अक्षर हैं वे तो हृदय हैं एवं अग्निसोम—बाहर की वस्तु हैं। इनमें जो अग्नि है—उस के वीर्य्य से ही तेंतीस देवता उत्पन्न होते हैं। भूत, देवता—सब इसी अग्नि अक्षर से उत्पन्न होते हैं। देवता, क्षर भाग का नाम है। इन सारे देवताओं का अर्थात् क्षर भाग का कारण अक्षर है। अक्षर से ही—क्षरभाग अर्थात्—देवतादि उत्पन्न होते हैं। इसी अभिप्राय से कहा जाता है—

"यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ।।"
(मुण्डक उप० २।१।१)

इसी अक्षर भाग से—क्षरभाग उत्पन्न होता है। क्षर से—सारे देवता उत्पन्न होते हैं। क्षर का नाम ही देवता है। प्रजापति भगवान् का, अव्ययेश्वर का, मन—प्राण—वाक् स्वरूप सृष्टिसाक्षी बल जब प्रादुर्भूत होता है तो एक ही सत्य नाना भावों में परिणत हो जाता है। यही प्रजापति देवता—भूत—प्रजा उत्पन्न कर—अनन्तस्वरूपों में परिणत हो जाता है परन्तु जब प्रतिसंचर-क्रिया होती है तो सारे के सारे सिमट कर एक हो जाते हैं। एक पर्दे पर लाखों तस्वीरें हैं। जब पर्दा उधर जाता है तो अनन्त चित्र—अनन्त-भाव दिख-लाई पड़ने लगते हैं। जहाँ पर्दा सिमटा कि भेद-भाव गायब—देवता अर्थात्-क्षरभाग नामस्वरूप है।

ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-अग्नि-सोम-ये पाँचों अक्षर—सत्य-स्वरूप हैं। इन की सत्यता अव्यय प्रजापति पर निर्भर है। अतएव अव्यय, सत्य का भी सत्य कहलाता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ब्रह्मा–विष्णु–इन्द्र–अग्नि-सोम—ये पाँचों अक्षर–क्षर भाग के अर्थात् देवताओं के कारण हैं। ये देवता (अग्नि-वायु-आदित्यादि) परस्पर युक्त हो कर इस अक्षर को उठाए हुए हैं। इन की समष्टि से ही शरीर स्थित है परन्तु जिस समय यह अक्षर परस्पर के पञ्चत्व भाव को छोड़ कर सत्य के सत्य की ओर (अव्यय) युक्त होता है तो वहाँ पर जा कर सारे देवता एक हो जाते हैं। आनन्द-विज्ञानस्वरूप–मुक्तिसाक्षी वल द्वारा हृद्–ग्रन्थियों के टूट जाने पर अक्षर जब अव्यय में जाने लगता है तो सारे देवता अपने-अपने नामरूप को छोड़ कर एकत्र अपीत हो जाते हैं। वस, जहाँ ये एकत्र हो जाते हैं–उसी का तो नाम प्रजापति है।इसी अभिप्राय से भाष्यकार कहते हैं—

ब्रह्मा इन्द्रो विष्णु अग्नीषोमावित पञ्चाक्षरं यत् समेति–यत्र (अव्यये) सम चेति। अथ देवाश्च सर्वे अन्योन्य संयुक्ताः सन्तो वहन्ति। यत्र पुनः सत्यस्यमनु (अव्यये) युज्यते। तत्र गताः सर्वे देवाः नामरूपाभ्यां परित्यक्ता एकी भवन्तीति प्रजापतिमेवाह—

सारे देवता प्रजापति की उपासना करते हैं, प्रजापति के ही अनुगत रहते हैं। यह वात पूर्व श्रुति से सिद्ध हो जाती है।

प्रजापति ही सत्य है, जिसे कि हम अव्यय पुरुष कहेंगे। इसी प्रजापति से प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ ये तीन सत्य उत्पन्न होते हैं। जैसा कि सुना जाता है—

"यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते॥

(मुण्डक उप० १।१।६)

ऋग्–यजु–साम—ये जो तीन वेद हैं–इन्हें ही ब्रह्म कहते हैं। यह ब्रह्म ही संसार के यच्चयावत् पदार्थों की प्रतिष्ठा है। इस में–"**ब्रह्मं वास्य सर्वस्य प्रतिष्ठा**"–यह श्रुति ही प्रमाण है एवं नामरूप ही यच्चयावत् पदार्थों की ज्योति है। संसार के यच्चयावत् पदार्थ, नाम और रूप से ही प्रकाशित हो रहे हैं। नाम और रूप के अलावा एक तीसरा तत्त्व 'है'–अस्ति है–यह प्रतीति नाम-रूप के आधार पर ही अवलम्बित है। 'है'' इस सत्ता के साक्षी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नामरूप ही हैं। सूत्र से आकृष्यमान जो अन्न है, वही आत्म के यज्ञ का कारण है–अन्न से ही–आत्मयज्ञ की स्थिति रहती है अतएव अन्न को ही यज्ञ कहते हैं। केन्द्रीय प्रतिष्ठाघन का नाम–उक्थ है–इसी का नाम वेदसत्य है। इस उक्थ से निकलने वाली रश्मियाँ अर्क हैं। अर्क द्वारा खीचा हुआ अन्न–यज्ञ है। इस प्रकार प्रजापति-सत्य से तीन सत्य उत्पन्न होते हैं। देवता क्षरभाग का नाम है। इन का आलम्बन–वेद-मण्डल है। वह त्रिसत्य युक्त है अतएव–'त्रिसत्यादेवाः' यह कहा जाता है। प्रतिष्ठा, ज्योति, यज्ञ इन तीनों का विशद विवेचन पूर्व के प्रकरण में कर दिया है अतएव यहाँ उन का स्वरूप-मात्र वतला दिया है।

कहना इस सारे प्रपञ्च से हमें यही है कि वेद–नामरूप एवं यज्ञ यह तीन प्रकार का सत्यभाव सत्यस्वरूप उस प्रजापति से उत्पन्न हो कर उसी के आधार पर अवलम्बित रहता है। सूर्य्यसत्य से उत्पन्न होने वाले प्रतिबिम्बों की सत्ता–सूर्य्यसत्ता पर ही अवलम्बित है। यदि सूर्य्य नहीं तो प्रतिबिम्ब नहीं। मिट्टी से उत्पन्न होने वाले घड़े की सत्ता–मिट्टी पर अवलम्बित है। सोने से उत्पन्न होने वाले कटक-कुण्डलादि की सत्ता सोने पर अवलम्बित है। सूत्र से उत्पन्न होने वाले इन तीनों सत्यों की सत्ता प्रजापति पर ही अवलम्बित है—

"तदिदं त्रिविधं सत्यं सत्यादस्मात् प्रजापते सत्यघनमेवावलम्बते।"

प्रजापति में–उक्थ, अर्क, अशिति ये तीन भाव रहते हैं। आनन्द का नाम-उक्थ है। ज्ञान का नाम अर्क है एवं नामरूपात्मक सत्ता का नाम-अशिति है। इस प्रजापति के उक्थ से निकलने वाली जो अनन्त किरणें हैं–उन से अनन्त उक्थ उत्पन्न हो जाते हैं। प्रजापति की किरणें उक्थ रूप में परिणत हो– संसार के यच्चयावत् पदार्थों में अपनी स्थिति कायम रखती हैं। संसार में जितने भी पदार्थ दिखलाई पड़ रहे हैं–ये सब के सब प्रजापति की किरणें हैं। प्रजापति की किरणें–इन पदार्थों की उक्थ बनी हुई हैं। उदाहरणार्थ सूर्य्य पर दृष्टि डालिए। सूर्य्य उक्थ-रूप है। इस में से अनन्त किरणें निकलती हैं। सूर्य्य की ये किरणें ही–पानी पर प्रतिबिम्बित हो–उक्थ बन जाती हैं। उक्थ उस तत्त्व का नाम है–जिस में से कि किरणें निकलती हों। पानी पर सूर्य्य-रश्मि पड़ते ही वह सूर्य्यस्वरूप में परिणत हो जाती है एवं उस पानी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

में रहने वाले सूर्य्य से—फिर चारों ओर किरणें निकलने लगती हैं अतएव इन सूर्य्य-किरणों को हम प्रतिबिम्ब की उक्थ कहने के लिए तय्यार हैं। हम उसी प्रजापति की किरणें हैं—हम से फिर ज्ञान-किरणें निकलने लगती हैं एवं हमारी किरणों से भी पुत्रस्वरूप एक नया उक्थ पैदा हो जाता है। कहाँ तक कि—इसी परम्परा—क्रम में पड़ कर अनन्त प्रजापति उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे महादशा के अन्तर्गत अन्तरदशा होती है। अन्तरदशा के अनन्तर प्रत्यन्तरदशा होती है, प्रत्यन्तर दशा के अनन्तर—सूक्ष्मान्तर दशा होती है। तद्वत् प्रजापति के उदर में प्रजापति—फिर उस के उदर में प्रजापति—इस प्रकार अनन्त प्रजापति हो जाते हैं। उस परमप्रजापति की किरणें उक्थ रूप से सर्वत्र विभूत रहती हैं। उन से कोई भी स्थान खाली नहीं है—

"उक्थ रूपेणैकस्यैव सत्यस्य तस्य प्रजापतेरर्का—बहुधा भिन्नाः प्रत्यर्थं विभवन्तीति।" इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।"

(ईश० उप० १।१)

इस प्रकार इस एक परम प्रजापति से-संसार में अवतीर्ण अनन्त प्रजापति दिखलाई पड़ते हैं। एक ही प्रजापति अर्क द्वारा—उक्थ रूप में परिणत हो—सूर्य्य प्रतिबिम्बवत् अनन्तानन्त स्वरूपों में परिणत हो गया है, अतएव—

"यद्वै किञ्च प्राणि स प्रजापतिः" (शत० ब्रा० ११।१।६।१७) यह कहा जाता है। इस प्रत्येक प्रजापति को पृथक्-पृथक् रूपेण—ब्रह्म-नामरूप एवं सूत्र ये तीनों सत्य घेर लेते हैं। प्रत्येक प्रजापति के नाम—रूप—कर्म्म—प्रातिस्विक रूपेण भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। पानी का प्रजापति—पानी को सदा नीचे ही ले जाता है। अग्नि का प्रजापति अग्नि को सदा ऊपर ही ले जाता है। वायु का प्रजापति वायु को सदा तिर्य्यक् ही ले जाता है। प्रत्येक के नाम-रूप—कर्म्म भिन्न हो जाते हैं—

"तत्रैकस्मादस्मात् परमप्रजापतेरवतीर्णा अनन्ता लोके प्रजापतये दृश्यते। "यद्वैकिञ्च प्राणि स प्रजापतिः" इति श्रुतेः। एकैकं च अनन्तं प्रजापतिं पृथक्त्वेनैतानि ब्रह्म नामरूपं— सूत्रं चेति त्रीणि सत्यानि संसज्जन्ते।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यह तो हुई – सृष्टि-क्रम की चर्चा। संचर-क्रम में–एक ही प्रजापति – नाना भाव में परिणत हो जाता है परन्तु प्रतिसंचर-क्रम में – सारे के सारे नानाभाव उस परम-प्रजापति में ही विलीन हो जाते हैं। सृष्टि होती रहती है–होती रहती है। विकास का व्यापार होता रहता है–होते–होते–जब विकास पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है तो वह विकास संकोच में परिणत हो जाता है। सृष्टि न हो कर संहार होने लगता है। बस, अन्ततोगत्वा–उन सारे पदार्थों का प्रतिसंचर होता है। ग्रन्थि-बन्धन टूटता है एवं ये सारे भाव, उस सत्य के सत्य में–परम प्रजापति में जा कर विलीन हो जाते हैं। प्रजापति से ही उत्पन्न होने वाले सारे देवता एवं सारे भूत–अन्त में उसी में–अपने कारण में ही–प्रविष्ट हो जाते हैं। एक मिट्टी के झाल, माँगा तपक्या–सरावा[1] इत्यादि अनन्त पदार्थ हुए थे। अन्त में फूटने के बाद सब का नाम-रूपभेद नष्ट हो जाता है। सब अपने कारण में–मिट्टी में–जा मिलते हैं। समुद्र के बाहर, जब-तक नदियाँ बहती रहती हैं तब-तक ही–गङ्गा-यमुना-सरस्वती-गोदावरी-कावेरी-चन्द्रभागा, शतद्रु, विपासा–इत्यादि भेद रहता हैं। जहाँ वें समुद्र में जाकर मिलीं कि उन का भेद-भाव मिटा। बस, समुद्र में प्रविष्ट नदियों की तरह–सारे देवता एवं सारे भूत स्व-रूप नामरूप को छोड़ कर उस प्रजापति में अपीत हो जाते हैं, एकत्व को प्राप्त हो जाते हैं। एवं अवतारभूत-स्वयम्भू-परमेष्ठि-पृथिवी-सूर्य्य-चन्द्रमा इन पाँचों यज्ञक्षरों के (जिनका कि स्वरूप इस प्रकरण के प्रारंभ में बतला आए हैं) स्वरूप को उत्पन्न करने वाले–उन में रहने वाले–पाँचक्षर-पाँच अक्षर एवं पाँच अव्यय–अन्ततोगत्वा परस्पर युक्त हो कर-उस परम प्रजापति में जा मिलते हैं।

परम-प्रजापति अव्ययाक्षरक्षराविष्ट ही कहलाता है। उसमें अव्यय-अक्षर-क्षर तीनों परस्पर युक्त ही रहते हैं। जब ग्रन्थि-बन्धन टूटता है तो जीवस्थ-अव्ययाक्षर-क्षर युक्त हो उस परात्पर में जा मिलते हैं। अव्यय, अव्यय में जा मिलता है–देवता, देवता में जा मिलते है। उनका अपना प्रातिस्विक भेद-भाव सर्वथा नष्ट हो जाता है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

१, मिट्टी से बने विभिन्न आकारों के जलपात्रों के राजस्थानी भाषा में नाम—(सं.)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"गताः कलाः पञ्चदशप्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु । कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ।"

(मुण्डक उप० ३।२।७)

परम-प्रजापति के अव्यय-अक्षर-क्षर तीनों की प्रतिष्ठा पृथक्-पृथक् है। जिस समय क्षुद्र-प्रजापति प्रतिसंचरक्रियया—उस में लीन होता है तो उस की अपनी तीनों की प्रतिष्ठा जाती रहती है। अपितु यह उन तीनों में जा मिलता है। सारे देवता अर्थात् विकार क्षर भाग-अपने आप परम प्रजापतिस्थ अपने-अपने देवताओं में जा मिलते हैं। हमारे शरीर में— ज्ञान और कर्म्म ये दो ही भाग हैं। आत्मा अर्थात् ज्ञान कर्म्ममय ही है। आनन्द विज्ञान-मन का नाम ज्ञान है— इसी का नाम विद्या है, इसे ही ब्रह्म कहते हैं। मन-प्राण-वाक् का नाम कर्म्म है, यही अविद्या कहलाती है। बस, कर्म्म और विज्ञानमय-आत्मा भी अपनेपन (निजत्व) को छोड़ कर उसमें जा मिलता है। जीवाव्यय पर-अव्यय में जा मिलता है। इस प्रकार पर-अव्यय में जा कर सब एकत्व भाव को प्राप्त हो जाते हैं। अपि च—

"यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान् (मुमुक्षरात्मा) नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥"

(मुण्डक उप० ३।२।८)

अव्यय को पुरुष कहा जाता है। परात्पर तथा विद्वान् पुरुष नहीं कहला सकता। फिर श्रुति ने —परात्परं पुरुषमुपैति कैसे कहा, क्योंकि पुरुष तो अव्यय ही कहलाता है। इस प्रश्न का समाधान यही है कि—

क्षर को अपर कहते हैं—अक्षर को परात्पर कहते हैं एवं अव्यय को पर कहते हैं। जीवात्मा का जो अव्यय है— वह पर कहलाता है। परम प्रजापति का अव्यय-जीवाव्यय की अपेक्षा पर है—वह पर से, जीवाव्यय से, पर है—अर्थात् उत्कृष्ट है इसलिए-उसे परात्पर कह दिया गया है।

इस प्रकार हमने सत्य का भी सत्यस्वरूप जो प्राजापत्यरूप है— वह बतला दिया। वही सत्यतत्त्व-विश्वातीत कृष्ण है। उसे खोजना चाहिए। उसी की विजिज्ञासा करनी चाहिए। उसी का ध्यान करना चाहिए। उसी की उपासना करनी चाहिए।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आनन्द, ज्ञान, सत्ताघन जो परम प्रजापति है–उसी का दूसरा नाम अन्तर्य्यामी सत्य है। वह एक ही विश्वव्यापक नियन्ता प्रतिपदार्थ में नियति रूप से बैठकर शक्तिभेदेन उस-उस पदार्थ का नियन्त्रण करता रहता है। 'अन्तस्तिष्ठन् यमयति तस्मादन्तर्य्यामी' में अन्तर्य्यामी शब्द का यही अर्थ है। यह अन्तर्य्यामी सत्य जिसे कि हम प्रजापति कहेंगे–वास्तव में व्यापक है परन्तु रश्मिरूपेण एक ही प्रजापति-संसार के यच्चयावत् पदार्थों में प्रवर्ग्यभाव से उन-उन पदार्थों की प्रातिस्विक वस्तु बन कर उन-उन का नियन्त्रण किया करता है। सूर्य्य एक है। उस में से चारों ओर अनंत किरणें निकलती हैं। एक किरण जौ के खेत पर पड़ती है तो एक गेहूँ के खेत पर पड़ती है, एक मूँग के खेत पर पड़ती है। एक शिलाजतु पर पड़ती है, एक पानी के घट पर पड़ती है। बस, अलग जा कर वे किरणें–उन्हीं-उन्हीं पदार्थों के स्वरूप की रक्षा में प्रवृत्त हो जाती हैं। सारी किरणों का काम भिन्न-भिन्न हो जाता है। जौ के खेत पर पड़ी हुई सूर्य्यरश्मियाँ उसका परिपाक करेंगी। उनसे जौ के स्वरूप की रक्षा होगी, गेहूँ के खेत पर पड़ी हुई रश्मियाँ–गेहूँ के स्वरूप की रक्षा करेंगी। कहने का तात्पर्य्य यही है कि एक ही सूर्य्य रश्मिरूप से यच्चयावत् पदार्थों में घुस कर-उन-उन पदार्थों की प्रातिस्विक वस्तु बन जाता है। बस, ठीक इसी प्रकार एक ही प्रजापति–एक ही चित्शक्ति–रश्मिरूप से संसार के यच्चयावत् जड़-चेतन पदार्थों में अन्तःप्रविष्ट हो–उन्हीं की वस्तु बन जाती है। दो हजार घड़े रखे हुए हैं–सब पर उसी व्यापक सूर्य्य का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है–परन्तु सब के प्रतिबिम्ब भिन्न-भिन्न हैं। प्रतिबिम्बों की रक्षा करने वाली प्रतिबिम्ब-स्वरूप सम्पादन करने वाली रश्मियाँ प्रति-प्रतिबिम्ब भिन्न हैं। मकान में रखे हुए घड़े में प्रतिबिम्बित होने वाली रश्मि–इस घड़े की प्रतिबिम्ब वस्तु है। इस रश्मि का बाहर रखे हुए घटस्थ प्रतिबिम्ब से कोई सम्बन्ध नहीं है। उस प्रतिबिम्ब का नाश हो जाएगा परन्तु उससे अन्य नौ सौ निन्नानवे प्रतिबिम्बों का नाश थोड़े ही होगा, हो कैसे ? जबकि रश्मियाँ उस-उस की प्रातिस्विक वस्तु बन गई हैं। बस, ठीक उसी प्रकार वह एक ही प्रजापतिसत्य रश्मि-रूप से–यच्चयावत् पदार्थों में अन्तः प्रविष्ट हो–उन्हीं की वस्तु बन, शक्ति-भेद से उन-उन का नियन्त्रण किया करता है। शक्ति-भेद से नियन्त्रण करता है, इस का तात्पर्य्य यही है कि संसार के सारे पदार्थ अपनी-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अपनी अलग-अलग शक्ति रखते हैं। पानी की शक्ति है—सदा नीचे की ओर जाना, जलन को शांत करना, प्यास को बुझाना। कर्म्म का ही नाम शक्ति है। कर्म्म को ही बल कहते हैं। बल का नाम ही शक्ति है। प्रत्येक बल शक्ति शब्द से व्यवहृत होता है। बल-समुच्चय सत्ता से शब्द व्यवहृत होता है। प्रत्येक पदार्थ अनन्तशक्तिबंध है। अग्नि को लीजिए—अग्नि, पानी दोनों विरुद्धधर्म्मा हैं। पानी, नीचे जाता है तो अग्नि सदा ऊपर जाती है। पानी जलन को बुझाता है—शान्त करता है—अग्नि जलन पैदा करती है। पानी शांतधर्म्मा है—अग्नि तापधर्म्मा है। अग्नि विकासस्वरूप है, विशकलन-धर्म्मा है—पानी संकोचधर्म्मा है। धर्म्म का नाम ही तो शक्ति है। वायु पर दृष्टि डालिए—वायु न ऊपर जाता है— न ही नीचे जाता है। वायु सदा तिरछा ही जाता है। अग्नि जलाता है तो वायु उड़ाता है। अग्नि (गर्मी) स्वेद उत्पन्न करती है तो वायु स्वेद का विनाश करता जाता है। उसी प्रकार अन्न और विष पर दृष्टि डालिए—अन्न जीवन-सत्ता को रखता है—विष जीवन-सत्ता को नष्ट कर देता है। अन्न की दृष्टि प्रथक् है। सामर्थ्य का नाम ही शक्ति है। यह शक्ति-यह सामर्थ्य-प्रत्येक पदार्थ में भिन्न-भिन्न है। उन सबके केन्द्र में बैठा हुआ वह अन्तर्य्यामी प्रजापति उन-उन शक्तियों के अनुसार ही उन-उन पदार्थों का संचालन करता है। अग्नि की शक्ति ऊपर जाने की है तो अग्नि का अन्तर्य्यामी- उसे ऊपर जाने में ही मदद देगा। अग्नि ऊपर जाए यही उसका प्रजापति चाहेगा। अग्नि का धर्म्म है, पदार्थको जलाना तो अग्नि का प्रजापति पदार्थ को जलाने में ही मदद करेगा। विष का प्रजापति विष के स्वरूप की ही रक्षा करेगा। यहाँ तक कि स्व-स्वरूप रक्षार्थ एक प्रजापति दूसरे प्रजापति को मार बैठेगा। विष का प्रजापति-अन्न के प्रजापति को मार डालेगा। पानी का प्रजापति, पानी की शक्ति की रक्षा करते हुए अग्नि के प्रजापति को मार देगा, अर्थात् अग्नि को बुझा देगा। निदर्शन मात्र है—संसार के यच्चयावत् पदार्थों में यही भाव समझना चाहिए।

एक राजा के राज्य में रहने वाली प्रजा भिन्न-भिन्न धर्म्मों में बंटी हुई है। ईसाई, फारसी, यहूदी, मुसलमान, मुसलमानों में भी सियासुन्नी, जैन, बौद्ध, आर्य्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, दादूपंथी, कबीरपंथी इत्यादि—अनेक धर्म्मानुयायी जन-समुदाय, प्रजावर्ग, राजा के राज्य में रहता है। राजा एक है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शासन करने वाला एक है परन्तु उसे भिन्न-भिन्न धर्म्मों का खयाल रख कर शासन करना पड़ता है। सारे धर्म्मों की स्वरूप-रक्षा उसे करनी पड़ती है। उस की दृष्टि में पक्षपात नहीं है। शक्तिभेद से, धर्म्मभेद से, उसे उन-उन की रक्षा का भार लेना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार वह एक ही सर्व-व्यापक परम प्रजापति—अन्तर्य्यामी—शक्तिभेदेन प्रत्यर्थं नियतिरूपेण बैठ कर शक्तिभेद से उन-उन पदार्थों का नियन्त्रण करता रहता है। इसी अभिप्राय से वेद भगवान् कहते हैं—

"प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानिविश्वा॥"
(यजुः० उ० ३१।१,६)

इसी मूल पर भगवान् भी कहते हैं—

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥" (गीता १८।६१)

यह प्रजापति संसार के यच्चायावत् पदार्थों के केंद्र में बैठकर उनका नियन्त्रण करता है। अतएव वह नियन्ता" नाम से व्यवहृत होता है। सम्पूर्ण कथन का तात्पर्य्य यह है कि उस परम-प्रजापति का नाम अन्तर्य्यामीसत्य है। वह एक ही विश्व-व्यापक नियन्ता प्रति पदार्थ में नियति रूप से प्रतिष्ठित बन कर उन-उन पदार्थों की शक्ति के अनुसार उनका नियन्त्रण किया करता है—

"अथैष एव परम प्रजापतिरन्तर्य्यामी सत्यनाम। स एक एवायं विश्वव्यापको नियन्ता प्रत्यर्थं नियतिरूपेण तिष्ठन् शक्तिभेदेन तं तमर्थं नियन्त्रयति।" इति।

नियति नाम है—नेचर का। प्रकृति को ही नियति कहते हैं। ईश्वर जिस शक्ति द्वारा संसार के यच्चयावत् पदार्थों का नियमन करता है—पदार्थों के स्वरूप का जिस शक्ति द्वारा संचर-प्रतिसंचर किया करता है—अर्थात् उत्पत्ति एवं विनाश किया करता है—उसी शक्ति का नाम 'नियति' है। इसी को प्रकृति कहते हैं। यह प्रकृति-यह नियति-परा और अपरा भेदेन दो प्रकार की है। अव्यय प्रजापति की—अन्तर्य्यामी प्रजापित की—परा-प्रकृति का नाम अक्षर

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है—अपरा प्रकृति का नाम क्षर है। अक्षर और क्षर प्रकृति से-नियति से-पुरुष प्रजापति—अन्तर्य्यामी प्रजापति—संसार के यच्चयावत् पदार्थों का नियमन किया करता है। अन्तरर्य्यामी नियन्ता है, नियमन करने वाली उस की शक्ति नियति हैं। सर्वजगन्नियन्ता वह प्रजापतिसत्य ही संसार के प्रत्येक पदार्थ में—नियतिस्वरूप बैठा रहता है।नियति प्रजापति से अभिन्न है। प्रजापति की शक्ति प्रजापतिस्वरूप ही है। प्रजापति सत्यस्वरूप है, इसकी शक्ति का नाम नियति है। शक्ति, शक्तिवान् से अभिन्न है अतएव इस नियम को 'सत्य' कहा जाता है। नियन्ता की जो कृति है—उसी का नाम नियति है। चूंकि नियन्ता सत्य है—ऐसी अवस्था में-नियति—नियन्ता की कृति—नियन्ता का व्यापार-क्यों कर मिथ्या हो सकता है ? वह तो सत्य-संकल्प है, सत्य-काम है—

"सर्वनियन्ता सत्यएवायं प्रत्यर्थं नियतिर्भवतीति नियतिः सत्यम्" ।

हमने बतलाया है कि प्रतिपदार्थ में नियति अपना भिन्न-भिन्न स्वरूप धारण करती है। वह अन्तर्य्यामी ही—सारे पदार्थों में अन्तःप्रविष्ट हो शक्ति-भेद से—सब का नियमन कर रहा है। इस नियमन-व्यापार का नाम ही नियति है। नियति प्रत्यर्थ भिन्न है। प्रतिपदार्थ में भिन्न-भिन्न स्वरूप को धारण करने वाली यच्चयावत् पदार्थों की जो नियति है, वह सारी की सारी-उस जगन्नियन्ता प्रजापति चिदात्मा भगवान् में अनुप्रोत रहती है। सूर्य्य से निकलने वाली सूर्य्यरश्मियाँ जैसे सूर्य्य से बद्ध रहती हैं, सूर्य्य से उत्पन्न होने वाले—प्रतिविम्ब सूर्य्यानुगत रहते हैं—ठीक इसी प्रकार—प्रजापति से उत्पन्न होने वाली रश्मिस्वरूप ये नियतियाँ उस प्रजापति में बद्ध रहती हैं। नियति सदा चित् से, अर्थात् चिदात्मा अन्तर्य्यामी प्रजापति से, युक्त रहती है। यदि रश्मियाँ सूर्य्य से अलग हों तो नियति भी चित् से—अपने-श्रय से अलग हो। मिट्टी से पैदा होने वाला घड़ा यदि मिट्टी से अलग हो जाए, सुवर्ण से पैदा होने वाले कटक-कुण्डलादि सुवर्ण से अलग हो जाएँ एवं सूत्र से उत्पन्न होने वाला वस्त्र सूत से यदि पृथक् हो जाए तो शायद नियति अपने प्रभव चिदात्मा से अलग हो जाए। कहने का तात्पर्य्य यही है कि चित् से उत्पन्न होने वाली, संसार के यच्चयावत् पदार्थों में रहने वाली नियतियाँ, उस अपने चिदात्मा-प्रभव में बद्ध रहती हैं, बिना चित् के एक सैकण्ड भी यह नियति

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नहीं रहती अतएव नियति को "चिदनुगृहीता नियतिः सत्यं" इस नाम से व्यक्त किया जाता है—भिन्न भिन्नानां तासां सर्वासां नियतीनां जगन्नियन्तारेतस्मिन्ननु प्रोतत्वादाह—"चिदनुगृहीता नियतिः सत्यम्।"

"त्रिः सत्या हि देवाः" (तैत्तिरीय ब्रा० ३।२।३।८) यह कहा जाता है। अन्तर्य्यामी, वेद और सूत्र ये ही तीन सत्य हैं। पूर्व प्रकरण में—"वेदासत्यम्, नामरूपेसत्यम् एवं सूत्र सत्यम्" यह कहा गया है। इससे संदेह में नहीं पड़ जाना चाहिए। नामरूपेसत्यम् का वेदा:सत्यम् में अन्तर्भाव है। नाम-वाक्-प्राण समष्टि का नाम वेदाः सत्यम् है। इसी के आधार पर नाम-रूप रहते हैं अतएव नामरूपेसत्यम्-वेदसत्य के ही आश्रित है। एवमेव चिदनुगृहीता नियति:सत्य भी इसी वेदा:सत्यम् के आश्रित है—जैसा कि हम आगे बतलाने वाले हैं। कहने का तात्पर्य्य यही है कि अन्तर्य्यामी, वेद एवं सूत्र, तीन ही सत्य हैं। नामरूपसत्य एवं नियतिः सत्य-वेदसत्य के अन्तर्गत हैं—अतः "त्रिसत्या वै देवाः" इस में कोई विरोध नहीं आता है।

अन्तर्य्यामीसत्य को ही—अद्वैतसत्य कहा जाता है। वह अन्तर्य्यामी-जो कि सर्वत्र व्यापक हो रहा है— अद्वैतसत्य नाम से व्यवहृत होने लगता है। इस अद्वैत सत्यान्तर्य्यामी की जो अनन्त रश्मियाँ हैं—उन्हीं का नाम सूत्रसत्य है। जैसे—सूर्य्य से निकलने वाली रश्मियाँ सूर्य्य से अभिन्न हैं तद्वत् प्रजापति से—अन्तर्य्यामी घन से—चारों ओर वितत होने वाली रश्मियाँ उस अन्तर्य्यामी से अभिन्न हैं। अन्तर्य्यामी चूंकि सत्य है अतएव उस से अभिन्न इन रश्मियों को—सूत्रों को—सत्य कहा जाता है एवं "सूत्रं सत्यम्" यह व्यवहार होता है। ये रश्मियाँ ही—प्रतिप्रदार्थ में जा कर उस की अपनी चीज बन जाती हैं। वह एक ही सत्ता नाना सत्ताओं में परिणत हो जाती है। सूर्य्य एक है, उस की रश्मियाँ अनन्त हैं। जितने पानी के पात्र रखे रहते हैं—उन सब में वे किरणें एक नए सूर्य्य में परिणत हो जाती हैं। इस नये सूर्य्य को ही प्रतिबिम्ब कहतें हैं। प्रतिबिम्ब अनन्त हो जाते हैं। एक ही अद्वैत-सत्य, व्यापक अन्तर्य्यामी रश्मिरूपेण सूर्य्य, प्रतिविम्बवत् अनन्त अन्तर्य्यामीस्वरूपों में परिणत हो जाता है। एक ही सत्ता—नाना सत्ताओं में परिणत हो जाती है। बस, इन भिद्यमान सत्ताओं में मूल सूर्य्य की ही प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा का नाम ही वेद है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रतिविम्बवत् प्रतिष्ठा अनन्त है एवं प्रतिष्ठा को ही वेद कहते हैं अतएव "अनन्ता वै वेदाः" (तै०ब्रा० ३।१०।११।३) यह कहा जाता है। यह प्रतिष्ठा अर्थात् वेद उसी की वस्तु है अतएव उस से अभिन्न है। सूर्य्य के प्रतिविम्ब, जैसे सूर्य्य से अभिन्न हैं, तद्वत् अन्तर्य्यामी अद्वैतसत्य की, ये अनन्त प्रतिष्ठाएँ उससे अभिन्न हैं। अतएव सूत्रवत् हम इस प्रतिष्ठा को भी, वेद को भी, सत्य कहने के लिए तय्यार हैं। इसीलिए–"वेदा सत्यम्" यह कहा जाताहै। संसार के जितने भी पदार्थ हैं प्रत्येक वेद-त्रयी की समष्टि है। इन का और उस अद्वैतसत्य का सम्वन्ध कराने वाली जो अन्तर्य्यामी रश्मियाँ हैं वे ही सूत्र-सत्य हैं। नाम-रूप-कर्म्म–ये ही सत्ता-व्यवहार के साक्षी हैं। 'है' इस प्रतिष्ठा के अर्थात् विद्यमान सत्ता के–नाम-रूप-कर्म्म ही स्वरूप हैं। घड़ा है–कपड़ा है–कूआ है–वावड़ी है–इस में सिवाय नाम-रूप-कर्म्म के और है ही क्या? चूंकि नाम-रूप-कर्म्म ही घड़ा है–कपड़ा है–इस विद्यमान सत्ता के–प्रतिष्ठा के–साक्षी हैं अतएव वे प्रतिष्ठा से अर्थात् वेद से अभिन्न हैं। वेद चूंकि सत्य है अतएव हम नाम-रूप को भी सत्य कहने के लिए तय्यार हैं। इसीलिए "नामरूपे-सत्यम्" यह कहा जाता है।

उस नियन्ता की जो कृति है–व्यापार है–उसे ही नियति कहते हैं। वह नियति अर्थात् व्यापार, इच्छा-तप-श्रम-स्वरूप है जिस का कि अर्थ हम आगे करने वाले हैं। इच्छा, तप, श्रम–ये क्रमशः मन–प्राण–वाक् के धर्म्म हैं। मन-प्राण–वाक् का नाम ही प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा को ही वेद कहते हैं। बस, मन-प्राण–वाक् से अभिन्न जो–इच्छा-तप-श्रमरूप नियति है, वह वेद से क्यों कर पृथक् हो सकती है? वेद चूंकि सत्य है–इसीलिए "नियतिः सत्यम्" यह कहा जाता है। कहने का तात्पर्य्य यही है कि नाम-रूप-सत्य और नियतिः सत्य दोनों–वेदसत्य के अन्तर्गत आ जाते हैं अतएव "त्रिसत्या वै देवा" इस में कोई विरोध नहीं आता है।

यह नियति सत्य–उस चिदात्मा अन्तर्य्यामी प्रजापति से बद्ध है, अतएव नियतिसत्य को "चिदनुगृहीता नियतिः सत्यम्" कहा जाता है।

चिदनुगृहीता नियतिः सत्यम् में जो चित् शब्द है उस से ज्ञानमूर्ति सत्ता-ज्ञान-चेतनात्मक जो अव्यय प्रजापति है–वही अभिप्रेत है। चित् नाम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है—ज्ञान का। चित् से अनुगृहीत है—इस का तात्पर्य्य यही है कि वह नियति अर्थात् प्रकृति ज्ञानपूर्वक सारा काम करती है। प्रकृति, कर्म्म है—पुरुष, ज्ञान है। प्रकृति, बिना पुरुष के अर्थात् ज्ञान के, एक क्षण भी नहीं रह सकती। अर्थात् प्रकृति का सारा काम बिल्कुल नपा हुआ होता है।

प्रकृति का सारा काम शिल्पविधया होता है। सारा काम प्रेक्षापूर्वकारी है। जैसे कारीगर सोच-समझ कर शिल्प-निर्म्माण करता है, मूर्ति वगैरः बनाता है; इसी प्रकार नियति का सारा काम—कारीगरीमय है। हिरण के सींगों पर दृष्टि डालिए। जितने चक्र—बाएँ सींग में हैं—उतने ही दाएँ में हैं। एक डोरा ले कर सींगो के मध्यभाग से नापना शुरू क़ीजिए नापते हुए ऊपर की ओर बढ़ते जाइए। दोनों के बीच का अन्तर समान मिलेगा। एवमेव-दाहिना सींग-मस्तक भाग से जितने अन्तर पर है—उतने ही अन्तर पर बायाँ सींग है। यह नपी हुई रचना तब-तक उत्पन्न नहीं मानी जा सकती जब-तक कि—इस में ज्ञान को स्वीकार नहीं कर लिया जाता। प्रकृति, जड़ है। उसे इस नाप-तोल का क्या अन्दाज़? इस से मानना पड़ता है कि प्रकृति के साथ ही कोई कारीगर ऐसा बैठा हुआ है, जो सारा काम, नाप से करवाता है। झाड़ियों में—दो काँटे एक साथ, एक स्थान से, निकलते हैं। उन में एक काटाँ नीचे की ओर मुड़ा रहता है—एक ऊपर की ओर सीधा रहता है। हम कहते हैं—काँटा तो जड़ है। उसे, इधर-उधर जाने का क्या ज्ञान? यदि यह अपनी गति में स्वतन्त्र होता तो—एक तरफ ही चला जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिए मानना पड़ता है कि नियति के साथ कोई ज्ञान-शक्ति अवश्य ही काम कर रही है। संसार के यच्चयावत् मनुष्यों पर दृष्टि डालिए। आँख—नाक—कान—मुहँ—दाँत पैर—हाथ—सीना—उपस्थ—मूलाधार—स्नायु—शिरा—धमनी—सारे के सारे शरीर के अवयव ऐसे नियत रहते हैं जिसे देख कर आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ता है। सारे प्रपञ्च से कहना हमें यह है कि संसार के यच्चयावत् पदार्थों का निर्म्माण शिल्पविधया देखा जाता है। सारे पदार्थों के निर्म्माण में कारीगरी पाई जाती है, अतएव मानना पड़ता है कि नियति अवश्य ही ज्ञानमूर्ति अन्तर्य्यामी चित् से अनुगृहीत है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"चिदिति ज्ञानमूर्तिरयं परमःप्रजापतिः। तदनुगृहीता ज्ञानमयी हीयं सर्वा नियतिः (प्रकृतिः)। शिल्पविधया प्रतिपाद्यमानत्वात्।" इति।

नियति ही सारा काम करती है। यह नियति चित् से—ज्ञानमूर्ति प्रजापति से—अनुगृहीत रहती है। इस नियति का वास्तविक स्वरूप पूछना चाहो तो—मनः-प्राण-वाक्-इच्छा-तप-श्रम—इन छहों का जो सामानाधिकरण्य है उसी का नाम नियति है। नियन्ता की—ब्रह्म प्रजापति की—कृति का नाम—व्यापार का नाम—ही नियति है। यह व्यापार मन—प्राण—वाक्—इच्छा—तप—श्रमस्वरूप है। इसीलिए हम इनकी समष्टि को नियति कहने के लिए तय्यार हैं। संसार के यच्चयावत् पदार्थों में इच्छा—तप—श्रम ही रहा है। इच्छा—तप—श्रम के अलावा और कुछ भी नहीं है। इसी का नाम प्रकृति है। प्रकृति ही सारी सृष्टि का निर्म्माण करती है। इच्छा—तप—श्रम से ही नई वस्तु उत्पन्न होती है। हमें जब घट बनाने की इच्छा होती है तो तदनुकूल प्राण—व्यापार करना पड़ता है। प्राण—व्यापार के अनन्तर श्रम करना पड़ता है अर्थात् हाथों से मिट्टी गोदनी पड़ती है। तब जा कर घट बनता है। प्रकृति ही जगत्-कर्त्री है एवं इच्छा—तप—श्रम से ही नई वस्तु उत्पन्न होती है। इच्छा-तप-श्रम, मन-प्राण-वाक् से अविनाभूत हैं अतएव हम छहों की समष्टि को प्रकृति अर्थात् नियति कहने के लिए तय्यार हैं। अव्ययब्रह्म की आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण-वाक्—ये पाँच कलाएँ हैं। पाँचों में से—आनन्द-विज्ञान-मन त्रितय तो मुक्तिसाक्षी है एवं मन-प्राण-वाक् त्रितय सृष्टिसाक्षी है। आनन्द—विज्ञान—मन ब्रह्म है; मन—प्राण—वाक् कर्म्म है। सृष्टि करने वाले बल को ही तो नियति कहते हैं। मन—प्राण—वाक् ही सृष्टि-बल है। मन से इच्छा उत्पन्न होती है—प्राण से तप उत्पन्न होता है—वाक् से श्रम उत्पन्न होता है। इस प्रकार मन-प्राण-वाक्-इच्छा-तप-श्रम ये ही छहों नियति का स्वरूप हैं। ये छहों जब एक स्थान पर आ जाते हैं तो इन की समष्टि का नाम—छहों के सामानाधिकरण्य का नाम—नियति हो जाता है।

"मनः—प्राण—वाचामिच्छति तप्यति श्राम्यतीनां सामानाधिकरण्यं नियतिः।"

आनन्द—विज्ञान—मन का नाम ब्रह्म है। मन—प्राण—वाक् का नाम कर्म्म है। इन में जो ब्रह्म वाला मन है—वह शुद्ध—ज्ञानस्वरूप है—विकासस्वरूप

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है—निर्विषयक है—ज्योतिस्वरूप है अतएव असंग है। इसी मन को "श्वोवसीयस" मन कहा जाता है एवं जो कर्म्म वाला मन है—वह इच्छा—मन है। इसी मन का नाम सर्वेन्द्रियमन भी है। पाँच कर्म्मेन्द्रियाँ हैं—पाँच ही ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। दसों इन्द्रियों का अधिष्ठाता यही मन है। यह मन, उस ब्रह्मस्वरूप शुद्ध ज्ञानमन से—अनुगृहीत रहता है अतएव इसे 'प्रज्ञान—मन' भी कह दिया जाता है। इसी प्रज्ञानमन में चिदनुगृहीत सौर—प्राण और आ मिलता है—जो सौर—प्राण विज्ञानात्मा कहलाता है। तब यह प्रज्ञानात्म कहलाता है। दसों इन्द्रियाँ इसी आत्मा के आधार पर अवलम्बित रहती हैं अतएव इस को सर्वेन्द्रिय मन भी कहा जाता है। देखना—स्वाद लेना—सुनना इत्यादि सारे काम मन द्वारा ही होते हैं। इसीलिए—

"कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव" (बृहद० उप० १।५।३) यह कहा जाता है। अपि च इसी अभिप्राय से—

"येन वा पश्यति येन वा शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादुचास्वादु च विजानाति यदेतद् हृदयं मनश्चैतत्—संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषाजूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति—सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति।"

(ऐ. आ. २।६।१)

कहा जाता है। इस विषय का विस्तृत विवेचन शतपथ के तृतीय—काण्ड में— दीक्षा—व्रत धर्म्म ब्राह्मण में देखना चाहिए। यहाँ सिर्फ इतना ही कहना है कि यह मन—प्रज्ञानमन कहलाता है, इसी मन को—अनिन्द्रियमन भी कहा जाता है। नियत विषयग्रहण ही इन्द्रियों का लक्षण है। यह मन दसों इन्द्रियों पर रहता है अतएव हम इस सर्वेन्द्रिय मन को अनिन्द्रिय मन भी कहने के लिए तय्यार हैं। इन्द्रिय मन वह है—जो कि सुख-दुःख का अनुभव करता है-जो मन षष्ठानीन्द्रियाणि कहलाता है। मन भी इन्द्रिय है—इस के लिए भी एक अन्य मन मानना पड़ता है जो कि सारी इन्द्रियों का काम करता है। यही प्रज्ञान मन है। बस, इस मन का जो कर्म्म है, उस में ही 'इच्छा' शब्द का व्यवहार होता है। इच्छा करना इसी प्रज्ञान मन का काम है—

"तत्र मनः कर्म्मणि तावदिच्छाशब्दः।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तीसरा नम्बर है—वाक् का। वाक् शब्द से वाक्-पृथिवी-जल-तेज-वायु ये पाँचों भूत ही अभिप्रेत हैं क्योंकि पाँचों भूत इस वाक् के ही विकार हैं। भूतों में पहला भूत यही वाक् है। इसी का नाम आकाश है। इसी वाक् पर ग्रन्थि लगने से वायु वन जाता है। कहने का तात्पर्य्य यही है कि सारे भूत वाक् के विकार हैं, वाक् से ही उत्पन्न होने वाले हैं, अतएव वाक् से सारे भूतों का ग्रहण कर लिया जाता है। सारा प्रपञ्च इसी वाक् से उत्पन्न हुआ है अतएव श्रुति कहती है—

"वाचा वै वेदाः संधीयन्ते वाचा छन्दांसि वाचा मित्राणि संदधति वाचा सर्वाणि भूतानि—अथो वागेवेदं सर्वम्।" (ऐ०आ० ३।१।६)

वाक् से ही भूत उत्पन्न होते हैं एवं चेष्टा अर्थात् श्रम—इन्हीं भूतों का काम है। हाथ-पैर से ही चेष्टा अर्थात् व्यापार होता है। हाथ-पैर सिवाय पञ्चभूत के और कुछ नहीं है। पञ्चभूत—समष्टि का नाम ही तो शरीर है एवं भूत को कहते हैं—वाक्। अतएव वाक्-कर्म्म में चेष्टा शब्द व्यवहृत होता है। जैसे मन का काम इच्छा है, वैसे वाक् का अर्थात् भूत का अर्थात् हाथ पैरों का काम चेष्टा है—

"अथ वाग्विकारत्वाद भूतानां वागिति भूतमाह। तथा च भौतिके कर्म्मणि चेष्टा शब्दः।"

मन और वाक् का स्वरूप वतला दिया गया। शेप बचा प्राण। प्राण का जो कर्म्म है— उस में वैदिक लोगों का 'तप' शब्द है, लौकिकों का 'प्रयत्न' शब्द है तथा दार्शनिकों का 'कृति' शब्द है। वैदिक लोग प्राणव्यापार को 'तप' कहते हैं। जिस समय हमें किसी काम के करने की इच्छा होती है तो तदनुकूल एक प्रकार का अन्तर्व्यापार होने लगता है, इसी का नाम प्राण-व्यापार है। भाषा में जिसे प्रयत्न कहते हैं—वही प्राण-व्यापार है। कोशिश का नाम ही प्राण-व्यापार है। प्रत्येक काम के लिए कोशिश करनी पड़ती है—प्राण को खर्च करना पड़ता है—तव हाथ-पैर हिलते हैं। प्राण-व्यापार का नाम ही 'तप' है। चूंकि उसमें प्राण खर्च होता है अतएव वेद में तप का—"एतद्वै तप इत्याहुर्यत् स्वं ददाति।" यह लक्षण किया जाता है। इसी प्राण-व्यापार को दार्शनिक लोग—'कृति' शब्द से व्यवहृत करते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"ज्ञानजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या कृतिर्भवेत् ।
कृतिजन्यं भवेत् कर्म्म तदेतत् कृतमुच्यते ।।"

अभियुक्त लोग प्राण-व्यापार को कृति से व्यवहृत करते हैं। 'ज्ञानजन्या भवेदिच्छा' में ज्ञान से चित् अभिप्रेत है, जिसे कि हमने ज्ञानस्वरूप श्वोवसीयस मन बतलाया था। ज्ञान से ही इच्छा अर्थात् प्राज्ञमन का व्यापार होता है। इच्छा से कृति अर्थात् प्राण-व्यापार होता है। कृति से कर्म्म अर्थात् वाग्-व्यापार होता है– जिसे कि चेष्टा भी कहते हैं। इच्छा-तप-श्रम-मन-प्राण वाक् के कर्म्म हैं, इसीलिए हम छहों के सामानाधिकरण्य को नियति अर्थात् प्रकृति कहने के लिए तय्यार हैं—

अथ प्राण कर्म्मणि तपः शब्दो वैदिकानां, प्रयत्न शब्दो लौकिकानां कृति शब्दो दार्शनिकानाम् ।

**"ज्ञानजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या कृतिर्भवेत् ।
कृतिजन्यं भवेत् कर्म्म तदेतत् कृतमुच्यते ।।"
इत्यभियुक्तैस्तथा व्यवहारात्**

ज्ञाता इच्छा करता हुआ अन्तर्व्यापार करता है । पहले भीतर ही भीतर कोशिश करता है एवं कोशिश करता हुआ फिर वाहर की ओर चेष्टा करता है अर्थात् कोशिश के अनन्तर हाथ-पैर हिलने लगते हैं। ज्ञाता इच्छा करता हुआ अन्तर्व्यापार करता है–इस का यही अर्थ है कि–ज्ञान की प्रेरणा से प्रज्ञामन का इच्छा-व्यापार होता है। इच्छादिसमष्टि–स्वरूप, बिना चित् के अनुग्रह के–बिना ज्ञाता की (आत्मा की) प्रेरणा के–अपना-स्वरूप ही कायम नहीं कर सकती है। इच्छा ज्ञानपूर्वक ही होती है। इच्छा के अनन्तर वह तदनुकूल कोशिश करने लगता है, वाद में तदनुकूल वहिर्धा चेष्टा करने लगता है अर्थात् बहिर्व्यापार करने लगता है, जिसे कि चेष्टा कहते हैं। इस प्रकार ज्ञाता द्वारा पहले इच्छा का उत्पन्न होना–इच्छानुकूल प्रयत्न होना प्रयत्नानुकूल चेष्टा होना ये चारों धर्म्म, जड़-चेतन सर्व-साधारण में लागू हैं। वास्तव में देखा जाए तो वैज्ञानिक दृष्टि से– जड़ कुछ है ही नहीं। सब चेतन हैं, क्योंकि सब में इच्छा-तप-श्रम मौजूद है। इच्छादि-धर्म्म आत्माधीन हैं। इसलिए– 'चिदात्मानिन्द्रियेष्वपि'–यह कहा जाता है। संसार के पदार्थों

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

को –इन्द्रिय-द्रव्य और अनिन्द्रिय द्रव्य–दो भागों में समझना चाहिए। जिन में इन्द्रियाँ हैं वे व्यवहार के लिए चेतन कह दिए जाते हैं जिन में इन्द्रियाँ नहीं हैं–वे अचेतन कह दिए जाते हैं, इसीलिए—

"सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम्" कहा जाता है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि आत्मा सब में है। इच्छा-तप-श्रम—ये सर्वसाधारण में होने वाले धर्म्म हैं। ज्ञाता का इच्छा करना–तदनुकूल प्रयत्न करना–तदनुकूल चेष्टा करना–यह नियम जड़-चेतन में सर्वत्र लागू है—

"ज्ञाता खल्विचछन्-अन्तरतः प्रयतते। प्रयतमानो बहिर्वा चेष्टते इति जड-चेतन सर्वसाधारणो नियमः"

बीज पर दृष्टि डालिए– अंकुर निकलने से पहले–अंकुर निकलने के अनुकूल वह बीज प्रयत्न करता है एवं उस प्रयत्न के पहले, मैं अंकुर उत्पन्न करूँ यह इच्छा करता है। प्रयत्न, बिना इच्छा के नहीं हो सकता। अतएव मानना पड़ता है कि बीज अंकुरोद्गमनानुकूल प्रयत्न के पहले अवश्य ही इच्छा करता है एवं चूँकि बीज ऊपर की ओर अंकुरित होता हुआ दिखलाई पड़ रहा है–चेष्टा-कर्म्म साफ दिख रहा है–इस से मानना पड़ता है कि चेष्टानुकूल प्रयत्न भी अवश्य ही करता है, क्योंकि बिना प्रयत्न के चेष्टा हो ही नहीं सकती। कहने का तात्पर्य्य यही है कि—इच्छा-तप-श्रम ये सर्वसाधारण में–जड़चेतन दोनों में–रहने वाले धर्म्म हैं—

"बीजमङ्कुरोद्गमात् पूर्वं तया प्रयतते। तया प्रयत्नाच्च पूर्वमिच्छति। नानिच्छन् प्रयतते। ना प्रयतमानः किञ्चिच्चेष्टते" इति।

सारे प्रपञ्च से बताना हमें यही है कि–इच्छा-तप-श्रम अर्थात् इच्छा-प्रयत्न-चेष्टा ये तीनों ही ज्ञान में (ज्ञाता में) अनुसंहत हैं। बिना ज्ञान के–चित् के–ये तीनों-तीनों क्या–मन-प्राण-वाक्-इच्छा-प्रयत्न-चेष्टा–ये छहों–रहते ही नहीं। इन छहों की समष्टि का नाम है–'नियति'। यह नियति रहती है उस सत्यज्ञान में। सत्याश्रयत्वात्–उस नियति को भी–सत्य ही कहते हैं। नियति को, प्रकृति को–हम इसलिए सत्यस्वरूप कहने के लिए तय्यार हैं कि वह सत्यज्ञानाविनाभूत ही रहती है। कर्म्म–प्रपञ्च, बिना ब्रह्म के नहीं रहता अतएव कर्म्म भी ब्रह्मवत् सत्य ही है–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तयाचासामिच्छा प्रयत्न चेष्टानामेकस्मिन् ज्ञानेऽनुसंहतानां नियति रूपत्वात्-सत्यत्वं भाव्यम् ।"

अपि च—इच्छा-तप-श्रमस्वरूप नियति को सत्य कहने का एक कारण और भी है। मन-प्राण-वाक्-इन तीनों का जो ऐक्यभाव है—वही सत्ताशब्द की प्रवृत्ति का अर्थात् व्यवहार का निमित्त है। मन-प्राण-वाक्-संघात का नाम ही—'अस्ति' है। इदमस्ति में मन-प्राण-वाक् तीनों मौजूद हैं। यदि अस्ति में से अर्थात् सत्ता में से—मन-प्राण-वाक् को निकाल दिया जाए तो 'अस्ति' कोई चीज ही न बचे। अस्ति में—मन का हिस्सा है इसलिए घड़ा जाना जाता है। ज्ञायते घटः—में ज्ञान का हिस्सा मन से सम्बन्ध रखने वाला है। मन, मन को पकड़ता है। मन, ज्ञान-स्वरूप है। यदि घड़े में ज्ञान अर्थात् मन न होता तो—वह घड़ा कभी भी ज्ञान का आश्रय न बनता। हमारा मन कभी घट पर न कूदता—परन्तु घड़ा ज्ञान का विषय बनता है। घड़ा ज्ञानाकाराकारित हो जाता है अतएव मानना पड़ता है कि—'अयं घटोऽस्ति' में मन मौजूद है एवं साथ ही प्राण भी अवश्य ही मानता पड़ता है। क्योंकि घड़ा कुर्वद् रूप है। इसी कुर्वद्रूपता के कारण ही तो यह कालान्तर में जा कर जीर्ण हो जाता है। तीसरी वस्तु है—वाक्। वाक् नाम है—भूत का। भूत स्थानावरोधि पदार्थ है, धामच्छद है। चूंकि घड़ा जगह रोकता है अतएव हम उसे वाक् भी अवश्य ही कह सकते हैं। इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि—'इदमस्ति'—में मन-प्राण-वाक् तीनों मौजूद हैं। मन-प्राण-वाक् का जो ऐक्यभाव है—एकत्र समुच्चय है—वही 'अस्ति' इस सत्ता का कारण है। सत्ता सत्यतत्त्व कहलाता है। 'है'—यह सत्यतत्त्व है क्योंकि इस 'है' का कभी भी विनाश नहीं होता। अस्ति-नास्ति—दोनों जगह अस्ति का राज्य है। चूंकि इच्छा-तप-श्रम, मन-प्राण-वाक् के ही कर्म्म हैं, इन्हीं का (इच्छादिक का) नाम—नियति है। मन-प्राण-वाक्-समष्टि का नाम ही सत्ता है—सत्ता नित्य है, अतएव हम नियति को सत्य कहने के लिए तय्यार हैं—

"मनःप्राणवाचामैकभाव्यस्य सत्ता शब्द प्रवृत्ति निमित्त तया सत्ताश्रयस्य च सत्यत्वाध्यवसायात्। (नियतेः सत्यत्वं भाव्यमिति शेषः)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण-वाक् अव्यय की पाँच कलाएँ हैं। पाँचों में से आनन्द तो आनन्द नाम से ही व्यवहृत होता है। विज्ञान 'चित्' कहलाता है। मन-प्राण-वाक्-समष्टि को सत् कहा जाता है। सत्-यही सत्ता का कर्म्म है। इच्छा-तप-श्रम इस सत् में अर्थात् मन-प्राण—वाक्स्वरूप सत्ता में रहते हैं अतएव—'सति भावे सत्यम्' इस व्युत्पत्ति से भी इच्छा-तप-श्रमरूपा नियति को सत्य कहा जाता है।

नियति का स्वरूप बतला दिया गया। यह नियति प्रतिपदार्थ में भिन्न-भिन्न होती है। प्रत्येक पदार्थ में—इच्छा-प्रयत्न—चेष्टाएँ भिन्न-भिन्न हैं। इसीलिए संसार के यच्चयावत् पदार्थ परस्पर सर्वथा विभिन्नस्वरूप हैं। इस नियतिभेद का एकमात्र कारण—इच्छा ही है। इच्छा-भेद से ही नियति भिन्न है। प्रत्येक पदार्थ में जो इच्छा-भेद है—वह ईश्वरेच्छया भेद-निबन्धन है। ईश्वर की यही इच्छा है कि—सारे पदार्थों की इच्छा भिन्न-भिन्न हो—ईश्वर भेद चाहता है अतएव इच्छा-भेद होता है। कदाचित् कहो कि ईश्वरेच्छा क्यों ऐसी विचित्रता चाहती है। क्यों ईश्वर की इच्छा विचित्र स्वरूप धारण करती है? तो इस प्रश्न का सिवाय 'नेति-नेति' के और कोई भी उत्तर नहीं है। जो अचिन्त्यभाव हैं—बुद्धि के बाहर हैं—उन में क्यों ऐसा हुआ इत्यादि कुत्सित—तर्कों को हर्गिज नहीं उठाना चाहिए —

"इच्छाभेदस्तु प्रत्यर्थं नियतिर्भिद्यते। प्रत्यर्थमिच्छाभेदः पुनरीश्वरेच्छा भेदनिबन्धनः। ईश्वरेच्छा वैचित्र्यं त्वचिन्त्योऽर्थः।

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयतेत् इत्याहुः

कई दार्शनिक नियतिस्वरूप का अनुवचन दूसरे प्रकार से करते हैं।

उनका कहना है कि—चित् प्रकाश के आश्रित प्रतिष्ठा—आदान-विसर्गात्मक कर्म्म त्रितय प्रवर्तिका जो एक इच्छा है—उसी का नाम नियति है। प्रतिष्ठा नाम है—सत्ताभेद का—आदान-विसर्ग कर्म्म का नाम यज्ञ है। अन्न लेना एवं उच्छिष्ट को छोड़ना—इसी का नाम यज्ञ है। आदान—विसर्गात्मक व्यापार प्रतिष्ठाकर्म्म का ही होता है। प्रतिष्ठा-तत्त्व का नाम ही ब्रह्मा है, जो कि हृद्य अक्षर कहलाता है। आदान करना—विष्णु अक्षर

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का काम है, विसर्ग करना—विक्षेपण करना—इन्द्र अक्षर का काम है। प्रतिष्ठा-आदान—विसर्ग तीनों ही कर्म्म हैं। ये तीनों काम—चित्प्रकाशाश्रित जिस इच्छा के द्वारा होते हैं—उस इच्छा का नाम ही—नियति है। इच्छा से ही प्रतिष्ठा होती है। अन्न की आहुति से ही ब्रह्म—प्रतिष्ठा होती है। अन्न लाने का काम विष्णु का है। यह भी उसी इच्छा के अधीन है अतएव हम कह सकते हैं कि प्रतिष्ठा—आदान—विसर्ग—इन तीनों कर्म्मों की प्रवर्त्तिका चित्-प्रकाशान्विता—इच्छा ही है। इच्छा ज्ञानजन्या है। विना ज्ञान के इच्छा हो ही नहीं सकती। यह इच्छा, जिस चित् के आश्रित रहती है, वह चित् चेतना, ज्ञान, प्रकाश इत्यादि नाम से व्यवहृत होता है—

"अथापर आह—चित् प्रकाशाश्रिता—(चिदनुगृहीता) प्रतिष्ठा-आदान—विसर्गात्मक कर्म्मत्रय—प्रवर्त्तिका काचिदिच्छा नियतिः। चिच्चेतनां ज्ञानप्रकाशः।"

संसार में जितने भी पदार्थ हैं—चाहे वे सेन्द्रिय हों चाहे निरिन्द्रिय हों—दोनों ही पुरुष शब्द से व्यवहृत होते हैं। पुरुष से अव्यय चिदात्मा—पुरुष अभिप्रेत है। संसार के यच्चयावत् जड़—चेतन सारे पदार्थ इस से अविनाभूत हैं, अतएव—**"पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्"** (श्वेता०उप० ३।१५) यह कहा जाता है। इन प्रति पुरुषों में भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियाँ हुआ करती हैं। अग्नि में—जलाने की शक्ति है, पानी में—शान्त करने की शक्ति है, वायु में उड़ाने की शक्ति है। तात्पर्य्य यही है कि सारे पदार्थों में जिन पदार्थों को पुरुष शब्द से भी कहा जाता है—अपनी-अपनी प्रातिस्विक भिन्न-भिन्न शक्तियाँ व्यवस्थित हैं। इस शक्ति—समुच्चय को ही कर्म्म कहते हैं जैसा कि प्रकरण के प्रारम्भ में बतला दिया गया है। ये कर्म्म अर्थात् शक्ति—समुच्चय ही—'द्रव्य' कहलाते हैं। शक्ति-समुच्चय का नाम ही—द्रव्य है, पदार्थ है। नाम और रूप इसी पदार्थ के अनुगत रहते हैं। यदि पदार्थ है, तो उस का कोई न कोई नाम भी अवश्य ही है एवं कोई न कोई रूप अर्थात् आकार भी अवश्य ही है। बस, प्रतिपुरुष-व्यवस्थित शक्ति नाम से व्यवहृत होने वाले, नाम-रूप को धारण करने वाले, उन—उन पदार्थों के जो प्रातिस्विक कर्म्म हैं—उन का जो समुच्चय है—उस समुच्चय की एकपुरुषानुगति का नाम ही नियति है। पूर्व में हमने

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नियति का जो लक्षण बतलाया—उसी का यह द्रविड़ प्राणायाम है। शक्ति—समूह कहो अथवा मन-प्राण-वाक्-इच्छा-तप-श्रमसमूह कहो। दोनों, एक ही बात है—

"प्रति-पुरुषं व्यवस्थितानां शक्तिव्यपदेश्यानां नामरूप सहकृतानां प्रातिस्विक कर्म्मणां समुच्चयस्यैक पुरुषानुगतिर्नियतिः"

पुरुष अर्थात् पदार्थ अनन्त हैं अतएव ज्ञानशक्ति—इच्छाशक्ति—क्रिया-शक्ति समुच्चयरूपा नियतियाँ भी अनन्त हो जाती हैं। चूंकि यह सब सत्य-ज्ञानाश्रिता हैं, अतएव हम इन सारी नियतियों को सत्य कहने के लिए तय्यार हैं—

"पुरुषभेदाच्चेताज्ञानशक्तीच्छाशक्ति समुच्चयरूपा नियतयः प्रभिद्यन्ते। तानि सत्यानि"।

परन्तु इतना अवश्य समझ लेना चाहिए कि सत्यरूपा प्रतिपुरुष भिन्ना इन अनन्तानन्त नियतियों की वहाँ-वहाँ उस-उस पदार्थ में—उस नियति को प्रेरित करने वाली कोई एक विश्वनियति अवश्य ही माननी पड़ती है जो कि सर्वाश्रयभूता है। जैसे—घट-पटादि की भिन्न सत्ताओं का एक 'है', सत्ता-आधार है, जैसे घट-पटादि विभिन्न ज्ञानों का एक महद्-ज्ञान—आधार है जैसे कविता-पुत्र-स्त्री आदि विषयानन्दों का एक आनन्द, जो कि व्यापक है—आलम्बन है, ठीक इसी प्रकार इन सारी नियतियों का आधार एक व्यापक विश्व-नियति है। वह नियति सर्व-ज्ञान-मय ही है एवं सर्व कर्म्म समुच्चय—स्वरूप है। प्रतिपुरुष में जो नियति है—उस में कर्म्म भी नियत है एवं ज्ञान भी नियत है। घट का ज्ञान घट में ही है—पट का पट में ही है, जो कि घट-कर्म्म पट से पृथक् है एवं पट-कर्म्म घट से पृथक् है परन्तु उस नियति में—सारे कर्म्म हैं एवं वह सर्वज्ञानमयी है। वह जो नियति है—वह इन अनन्त नियति—सत्यों का सत्य है, अर्थात्—उस नियति को सत्य का सत्य भी कह सकते हैं एवं सत्य भी कह सकते हैं अथवा नियति विशिष्ट जो सर्वजगन्नियन्ता अन्तर्य्यामी पुरुष है, उसे ही सत्य समझना चाहिए। नियति तो उस की कृति का नाम है। बस, सर्व जगन्नियन्ता—नियति—विशिष्ट सर्वान्तर्य्यामी जो सत्य है—वही कृष्ण है, उसी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

को ढूँढना चाहिए। उसी को पहचानने की कोशिश करनी चाहिए, उसी का ध्यान करना चाहिए, उसी की उपासना करनी चाहिए। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

किन्त्वेताक्षरं सत्यानां प्रतिपुरुष भिन्नानामनन्तानां नियतीनां तत्र-तत्र प्रवर्त्तिका काचिदेका विश्वनियतिः सर्वाश्रयभूता भवति। सा च सर्वज्ञानमयी सर्वधर्म्मसंहतिः। तदिदं सत्यस्य सत्यं—सत्यं वा। तद्विशिष्टो वा पुरुषो सर्व-जगन्नियन्तान्तर्य्यामी सत्यम्। स कृष्णः। सोऽन्वेष्टव्यः। स विजिज्ञासितव्यः। सोऽनुध्यातव्यः। स उपासितव्यः।

इस प्रकार पूर्व के सारे प्रपञ्च से यह सिद्ध हो जाता है कि सच्चिदानन्दघन अखिलविश्वप्रभव एवं सर्वजगन्नियन्ता जो एक अमूर्त्त-तत्त्व है—उसी का नाम 'सत्य' है एवं वही सत्य-कृष्ण नाम से पुकारा जाता है। हम जिस वस्तु को आँखों से देख लेते है एवं जो हमारे ज्ञान में आ जाती है—उस के लिए शुक्ल शब्द का प्रयोग होता है। ज्योति का नाम शुक्ल है—अन्धकार का नाम कृष्ण है। ज्योति कुल दो ही प्रकार की होती हैं—भूतज्योति और ज्ञान-ज्योति। भूतज्योति, सूर्य्य-चन्द्र-अग्नि-वाक् भेदेन चार प्रकार की है एवं ज्ञान-ज्योति—आत्मज्योति नाम से व्यवहृत होती है। इस प्रकार प्राणीशरीर में कुल पाँच ज्योतियाँ रहती हैं अतएव "पञ्चज्योतिरयं पुरुषः" यह कहा जाता है। पाँचों ज्योतियों में-यह सत्य तत्त्व किसी के भी द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता। हमारा जो ज्ञान है—वह परिच्छिन्न है, ससीम है। वह सत्य-तत्त्व असीम है अतएव अमूर्त्त है—विश्वातीत है। भला ऐसे विश्वातीत अन्तर्य्यामी सत्यघन का हम क्षुद्र मनुष्य क्यों कर प्रत्यक्ष कर सकते हैं? न उसका प्रत्यक्ष भूतज्योति से हो सकता है—न हमारे ज्ञान की ही वहाँ तक पहुँच है। बस, ये दो ही तो शुक्ल-भाव हैं। जब इन दोनों से ही वह परे का तत्त्व है—जब दो की ही पहुँच वहाँ तक नहीं, तो फिर हम उसे शुक्ल क्यों कर कह सकते हैं? वास्तव में हम उसे कृष्ण कहने के लिए तय्यार हैं। उसी कारण अन्तर्य्यामी सच्चिदानन्दघन भगवान् से यह सारा क्षर-विश्व उत्पन्न होता है एवं इसे उत्पन्न कर सब का नियतिः सत्य द्वारा नियन्त्रण भी, निगरानी भी, वह स्वयं ही करता है एवं वही सब का परायण भी है। मिट्टी से उत्पन्न होने वाला घड़ा मिट्टी पर ही

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठित रहता है एवं अन्त में मिट्टी में ही विलीन हो जाता है। सूर्य्य से निकलने वाली रश्मियाँ सूर्य्य से ही वद्ध रहती हैं एवं अन्त में सूर्य्य में ही जा मिलती हैं। रश्मियों का सूर्य्य ही प्रभव है, सूर्य्य ही प्रतिष्ठा है एवं सूर्य्य ही परायण है अर्थात् अन्तिम स्थान है। ठीक इसी प्रकार इस अखिल चराचर का वह सच्चिदानन्दघन सर्वान्तर्य्यामी सत्यभगवान् ही प्रभव है—वही प्रतिष्ठा है—वही परायण है। वह तत्त्व अविज्ञेय है अतएव हम उसे—"कृष्ण" कहने के लिए तय्यार हैं। बस, अब से पूर्व के प्रकरण में इसी सत्य-कृष्ण का स्वरूप बतलाया गया है—

"इत्थं च सच्चिदानन्द-घन सर्वः जगत् प्रभवः सर्वजगन्नियन्ता कश्चिदर्थः सत्यमित्युक्तं भवति"

वह सत्यकृष्ण निर्विशेष, परात्पर, अव्ययपुरुष, अक्षरपुरुष, क्षरपुरुष, इन पाँच भावों से चूंकि अपना स्वरूप संपन्न रखता है अतएव उसे पाङ्क्त समझना चाहिए अर्थात् वह सत्यकृष्ण पञ्चावयव है। उस एक ही सत्य-कृष्ण की निर्विशेष-परात्पर-अव्यय-अक्षर-क्षर भेदेन अपनी पाँच संस्थाएँ हैं।

सत्यकृष्ण-रहस्य के प्रारंभ में ही हम ने बतलाया है कि इस विश्व में हम स्थिर और चल ये दो भाव देखते हैं। हर लहजे में—हर पदार्थ में हमें क्रिया और शान्ति, इन दो भावों का प्रत्यक्ष होता रहता है। चाहे जिस पदार्थ पर दृष्टि डालिए—आपको उसमें स्थिति और गति ये दो भाव अविनाभाव स्वरूपेण मिलेंगे। एक मनुष्य पर भी दृष्टि डालिए। आप को सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर मालूम होगा कि वह मनुष्य प्रतिक्षण बदल रहा है। हर वक्त उस में बदलाव हो रहा है। अस्थि-मांस-मेदा-मज्जा-रस-असृक्-शुक्र इत्यादि शरीरस्थ सारे धातुप्रतिक्षण बदल रहे हैं। हम जो अन्न खाते हैं—वह रसासृङ्मेदोमांस-मज्जा-अस्थि-ऊर्क् में परिणत हो जाता है। ऊर्क्-प्राण बन कर निकल जाता है। उस कमी को पूरी करने के लिए फिर अन्न खाना पड़ता है। इस प्रकार अन्न लेने और खर्च करने—यह आदानविसर्गात्मक—अन्नोर्क् से प्राणों का परस्परानुग्रहात्मक—जीवयज्ञ अनवरत हुआ करता है। यही प्रतिक्षण में होने वाले परिवर्त्तन का प्रत्यक्ष निदर्शन है। यदि परिवर्तन न होता—हमारे शरीर के धातु यथावत् रहते—तो हमें अन्न

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

खाने की आवश्यकता ही नहीं होती। परन्तु होती है— अतएव मानना पड़ता है कि आदानविसर्गात्मक क्रिया अनवरत होती रहती है अतएव इसी परिवर्त्तनीया क्रिया की महिमा के कारण ही जन्म-काल में एक बिलांद स्वरूप में उत्पन्न होने वाला शिशु दो हाथ का हो जाता है—अन्त में वही साढ़े तीन हाथ का युवा बन जाता है। आपको इस से यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि उस के हड्डी-मांसादि में अवश्य ही परिवर्त्तन हुआ है—किसी नियत क्षण में ही यह बच्चा "एक-दम बड़ा हो गया है"—यह कथमपि नहीं कह सकते, क्योंकि इसी क्षण में इतना बड़ा हो गया—कहने पर परिवर्त्तन हमेशा—अनवरत जारी नहीं रहता है। यह बात सिद्ध करने के लिए आपके पास कोई भी प्रमाण नहीं है। अतएव आप को बाध्य हो कर मानना पड़ेगा कि वास्तव में, प्रतिक्षण में होने वाले परिवर्त्तन के कारण ही आज वह छोटा बच्चा इतना बड़ा बन गया है—एवं इसी धारा-प्रवाह क्रिया के कारण यह बुड्ढा हो जाएगा—एक दिन वापस मिट्टी बन जाएगा—मिट्टी पत्थर बन जाएगी, सब कुछ होगा, क्रिया बन्द हर्गिज नहीं होगी। मनुष्य का निदर्शन-मात्र है। संसार के यच्चयावत् पदार्थ इस नित्य क्रिया से आक्रान्त हैं। जिसे आप जड़ समझ रहे हैं, उसमें भी क्रिया हो रही है और इतने वेग से हो रही है कि उसके कारण-थोड़े ही समय में आपकी स्थूल दृष्टि में स्थिर प्रतीत होने वाला पदार्थ सर्वथा बदल जाता है। इन सारी बातों का विस्तृत विवेचन—सत्यकृष्ण रहस्य के प्रारंभ में ही कर दिया गया है अतः पुनः सबका विवेचन करना पुनरुक्ति होगी। यहाँ केवल इतना ही कहना है कि संसार के यच्चयावत् पदार्थ—क्या जड़, क्या चेतन,—क्रिया से आक्रान्त हैं। एक क्षण भी क्रिया-व्यापार बन्द नहीं होता। इसलिए दार्शनिक शिरोमणि भगवान् श्री कृष्ण जोर दे कर कहते हैं—

"न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्य्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणः ।। (गीता ३।५)

इस प्रमाण से और अनुभव से, भौतिक विज्ञान की दृष्टि से सिद्ध हो जाता है कि संसार के यच्चयावत् पदार्थ प्रतिक्षण होने वाली परिवर्तनीया क्रिया से आक्रान्त हैं। इसीलिए इस संसार को परिवर्तनशील कहा जाता है परन्तु इस परिवर्त्तन के साथ ही हम एक अपरिवर्त्तनीय स्थिर-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शान्त एवं निष्क्रिय भाव का भी प्रत्यक्ष कर रहे हैं। उदाहरणार्थ–उसी मनुष्य पर दृष्टि डालिए–जिसे हमने क्रिया से आक्रान्त बतलाया है। पूर्व के कथन से आप को यह तो अवश्य ही मान लेना पड़ेगा कि वह मनुष्य प्रतिक्षण बदल रहा है। जो क्रिया पहले क्षण में थी, दूसरे क्षण में कहीं उस का पता भी नहीं है। उत्पत्ति, स्थिति, लय–क्रिया की ये तीन ही अवस्थाएँ हैं। जो स्थिति (अवस्था) है–वह भी बदलती हुई है। ऐसे परिवर्तन में भी हमें 'स एवायं देवदत्तः' यह प्रत्यभिज्ञा बराबर होती रहती है। एक बालक को जब हम कालान्तर बाद-जरा बड़ी अवस्था में देखते हैं तो मुँह से निकल पड़ता है, अरे! यह वही मनुष्य है जिसे हमने बचपन में अमुक स्थान पर देखा था। बस, यह जो–'स एवायं' भाव है, उसे हम निष्क्रिय कहने के लिए तय्यार हैं। यदि उस क्रियास्वरूप मनुष्य में कोई निष्क्रिय अटल तत्त्व न होता तो–'स एवायं' यह ज्ञान, यह व्यवहार, बन ही नहीं सकता था। क्यों कि जो क्रिया पहले थी, उस का तो दूसरे क्षण में कहीं पता ही नहीं है। कदाचित् कहो कि क्रिया में रहने वाली एक धाराशक्ति ऐसी है जो सारी क्रियाओं को अपने ऊपर रख कर 'स एवायं' प्रत्यय करवा देती है। ऐसी हालत में–आपमें और हमारे में केवल शब्द मात्र का ही विवाद रहेगा। आप जिस धारा को मानेंगे, उसे क्रिया-स्वरूप तो मान नहीं सकते क्योंकि यदि उसे भी क्रिया मानेंगे तो फिर उस का आधार किसी अन्य को मानना पड़ेगा, अतः बाध्य हो कर उस आधार को–'स एवायं' व्यवहार के मूलभूत तत्त्व को–अवश्य ही निष्क्रिय मानना पड़ेगा। बस, उसमें हमारी कोई आपत्ति नहीं है। क्रिया से अतिरिक्त भी एक निष्क्रिय तत्त्व है–यदि आपने यह बात किसी तरह मान ली तो हमारा काम हो गया। यह तो हुई तर्क–प्रणाली। अब वैज्ञानिक दृष्टि से विचार कीजिए। क्रिया परिवर्तन-शीला है। यह परिवर्तन तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उस का आलम्बन कोई अपरिवर्त्तनीय तत्त्व न मान लिया जाए। मिट्टी है, तभी तो उस पर क्रिया-व्यापार कर हम घड़ा बना देते हैं। खूँटी है, तभी तो हम उस पर वस्त्र रखते हैं। मुख है–तभी तो उसे चलाते हैं। तात्पर्य्य यही है कि क्रिया के लिए कोई निष्क्रिय आलम्बन अवश्य ही मानना पड़ता है। यदि आलम्बन भी सक्रिय माना जाएगा तो फिर उसका आलम्बन, और कोई मानना पड़ेगा। क्यों कि क्रिया, क्रिया का आलम्बन नहीं बन सकती। जब क्रिया

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

स्थित रहे तब न अन्य क्रिया का आधार बने। जब दूसरी क्रिया के होने से पहले ही क्षण में वह नष्ट हो जाती है, तो ऐसी अवस्था में आधार वह क्यों-कर बन सकती है ? इसलिए परिवर्तनीया-क्रिया का कोई अपरिवर्त्तनीय निष्क्रिय आधार अवश्य ही मानना पड़ता है. जो कि यच्चयावत् पदार्थों के परिवर्त्तित होने पर भी उन्हें "अस्ति" रूपेण प्रत्यक्ष दिखलाया करता है। पर्वत-घट-मठ प्रतिक्षण बदल रहे हैं। घड़ा कल भी था, आज भी है, कल भी रहेगा। पर्वत बीस वर्ष पहले भी था, आज भी है—बाद में भी रहेगा—यह जो प्रत्यय है, वही नित्य तत्त्व है। उसी का नाम 'अस्ति' है जो कि भावाभाव दोनों में समान रूप से विद्यमान है।

कहना सारे प्रपञ्च से हमें यही है कि संसार के प्रत्येक पदार्थ में—सक्रिय और निष्क्रिय, ये दोनों भाव हम देखते हैं। अतएव मानना पड़ता है कि इस भाव-द्वय युक्त जगत् के मूल भी दो ही हैं। एक मूल नित्य है—एक मूल अनित्य है। बस, उस नित्य मूल तत्त्व का नाम ही रस है एवं अनित्य मूल तत्त्व का नाम ही बल है। रस को ही वैदिक परिभाषा में—'आभू' कहा जाता है—बल को ही अभ्व कहा जाता है। आभू और अभ्व ये दो ही इस भावद्वय युक्त जगत् के मूल तत्त्व हैं। आभू और अभ्व जगत् के मूल कैसे हैं ? इस का विस्तृत-विवेचन संशयोच्छेदवाद के मूलोपनिषत् नामक अध्याय में देखना चाहिए। आसमन्तात् वह नित्य-तत्त्व व्याप्त रहता है, उस से कोई भी खाली नहीं है अतएव "आसमन्ताद् भवति"—इस व्युत्पत्ति से उस नित्य तत्त्व को 'आभू' कहते हैं एवं क्रियास्वरूप अभ्व प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है अतएव वह कोई चीज नहीं है, परन्तु कुछ न हो कर भी विश्वस्वरूप उसी से बना हुआ है। देखते हम इस बलसमष्टि को ही हैं अतएव—'अभूत्वा भाति'-इस व्युत्पत्ति से उस अनित्य-तत्त्व को "अभ्व" कहा जाता है। बस, इस सारे प्रपञ्च से सिद्ध हो जाता है कि जगत् विश्व के मूल विश्वातीत आभू और अभ्व अर्थात् 'रस और बल' ये दो ही तत्त्व हैं। इस आभू को—अमृत और ब्रह्म-शब्द से भी पुकारा जाता है। रस सत्-तत्त्व है, बल-असत् तत्त्व है। चूंकि इन दो के अलावा विश्व में और कोई तीसरी शक्ति नहीं है अतएव इस विश्व को "सदसदात्मक" कहा जाता है। बस, जगत के मूलभूत रस-बल के ही निर्विशे-षादि पाँच भेद हो जाते हैं, जिन का कि प्रकृत में वर्णन किया गया है। रस-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ग्रौर बल सर्वथा विरुद्धधर्म्मा हैं। रस, ग्रानदस्वरूप है, ग्रमृत है, अभय है, ग्रखण्ड है, नित्य है, ग्रद्वय है—परन्तु बल ठीक इस के विपरीत क्षणिक है, दुःखं-दुःखं है, शून्य है, स्वलक्षण है, ग्रनन्त मृत्यु है, खण्ड-खण्ड है।

बस उन दोनों में जो शुद्धरस हैं—सर्वबलरहित केवल रस है—उसे ही हम 'निर्विशेष कहेंगे। यह घड़ा है, यह कपड़ा है, यह मनुष्य है, यह सूर्य्य है, यह चाँद हैं,—ये जो विशेष धर्म्म हैं, वे बल-निबन्धन हैं। बल ही, मृत्यु ही, भेद का कारण है। जब रस सर्वथा बल-रहित है तो फिर विशेषभाव कैसा ? ग्रतएव शुद्ध रस को हम निर्विशेष कहने के लिए तय्यार हैं। जो ग्रखण्ड होता है, द्वैतभाव से रहित होता है, निरञ्जन होता है, निराकार होता है, वह शुद्ध-रस ही निर्विशेष कहलाता है। जो नित्य शुद्ध है—नित्य बुद्ध है—ग्रलक्षण है, ग्रर्थात् जिसका स्वरूप वर्णनातीत है—जो तत्त्व विश्वातीत है—सत्व, रज, तम—तीनों गुणों से परे है—वही शुद्ध-रस निर्विशेष कहलाता है। जो सर्वोपाधि-शून्य है, ग्रवाङ्मनसागोचर है, जो 'नेति-नेति' शब्द से पुकारा जाता है—वही निर्विशेष है। जो सर्वाधार है एवं स्वयं निराधार है, ग्रपनी महिमा में ही प्रतिष्ठित है, जो दिग्देश-कालानवच्छिन्न है, ऐसा जो शुद्ध-रस है वही निर्विशेष कहलाता है। जो अव्याकृत है, निर्लिप्त है, निष्कल है—वही निर्विशेष है। जिस प्रकार वायु में पानी के संसर्ग से ठण्डापन आ जाता है, पानी में शर्करादि से—मिठास ग्रा जाता है तद्वत् वह रस सक्त नहीं हो पाता, उस मृत्यु से लिप्त नहीं हो पाता अतएव हम उसे निर्लिप्त कहने के लिए तय्यार हैं। जैसे हमारे शरीर में रस सृक् मेदो-मज्जा-ग्रस्थि इत्यादि भेदेन धातुभेद हैं—तद्वत् उस शुद्ध रस में कोई भेदक नहीं है अतएव हम उसे निष्कल कहने के लिए तय्यार हैं।

जिस प्रकार स्फटिकमणि पर जपापुष्प की लाली पड़ती है, जिसप्रकार काँच में मुख का प्रतिबिम्ब पड़ता है तद्वत उस रस में बल संबद्ध रहता है ग्रत-एव हम उस रस को निरञ्जन कहने के लिए तय्यार हैं। काजल जैसे हाथ से मसलने पर दर्पण पर से धुल जाता है वैसे ही रस में बल चिपकता नहीं ग्रपितु दर्पण-प्रतिबिम्बवत् उस की स्थिति है। ग्रतएव हम उसे निरञ्जन कहने के लिए तय्यार हैं। जिसमें और-ग्रौर सजातीय-विजातीय भेद रहते हैं, वह खण्ड युक्त कहलाता है। चूंकि यह रस सजातीय-विजातीय-स्वगत तीनों भेदों से

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अलग है अतएव हम उसे अखण्ड कहने के लिए तय्यार हैं। इसीलिए—"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेहनानास्ति किञ्चन्" (वृहद०उप० ४।४।१९) यह कहा जाता है।

सम्पूर्ण कथन का तात्पर्य्य यही है कि रस और बल इन दोनों में से जो शुद्ध रस है, उसे ही निर्विशेष कहते हैं। "तत्रनिरतिशयानन्दघनो रसः। स निर्विशेषः' इस अमृतस्वरूप निर्विशेष में सारी मृत्युएँ रहती हैं। बल इसी रस में रहते हैं। बात सच है, रस के अलावा और स्थान बाकी बचा ही कौन-सा है जहाँ पर बल अपनी सत्ता जमाए ? रस ही तो बल की सत्ता है। अमृत, विना मृत्यु के हर्गिज नहीं रह सकता है। अशान्त, शान्त के बिना नहीं रह सकता एवं शान्त विना अशान्त के नहीं रह सकता। अमृत के उदर में मृत्यु का वास है एवं मृत्यु के जर्रे-जर्रे, कण-कण, में अमृत घुसा है इसीलिए—"अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्" (शतपथ १०।५।२।४) यह कहा जाता है। क्षेत्र, पार और आवाप—इन तीनों की समष्टि का नाम—त्रिवेणी तीर्थ है। न केवल क्षेत्र को त्रिवेणी कहते हैं--न केवल पार को तीर्थ कहते हैं—न केवल आवाप को त्रिवेणी कहते हैं, किन्तु तीनों की समष्टि का नाम त्रिवेणी—तीर्थ है। क्षेत्र नाम है—स्थान का; आवाप नाम है—जल-प्रवाह का। पानी प्रतिक्षण बढ़ता रहता है। जो पानी एक क्षण पहले था न मालूम दूसरे क्षण में वह कहाँ बह कर चला गया। ऐसे-ऐसे अनन्त आवाप जिसमें बहते रहते हैं, ऐसे आवाप-युक्त क्षेत्र का नाम तीर्थ है। एवमेव सर्व-बल-विशिष्ट जो रस है, उस का नाम ब्रह्म है। इस सर्व बल-विशिष्ट रस को ही—निर्विशेष से पृथक् बतलाने के लिए उसे परात्पर कहते हैं। बल का ही नाम शक्ति है। चूंकि सारी शक्तियाँ इसी परात्पर में रहती हैं अतएव इस परात्पर को—"सर्वशक्तिमान" कहा जाता है। जिस प्रकार एक भीगे हुए लम्बे-चौड़े पर्दे पर हजारों जल-विन्दु मौजूद हैं किन्तु मूलतः वह पर्दा ही रहता है, तद्वत् हजारों अनन्तानन्त बलों से युक्त जो रस है—वह मूलतः परात्पर ही कहलाता है। यह परात्पर ही परमेश्वर कहलाता है। यह सर्वशक्तिमान है, सर्वधर्म्मा है—सर्वकर्म्मा है। हमारे भीतर जो शक्ति है—जो आनन्द है—जो ज्ञान है—वह इसी सच्चिदानन्द-घन से आया हुआ है। जैसे निर्विशेष असीम है, तद्वत्—यह परात्पर भी असीम ही है। सर्वबलविशिष्ट रस का नाम परात्पर है। इस में जो रस है—वह भी असीम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है। रस संख्या से तो एक है एवं दिग्-देश-काल से अनवच्छिन्न है अर्थात् असीम है। दिग्-देश-काल की पकड़ में वह रस नहीं आ सकता एवं वल संख्या में अनन्त हैं। वे दिग्-देश-काल से अवच्छिन्न हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि रस की असीमता दिग्-देश-कालानवच्छेद पर निर्भर है एवं वल की असीमता–संख्या पर निर्भर है। वल, संख्या में इतने हैं–इतने हैं–जिन्हें कभी गिना ही नहीं जा सकता। इस प्रकार रस–वल दोनों ही असीम हैं। दोनों की समष्टि का नाम ही परात्पर है अतएव हम इस परात्पर को–असीम कहने के लिए तय्यार हैं। जिस में अवच्छेद होता है उसका नाश होता है। इस में अवच्छेद नहीं है, असीम है अतएव यह परात्पर जिसे कि हम "परमेश्वर" नाम से व्यवहृत करेंगे अविनाशी है– शाश्वतिकधर्म्मा है। वस निर्विशेष के अनन्तर दूसरा नम्बर इसी सर्ववल-विशिष्ट शाश्वतिक धर्म्म का अर्थात् परात्पर का नम्बर है।

यहाँ पर इतना और समझ लेना चाहिए कि परात्पर में हैं–रस और वल, दो वस्तुएँ तथापि "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इस अद्वैतभाव में कोई विरोध नहीं आता है। वल के रहते हुए भी परात्पर एक ही है। अद्वैत-सम्पत्ति का, वल से विनाश नहीं हो सकता। द्वैत-व्यवहार सत्ता-भेद में हुआ करता है। जव सत्ता दो होती हैं तव द्वैत प्रविष्ट होता है। यदि सत्ता एक है और फिर पदार्थ अनन्त हैं तव भी वे पदार्थ–एक ही नाम से व्यवहृत होंगे, उदाहरणार्थ–मस्तक की पगड़ी पर ध्यान दीजिए। पगड़ी, कपड़े की लीर-चीर, टुकड़ों से वनी हुई है, इसीलिए मानना पड़ेगा कि लीर भी पगड़ी में मौजूद है। लीर–महावस्त्र से निकली है–महावस्त्र सूत से बना है, सूत रुई से वना है, रुई कपास से वनी है, कपास–वृक्ष से बना है, वृक्ष–मिट्टी से वना है। इस प्रकार सारे पदार्थ इस पगड़ी में मौजूद हैं– वैज्ञानिक नियम के अनुसार आपको यह वात अवश्य ही माननी पड़ेगी। परन्तु क्या–आप पगड़ी को पूर्वोक्त नामों से व्यवहृत करने के लिए तय्यार हैं ? क्या पदार्थ नित्य होने से–पगड़ी के अनन्त नाम हो गए ? क्या लीरताओं (वस्त्र खण्डत्व) कपासताओं (कर्पासित्व) सूतताओं (सूत्रत्व) मिट्टिताओं (मृदा-तत्त्व) कहने से–पगड़ी को उठा लाएँगे? हर्गिज नहीं। हम पूछते हैं–ऐसा क्यों–इस प्रश्न का–एकसत्तावाद के अलावा और कोई उत्तर आपके पास नहीं है। पदार्थ पगड़ी में अनन्त हैं–परन्तु सत्ता एक है। उत्तरो-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

त्तर उत्पन्न होने वाले पदार्थों में—पूर्व-पूर्व की ही सत्ता का भाव अनुस्यूत हो रहा है। उनकी भिन्न सत्ता नहीं है, अतएव द्वैत-व्यवहार नहीं होता। मिट्टी से घड़ा बना है—घड़े की सत्ता पृथक् नहीं है—अपितु मिट्टी की सत्ता से घड़ा सत् कहलाता है इसीलिए वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यम्" यह कहा जाता है। कहना हमें इस प्रपञ्च से यही है कि रस में सारे बल भी हैं परन्तु बलों की अपनी प्रातिस्विक सत्ता नहीं है। रस-सत्ता से बल सत् है अतएव रस और बल दोनों की समष्टि रहने ही पर हम परात्पर के विषय में —"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" कहने के लिए तय्यार हैं। इसी अभिप्राय को लक्ष्य में रख कर भाष्यकार कहते हैं—

"अथाशेषबलविशिष्टोऽयं कृत्स्नोरसः परात्परः। सोऽयं शाश्वतिको धर्म्म परमेश्वरो नामैकएवाद्वितीयोऽर्थः।" सर्वबल-विशिष्ट रस का नाम परात्पर है परन्तु उस बल को सर्वथा सुषुप्त समझना चाहिए। सुषुप्त सर्वबल-विशिष्ट रस का नाम परात्पर है। सारा बल जब उन्मुग्धावस्था में—रस में डूबा हुआ रहता है, उस अवस्था का नाम ही—परात्पर है। इस परात्पर से सृष्टि नहीं हो सकती। सृष्टि जाग्रत बलस्वरूप अव्ययेश्वर से होती है। अनन्त बल-सम्पन्न जो रस है, वह असीम है; उसी का नाम परात्पर है। जो वस्तु असीम होती है, वह एक कहलाती है। एक से सृष्टि नहीं हो सकती। दो वस्तुओं की जो संसृष्टि है—सम्बन्ध है उसी का नाम सृष्टि है। दो के सम्मिलन से उत्पन्न नये मूर्त रूप का नाम सृष्टि है। दो वस्तुएँ मिल कर जब मूर्च्छित हो जाती हैं, तो वह नई वस्तु कहलाने लगती हैं। शोरा और गन्धक रासायनिक प्रक्रिया से मिल कर अपना स्वरूप छोड़ देते हैं। उनके उस योग से दारू (मदिरा) बन जाती है। नई चीज की पैदाइश दो के रासायनिक संयोग पर अवलम्बित है। यदि वस्तुएँ यों ही मिली रहें, उनमें खाली सम्बन्ध मात्र ही रहे तो फिर नई चीज नहीं निर्म्मित हो सकती। दोनों की मूर्च्छित अवस्था पर ही नई वस्तु की उत्पत्ति अवलम्बित है। स्त्री और पुरुष के शुक्र-शोणित में जब तक रासायनिक संयोग न होगा— दोनों भ्रूण परस्पर मिल न जाएँगे तब-तक गर्भाधान हो नहीं सकता। तात्पर्य्य यही है कि सृष्टि दो के संयोग पर अवलम्बित है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सम्बन्ध दो प्रकार का होता है—सहचर और ग्रन्थिबन्ध । बलों का वलों के साथ जब तक सहचर सम्वन्ध रहता है, तव तक सृष्टि नहीं हो सकती। सहचर-सम्वन्ध युक्त सर्ववल—विशिष्ट रस को ही परात्पर कहते हैं । सृष्टि परात्पर से नहीं हो सकती । वलों पर जव बलों की गाँठ लगती है; वल, जव वल से गुँथ जाता है, तब जा कर सृष्टि होती है। सृष्टि बलग्रन्थि-निवन्धता है। सृष्टिव्युत्पत्ति ग्रन्थि-वन्ध निवन्धन पर अवलम्वित है। वन्ध-सम्वन्ध-माया वल पर अवलम्बित है। परात्पर तो असीम होने के कारण अद्वय है अतएव सृष्टि नहीं हो सकती । सृष्टि होती है परिच्छिन्न रस से। रस परिच्छिन्न होता है—माया-बलोदय से सृष्टि-निबन्धक ससीम वलों में सव से पहले उत्पन्न होने वाला यही मायावल है। उस असीम परात्पर में सबसे पहले सृष्टि-निवन्धन यह माया-वल ही उत्पन्न होता है। वह माया वल प्रादुर्भूत हो कर—जो कि अब तक सोया हुआ था—रस को परिच्छिन्न कर लेता है। माया-वलावच्छिन्न जो रस है, उसी का नाम—मायीश्वर है। वह मायावच्छिन्न मायी-ईश्वर ही—अव्यय पुरुष नाम से व्यवहृत होता है। माया का नाम प्रकृति है—मायी का नाम ईश्वर । इसी अभिप्राय से कहा जाता है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।"

(श्वेता० उप० ४।१०)

यह माया बल क्रियास्वरूप है। रस शान्त है। ऐसी अवस्था में क्रियास्वरूप सुप्त मायाबल को जाग्रत हो कर रस को परिच्छिन्न करने के लिए पहले-पहले किसने प्रेरित किया ?—इसका एकमात्र उत्तर—"को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।" (ऋग्वेद मं. १०।१२९।६) इत्यादि श्रुति ही है। माया बड़ी ही विलक्षण है, जैसा कि कृष्ण-रहस्य के प्रारम्भ से ही वतला दिया जाता है। यहाँ इतना ही कहना है कि सर्वबल-विशिष्ट रस में, अर्थात् परात्पर में सबसे पहले सृष्टि का मूल कारण-मायाबल ही उत्पन्न होता है। इसी मायावच्छिन्न रस का नाम पुरुष हो जाता है। परिच्छिन्नरस का नाम पुरुष है । सांख्य दर्शन में पुरुष को अपरिच्छिन्न बतलाया जाता है। परन्तु पुरुष को अपरिच्छिन्न बतलाना अवैदिक है अतएव

. Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वह मत त्याज्य है। पुरिस्येते—पुरुष शब्द की यह व्युत्पत्ति ही उस के परिच्छिन्नत्व को प्रकट कर रही है। मायावल के घेरे में जब-तक 'रस' का समावेश नहीं होता, मायाबल द्वारा जब तक रस को ससीम नहीं बना दिया जाता, तब-तक वह परात्पर ही कहलाता है। माया के घेरे में आने के बाद रस की 'पुरुष'-संज्ञा होती है। हमने बतलाया है कि बल से सृष्टि होती है। यह बल यद्यपि अनन्त है तथापि इन के रहने के स्थान कुल सोलह ही हैं जो कि "बल-कोश" नाम से प्रसिद्ध है। उन सोलह-बल-कोशों में से पहला बल-कोश यही मायाबल-कोश है। इस मायाबल-कोश में—अनन्तानन्त मायाएँ रहती हैं। यही हालत अवशिष्ट अन्य बल-कोशों की समझनी चाहिए जिनका कि सूक्ष्म स्वरूप कृष्ण-रहस्य के प्रारम्भ में ही बतला दिया गया है। इस मायावच्छिन्न रस का नाम ही—अश्वत्थ कहलाता है—

"ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।।
(गीता १५।१)

यह इसी अव्ययेश्वर के लिए कहा जाता है, जिसका कि विशद विवेचन हम "अश्वत्थोपनिषत्" में करने वाले हैं। इस अव्यय-पुरुष की, जो कि मायावच्छिन्न है, अक्षर और क्षर ये दो प्रकृतियाँ हैं। अक्षर—पराप्रकृति है—क्षर-अपराप्रकृति है। पुरुष स्वयं प्रजापति है। इस की अक्षर और क्षर दो प्रकृतियाँ हैं। पुरुष प्रकृति के बिना नहीं रहता; अव्यय, बिना अक्षर-क्षर के नहीं रहता। अतएव प्रकृति-विशिष्ट-अव्यय को पुरुष कहा जाता है। समुदाय पर पुरुषशब्द व्यवहृत होता है। "समुदाये दृष्टा शब्दा अवयवेऽपि दृश्यन्ते" यह नियम है। अतएव अक्षर और क्षर को भी पुरुष कह दिया जाता है। इसीलिए—

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।" (गीता १५।१६)

"उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।" (गीता १५।१७)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यह कहा जाता है। जीवाव्यय मायापेक्षया इस ईश्वर की माया बड़ी है अतएव उस को महामाया कहा जाता है। माया चार प्रकार की है—१. महामाया २. ब्रह्ममाया ३. विष्णुमाया ४. शिवमाया। हमने बतलाया है कि उस मायावच्छिन्न रस का नाम अव्यय है। सबसे पहले मायाबल ही उत्पन्न होता है अतएव और बलों की अपेक्षा–इसे बड़ा माना जाता है। जो वस्तु असीम होती है, अपरिच्छिन्न होती है, उसमें केन्द्र नहीं होता। अपरिच्छिन्न वस्तु अपना सेन्टर (केन्द्र) नहीं रखती। परात्पर अपरिच्छिन्न था अतएव उस में कोई केन्द्र नहीं था। मायाबल के कारण रस के ससीम बनते ही उसी समय उस मायावच्छिन्न रस में एक केन्द्र कायम हो जाता है। उस केन्द्रीय बल का नाम ही–"हृद्बल" है। जो वस्तु असीम होती है उस में इच्छा नहीं होती। इच्छा हो किसकी–जब कि सब कुछ उसी में बैठा हुआ है। इच्छा अप्राप्त वस्तु की होती है। परात्पर असीम होता है अतएव न उस में केन्द्र है एवं न उसमें इच्छा है परन्तु अव्यय ससीम है, अतएव उसमें केन्द्र है एवं अपने उस पूर्व असीम-भाव को पुनः प्राप्त होने की इच्छा भी है। इच्छा का नाम ही है–अशनाया बल। हृदयबल के उत्पन्न होते ही अव्यय में अशनाया बल उत्पन्न हो जाता है। अशनाया बल है। बल को ही मृत्यु कहते हैं। मृत्यु, आसक्ति में डालने वाली है अतएव उसे **'पाप्मा'** कहा जाता है। इस प्रकार वही अव्यक्त-तत्त्व मायावच्छेदेन ससीम हो, अशनाया-बल से आक्रान्त हो जाता है। इसी अभिप्राय से वेद भगवान् कहते हैं—

"नैवेह किञ्चनाग्र आसीन्–मृत्युनैवेदमावृतमासीत्–अशनायया—अशनाया हि मृत्युः।" (बृहद० उप० १।२।१)

जिस हृद्बल का हमने जिक्र किया था वह इसी अशनाया के उक्थ-अर्क-अशिति भेद से–ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-अग्नि-सोम, इन पाँच स्वरूपों में परिणत होता है। बल, बिना रस के नहीं रहता–यह सिद्धान्त है। जब इच्छा-बल ऊपर जाता है तो उस के साथ ही रस की स्थिति को भी अवश्य ही मानना पड़ता है। बस, इच्छा-बल के साथ बाहर की ओर जाने वाला जो रस है–उसी का नाम **"विष्णु"** है। अशनाया कहते हैं–भूख को। इसी की किरणों का नाम है–अर्क एवं प्रतिष्ठित केन्द्रीय रस का नाम–ब्रह्मा है। साथ ही हमारे

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शरीर में से बल निकलता भी रहता है, जिसकी कमी को पूरा करने के लिए विष्णुशक्ति अशनाया को ला-ला कर आत्माग्नि में आहुत करती रहती है। इस क्षयित होते हुए वल के साथ जो रस-भाग निकलता है—उसी का नाम इन्द्र है परन्तु इन्द्र अर्थात् निकलता हुआ रस केन्द्र से अर्थात् ब्रह्मा से बद्ध है अत: एकान्ततः बल का विनाश नहीं हो पाता। अशनाया शक्ति-अर्थात् विष्णु एवं वल-विक्षेपणधर्म्मा इन्द्र-दोनों केन्द्र से बद्ध रहते हैं अतएव ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र इन तीनों को 'हृदय' कहा जाता है। ब्रह्मा का काम है—प्रतिष्ठा रखना। वस्तुओं में जो एक ठहराव दीखता है—वही ब्रह्मा है। प्रतिष्ठा-तत्त्व को ही ब्रह्मा कहते हैं। इसीलिए तो **"ब्रह्मैवास्य सर्वस्य प्रतिष्ठा"** यह कहा जाता है। इस प्रतिष्ठा पर जो शक्ति केन्द्र से वद्ध हो कर बाहर से अर्क द्वारा अशिति अर्थात् अन्न लाया करती है, इस का नाम विष्णु है। यदि अन्न न आए तो प्रतिष्ठा ही विचलित हो जाए। यह काम करती है—विष्णुशक्ति। अतएव पुराणों में विष्णु को पालन-कर्त्ता एवं प्रतिष्ठा की भी प्रतिष्ठा बतलाया जाता है। जिस शक्ति के द्वारा अन्न बाहर फेंका जाता है—उसका नाम इन्द्र है। इन्द्र को ही पुराणों में रुद्र कहा गया है। चूंकि ये रुद्र आए हुए अन्न को बाहर फेंक कर प्रतिष्ठा को उखाड़ने की कोशिश किया करते हैं अतएव रुद्र को सृष्टि-संहार-कर्त्ता बतलाया जाता है। आदान करना विष्णु का काम है, विसर्ग करना इन्द्र का काम है। जिस आलम्बन पर आदान-विसर्ग होता है—उसका नाम ब्रह्मा है। तीनों ही हृद् कहलाते हैं। तीनों हृद् केन्द्र से बद्ध हैं अतएव केन्द्र का नाम—"हृ-द-य," रखा गया है। जिस का आदान होता है—उसका नाम-सोम एवं जिसका विसर्ग होता है, उसका नाम—अग्नि है। पाँचों ही अमृतभाव हैं अतएव पाँचों ही अक्षर कहलाते हैं। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-अग्नि-सोम—ये पाँच अक्षर हैं। जैसे—अव्यय की एक माया है तद्वत् इन तीनों की भी माया पृथक्-पृथक् है। मित वनाने वाले बल का नाम माया है। बिना माया के परिच्छेद के—पदार्थस्वरूप नहीं बनता। इस से मानना पड़ता है कि ब्रह्मा-विष्णु-शिव—तीनों के स्वरूपों को बनाने वाली माया ही है। ब्रह्मा को परिच्छिन्न करने वाली माया का नाम—ब्रह्ममाया है। माया ही सृष्टि को उत्पन्न करती है। ब्रह्म-प्रतिष्ठा पर ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

एवं जिस माया से विष्णु का स्वरूप बनता है उसे विष्णुमाया कहते हैं। इसी से संसार का पालन होता है। तीसरी माया का नाम है—शिवमाया। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र तीनों उस अव्ययेश्वर महामाया के पुत्र हैं। माया के बल पर ही-ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु-पालन करते हैं—रुद्र संहार करते हैं। तीनों ही मायाएँ उस महामाया में युक्त रहती हैं अर्थात् अक्षर अव्यय में बद्ध रहता है अतएव इन तीनों मायाओं को **योगमाया** भी कहा जाता है। कहना प्रकृत में यही है कि उस परात्पर में मायाबलोत्पन्न जो **मायीईश्वर** है वही **अव्यय-पुरुष** कहलाता है। उसी के उदर में **अक्षर** उत्पन्न होते हैं एवं **अक्षर से क्षर** उत्पन्न होते हैं। उसी अशनाया के कारण—क्षरभाग उत्पन्न होता है। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-अग्नि-सोम—पाँचों अक्षरों से संश्लिष्ट **आत्मक्षर** से—प्राण-आप्-वाक्-अन्नाद-अन्न, ये पाँच **विकारक्षर** उत्पन्न होते हैं एवं इन पाँचों की जब पाँचों में आहुति हो जाती है तो इस सर्व-हुत यज्ञ से स्वयम्भू-परमेष्ठी-सूर्य्य-चन्द्र एवं पृथिवी—ये पाँच **यज्ञक्षर** उत्पन्न होते हैं। इन्हीं पाँचों से आगे की सारी सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं अतएव इन को **"विश्व-सृट्"** भी कहा जाता है। इस प्रकार अव्यय पुरुष-अक्षर और क्षर-स्वरूप अपनी **परा और अपराप्रकृति** को लिए हुए सारे त्रैलोक्य में प्रतिष्ठित रहता है। इसीलिए—

"यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः" कहा जाता है। हमने जो स्वयम्भू आदि पाँच मण्डल बतलाए हैं उन्हें वैदिक परिभाषानुसार 'पञ्च-पुण्डीरा (पाँच पोर की) प्राजापत्य वल्शा' (टहनी) कहा जाता है। उस अश्वत्थ महामायी अव्यय ईश्वर वृक्ष की एक टहनी में स्वयम्भू—परमेष्ठी-सूर्य्य-चन्द्र एवं पृथिवी—ये पाँच मण्डल रहते हैं। ऐसी-ऐसी अनन्तानन्त टहनियाँ इस अश्वत्थ ईश्वर में रहती हैं जो कि महामायी कहलाता है। हमारा सम्बन्ध केवल एक टहनी से है। इस एक टहनी के विज्ञान को ही—वेद कहा जाता है। हमारा वेद केवल—एक टहनी का अर्थात् स्वयम्भू—परमेष्ठी-सूर्य्य-चन्द्र-पृथिवी के एक मण्डल या लोक का विज्ञान बतलाता है। चूंकि टहनियाँ अनन्त हैं अतएव प्रत्येक का वेद भी अलग-अलग है। इसीलिए—"अनन्ता वै वेदाः" यह कहा जाता है। उस एक ईश्वर के उदर में—अनन्तानन्त स्वयम्भू हैं, अनन्तानन्त परमेष्ठी हैं, अनन्तानन्त सूर्य्य हैं, अनन्तानन्त पृथिवियाँ हैं, अनन्तानन्त चन्द्रमा हैं। इन अनन्तानन्त सत्ताओं में से हमारा सम्बन्ध मात्र

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

एक बल्शा से है। उस महामायावच्छिन्न अश्वत्थ वृक्ष से उत्पन्न यज्ञक्षर-रूपा यह टहनी उसी से बद्ध रहती है। अतएव बल्शामाया को हम योग-माया कहेंगे। इस में भी जीवों की जो योगमाया है—वह इस बल्शा से बद्ध है अतएव हमारी माया को बल्शा की अपेक्षा योगमाया कहेंगे एवं बल्शा को हमारी अपेक्षा से महामाया कहेंगे। कहने का तात्पर्य्य यही है कि एक जो महतोमहीयान ईश्वर—माया है—वह महामाया ही है, वह योगमाया नहीं हो सकती एव जो अणोरणीयान् है, सब से छोटी है वह योगमाया ही रहेगी, वह महामाया कभी नहीं हो सकती। इन दोनों के बीच की जितनी मायाएँ हैं, अपेक्षया सब योगमाया हैं एवं सब माहामाया हैं। प्रलय का सम्बन्ध इस महामाया से ही है। परात्पर तो अविनाशी है। ईश्वर—विनाशी है। ईश्वर, मायी है। जो परिच्छिन्न है, उस का अवश्य ही नाश होता है। एक सूर्य्य के नष्ट हो जाने का नाम प्रलय है। ऐसे एक सूर्य्य की सत्ता की कालावधि अक्षरस्थ ब्रह्मा का एक दिन है। सूर्य्य की सत्ता रहना, ब्रह्माजी का एक दिन है एवं सूर्य्य का नष्ट हो जाना ब्रह्मा जी की रात्रि है। ऐसे सात अहोरात्र का नाम एक सप्ताह है। तीस दिन का नाम महिना है, बारह महिने का नाम एक वर्ष है। बस, ऐसे सौ वर्षों में ब्रह्मा जी मर जाते हैं। ब्रह्माजी के सौ वर्ष की समष्टि ही उस ईश्वर का एक दिन है। ऐसे सौ वर्षों में एक ईश्वर मर जाता है। उस परात्पर से प्रादुर्भूत होने वाली जो एक माया है—उसी का यह सत्ता—प्रपञ्च है। सामान्य अनुमान से मानना पड़ता है कि उस परात्पर में अनन्तानन्त मायाबल उत्पन्न होते हैं। एक-एक माया का— एक-एक अश्वत्थ वृक्ष है। एक-एक अश्वत्थ वृक्ष में—हजारों टहनियाँ हैं। एक-एक टहनी में—स्वयम्भू-परमेष्ठी, सूर्य्य-चन्द्र-पृथिवी—ये पाँच मण्डल हैं। कहाँ तक कहें, उस परमेश्वर की लीला बड़ी ही विचित्र है, अविज्ञेय है। अन्त में—"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसासह" यही कहना पड़ता है। हमें यहाँ सिर्फ इतना ही बतलाना है कि असीम परात्पर में माया-बलोदय से उत्पन्न अतएव परिमित परिच्छिन्न जो मायी- ईश्वर है, जो कि अव्यय-पुरुष नाम से व्यवहृत होता है – वह प्रादुर्भूत होता है। अक्षर इस अव्यय पुरुष की परा-प्रकृति है एवं क्षर, अपरा-प्रकृति है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"अथैतस्मिनसीमे परात्परे माया बलोदयात् परिमितः परिच्छिन्नो मायीश्वरः कश्चिदव्ययः पुरुषः प्रादुर्भवति ।"

इस प्रकार वह एक ही सच्चिदानन्दघन सर्वजगन्नियन्ता सत्यतत्त्व, जो कि अनुपाख्य होने के कारण कृष्ण नाम से व्यवहृत होता है अपने में-निर्विशेष, परात्पर, अव्यय, अक्षर और क्षर ये पाँच अवयव धारण किये हुए है। यह सत्य, पाङ्क्त है अर्थात् पञ्चावयव है। सांख्य विज्ञान में पाँच संख्या को प्रधानता देने का यही कारण है। वैदिक महर्षियों ने-जगह-जगह "पाङ्क्तो वै यज्ञः-पाङ्क्तो वै यज्ञः" (ऐ० ब्रा० १।५) कहा है। उस का यही प्राकृतिक रहस्य है। यद्यपि पंक्ति छन्द दस अक्षर का है तथापि उस में भी-दो बार पाँच ही तो हैं। पाश्चात्य साइण्टिस्ट्स (भौतिक वैज्ञानिकों) ने पाङ्क्तो वै यज्ञः से यह अर्थ निकाला है कि भारतवासियों ने अँगुलियों के हिसाब से सर्वप्रथम पाँच की ही संख्या सीखी थी। भारतवासी जंगली थे। बोलना इन को आता नहीं था अतएव हाथ की अँगुलियों के इशारे से काम लेते थे। चूंकि अँगुलियाँ पाँच थीं अतएव इन्होंने "पाङ्क्तो वै यज्ञः" कहना शुरू कर दिया। इसके लिए हमें सिवाय उन्मत्त प्रलाप के और कुछ नहीं कहना। अभी वे हमारे वैज्ञानिक नियमों से अपरिचित हैं, जिस दिन उन्हें हमारे पाङ्क्त विज्ञान का पता लग जाएगा उस दिन वे हमारे शिष्य बन जाएँगे, इस में जरा भी सन्देह नहीं है।

अस्तु, कहना हमें यही है कि वह सत्यकृष्ण, निर्विशेषादि भेद से पाङ्क्त है-इसीलिए प्रारम्भ में ही भाष्यकार कहते हैं—

"स हि निर्वेशेषः परात्परः अव्ययपुरुषः अक्षरपुरुषः क्षरपुरुषः इत्येवपञ्चभिर्भावैः कृतरूपतया पाङ्क्तः प्रत्येतव्यः"

इस अक्षर-क्षर प्रकृति-द्वय-विशिष्ट महामायावच्छिन्न अतएव महा-पुरुष में योग-मायोदय के कारण अनन्तानन्त क्षुद्रातिक्षुद्र पुरुष उत्पन्न होते हैं। उन्हीं को जीव कहा जाता है।

हमने बतलाया है कि उस महामाया के गर्भ से ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-स्वरूप रक्षा करने वाली तीन योगमायाएँ उत्पन्न होती हैं। इन तीनों योग-मायाओं में विष्णु और इन्द्र के आदान-विसर्ग से-जो कि आदान-विसर्ग उन

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

की योगमाया पर ही निर्भर हैं, आगे की–क्षर-सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं। अक्षर से क्षर उत्पन्न होता है। क्षर आत्म, विकार, यज्ञ भेदेन तीन प्रकार का हो जाता है। स्वयम्भू-परमेष्ठी-सूर्य्य-चन्द्र-पृथिवी-ये पाँच यज्ञक्षर हैं। इनमें जो परमेष्ठी-मण्डल है उसी का नाम आपोमय-मण्डल है। यह पानी सोम-स्वरूप है। इसी की घनावस्था का नाम पानी है–तरलावस्था का नाम वायु है एवं विरलावस्था का नाम ही–सोम है। बस,उस अव्यय सृष्टि का प्रतिबिम्ब इन्हीं तीनों पर पड़ता है। सोम ही चित् का ग्राहक है। चिदाभास को ही जीव कहते हैं। जीवों की उत्पत्ति का एकमात्र कारण ये तीनों योग-मायाएँ हैं। यदि योग-मायाएँ न होतीं तो क्षर-सृष्टि न होती, क्षर-सृष्टि न होती तो परमेष्ठिस्वरूप अप–वायु-सोमात्मक आपोमण्डल कहाँ से आता; आपोमण्डल न होता तो–चित् का प्रतिविम्ब किस पर पड़ता? जब प्रतिविम्ब ही नहीं पड़ता तो जीवसृष्टि ही कैसे होती? अतएव हम कह सकते हैं कि सारे जीव इन्हीं योगमायाओं से उत्पन्न हुए हैं, परन्तु ध्यान रहे–प्रत्येक जीव की योगमाया भी स्वतन्त्र हो जाती है। जितने जीव होते हैं–उतनी ही योगमायाएँ हो जाती हैं। माया का समुद्र बड़ा ही गहन है–इसे पार करना अत्यन्त ही कठिन है अतएव आगम कहता है—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।।

उसी महामाया के उदर में–स्वयम्भू-परमेष्ठी-सूर्य्य-चन्द्र-पृथिवी एतद् पञ्चमण्डलोपेता अनन्तानन्त बलशा मायाएँ हैं। प्रत्येक बलशा महामाया से युक्त रहने के कारण–'योग-माया' कहलाती है एवं स्वयम्भू आदि प्रत्येक मण्डल में अनन्तानन्त योगमायाएँ हैं। स्वयम्भू की ऋषिप्राण सृष्टि है। प्राण अनन्त हैं–अतएव योगमायाएँ भी अनन्त ही हैं। एवमेव अवशिष्ट चारों मण्डलों में भी समझना चाहिए। योगमायावच्छिन्न जीव क्षुद्र प्रजापति कहलाता है। हम सब क्षुद्र प्रजापति हैं। हमारे शरीर में भी–अनन्तानन्त कीड़े भरे हैं। प्रत्येक कीड़े की योगमाया पृथक् है। इस प्रकार हम भी योगमाया-समष्टि ही हैं। इस प्रकार माया के उदर में माया, उसके उदर में फिर माया, माया में फिर माया, इस धाराप्रवाह से महामायावच्छिन्न वह अव्यय ईश्वर इन योग-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मायाओं से आच्छादित हो रहा है। माया ही माया का स्वरूप दिखलाई पड़ रहा है। इतनी माया हो गई है कि उससे अव्यय का स्वरूप ही छिप गया है। इसी अभिप्राय से भगवान् कहते हैं—

"नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः" –(गीता ७।२५)

प्रकृत में केवल यही बतलाना है कि इन अनन्तानन्त योगमायाओं के कारण उस एक महामायी पुरुष में क्षुद्रातिक्षुद्र जीव नाम के अनेक पुरुष उत्पन्न हो जाते हैं। अन्त में श्रुति को–"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्" (श्वे० उप० ३।१५) यह घण्टाघोष करना पड़ता है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

प्रकृतिद्वय विशिष्टेऽस्मिन् महापुरुषे योगमायोदयवशादनन्ताः क्षुद्रः-क्षुद्राः पुरुषा जायन्ते जीवसंज्ञाः।"

पानी के लोटे में आप गुलाब केवड़ा-नारंगी-नीबू-अनार-खसखस का रस डाल कर शर्बत बना डालिए। शर्बत बना कर उस पानी को खूब हिला डालिए जिस से वे सारे रस परस्पर ओत-प्रोत हो जाएँ–घुल-मिल जाएँ। अनन्तर–उस लोटे में से एक बूंद अपनी हथेली पर डालिए। हम आप से पूछते हैं कि बतलाइए, इस एक बूंद में–उस पानी में स्थित दस रसों का स्वाद है या नहीं ? इस प्रश्न का आपके पास सिवाय–"हाँ" के और कोई उत्तर नहीं है। बस, ठीक इसी प्रकार निर्विशेष, परात्पर, अव्यय, अक्षर, क्षर, समष्टि-स्वरूप उस ईश्वर के अंश से उत्पन्न चिदाभास अर्थात् जीवों को इन पाँचों भावों से अवश्य ही युक्त मानना पड़ेगा। सारे जीव अव्ययाक्षरक्षर पुरुष-त्रय एवं निर्विशेष और परात्परस्वरूप पाङ्क्त पुरुष से उत्पन्न हुए हैं। अतएव उन्हें अवश्य ही पाङ्क्त मानना पड़ेगा—

"तेऽमी सर्वे जीवाः प्रत्येकं पुरुष-त्रय परात्पर निर्विशेषैः कृतरूपाः पाङ्क्ता दृष्यन्ते।" इति

परन्तु इतना अवश्य समझ लेना चाहिए कि जीवानुगत निर्विशेष, परात्पर, अव्यय, अक्षर, क्षर नामक पाँचों भावों की प्रतिष्ठा ईश्वरस्थ पाँच भाव ही हैं। जीवस्थ निर्विशेष की प्रतिष्ठा ईश्वरस्थ निर्विशेष है। जीवस्थ परात्पर की प्रतिष्ठा ईश्वरस्थ परात्पर है। जीवस्थ अव्यग की प्रतिष्ठा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ईश्वरस्थ अव्यय है इसलिए तो जीवाव्यय की अपेक्षा ईश्वराव्यय के लिए परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् (मुण्डक उप० ३।२।८) यह कहा जाता है। जीवाक्षर की प्रतिष्ठा ईश्वराक्षर है एवं जीव-क्षर की प्रतिष्ठा ईश्वरक्षर है। पानी में चन्द्रमा का प्रतिविम्ब पड़ रहा है। जैसे चन्द्रमा में काला चिह्न है वैसे ही पानी में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा में भी काला चिह्न मौजूद है। इस काले चिह्न की प्रतिष्ठा चन्द्रमास्थित काला चिह्न ही है, न कि चाँद का शुक्लभाग। शुक्लभाग, शुक्ल-भाग की प्रतिष्ठा है; कृष्ण भाग, कृष्णभाग की प्रतिष्ठा है। अपने-अपने भाव की वही-वही भाव प्रतिष्ठा है। जीवाव्यय की प्रतिष्ठा ईश्वरक्षर हो जाए, यह बात नहीं है, अपितु जीवाव्यय की प्रतिष्ठा ईश्वराव्यय ही हो सकता है। इसलिए—

"गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु।
कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ।।"

(मुण्डक उप० ३।२।७)

यह कहा जाता है। कहना यही है कि ईश्वर की पाँचों प्रतिष्ठाएँ हा जीव के पाँच भावों की प्रतिष्ठाएँ हैं। उन्हीं के आधार पर इन पाँचों की स्थिति है। सूर्य्य और चन्द्रमा के प्रतिबिम्बों की प्रतिष्ठा—सूर्य्य और चन्द्रमा ही हैं। उन्हीं के आधार पर प्रतिविम्बों की स्थिति है। एवमेव—चिदाभासों की प्रतिष्ठा वह चिदात्मा-ईश्वर ही है—

"जीवानुगतानां तु तेषां पञ्चानामपि भावानामयमीश्वरः पाड्क्तः प्रतिष्ठा भवति।"

इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"

(ईशा० उप० स्वस्ति पाठ)

यह चिदात्मा पूर्ण है एवं यह विश्व भी पूर्ण ही है। उस पूर्ण से पूर्ण ही निकलता है एवं उस विश्व-पूर्ण की पूर्णता को जब पूर्ण में मिला दिया जाता है तो पूर्णेश्वर ही बाकी बच जाता है। अपि च—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"पूर्णात् पूर्णमुदञ्चति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्यविद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ।।"

पूर्ण से पूर्ण का उदञ्चन होता है। पूर्ण विश्व उस पूर्ण ब्रह्म से सिक्त होता है अर्थात् जो वस्तुएँ उस में हैं वे ही विश्व में सिक्त होती हैं। महर्षि कहते हैं—आज मैं उसे जानना चाहता हूँ जो कि तत्त्व मुझ में आ कर सिक्त हुआ है अर्थात् जिससे मैं बना हूँ—उस ईश्वर को मैं पहचानना चाहता हूँ। यजुर्वेद और अथर्ववेद की श्रुतियों से—सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् एवं सर्वधर्मोपपन्न उस महामायावच्छिन्न महापुरुष ईश्वर से ही—उस के निर्विशेषादि सर्वधर्म्मो-ञ्चन से—परिच्छिन्न सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति अभिप्रेत है। पूर्णमदः पूर्णमिदं—से यही साबित होता है कि जो वस्तुएँ उसमें हैं—वे ही इसमें हैं। अतएव ईश्वरवत् हम जीव को अवश्य ही पाङ्क्त कह सकते हैं। अव्यय, मन-प्राण-वाङ्मय है।

मन ज्ञानोत्पत्ति का कारण है इसलिए तो उसे सर्वज्ञ बतलाया है। प्राण वाक्व्युत्पत्ति का कारण है अतएव प्राणापेक्षया—उसे सर्वशक्तिमान बत-लाया है। वाक्—सारे पदार्थों का कारण है अतएव वागभिप्रायेण—सर्वधर्म्मो-पपन्न बतलाया गया है। कहना इस प्रपञ्च से हमें यही है कि जो उस में है—वही जीव में है। इसी अभिप्राय से दोनों श्रुतियों का उद्धरण दे कर भाष्यकार कहते हैं—

"इति याजुषाथर्वण श्रुतिभ्यां सर्वज्ञात् सर्वशक्तिमतः सर्वधर्म्मोपपन्ना-दस्मात् महापुरुषादीश्वरादये सर्वधर्म्मोदञ्चनेन परिच्छिन्नानाममीषामशेषाणां जीवानामुत्पत्तेरभ्युपेयत्वात् ।"

इसी अभिप्राय से कठ महर्षि भी कहते हैं—

"यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।।"

(कठ० उप० २।१।१०)

श्रुति—"नानेव" कहती है, इस से सूचित करती है कि वास्तव में नाना नहीं है—नानाभाव कल्पित हैं। सत्य तो केवल एक अद्वितीय

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ब्रह्म ही है। जीवात्मा की अपेक्षा ईश्वरात्मा बहुत बड़ा है अतएव इसे परमात्मा कहा जाता है। यही उपास्य है। उपासना ईश्वर की ही हो सकती है–न कि परात्पर की। परात्पर तो असीम होने के कारण सर्वथा अनुपास्य है। जीव व्यष्टि-स्वरूप है, ईश्वर समष्टिस्वरूप है। ईश्वर को जीव की प्रतिष्ठा बतलाया जाता है। जीवात्माओं की प्रतिष्ठा एवं आलम्बन यही अव्ययेश्वर बतलाया जाता है, जैसा कि श्रुति कहती है—

"एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥"[१]
(कठ० उप० १।२।१७)

इस प्रकार समष्टिस्वरूप परमात्मा, व्यष्टिभूत इन जीवों में रहनेवाले निर्विशेष-परात्पर-अव्यय-अक्षर-क्षर इन पाँचों की प्रतिष्ठा तब ही बन सकता है जबकि–जो पदार्थ परमात्मा में हैं–वे ही जीव में हों। चन्द्रमा–चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब की प्रतिष्ठा है। सूर्य्य, चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब की प्रतिष्ठा कभी नहीं हो सकता। इसका एकमात्र कारण सजातीयता ही है। अतएव मानना पड़ता है कि जीवगत पाँचों भावों की प्रतिष्ठा ईश्वरगत पाँचों भाव ही हैं—

अतएवायं समष्टिभूतः परमात्मा सर्वेषां व्यष्टिभूतानामेषां जीवगतानां पञ्चानामपि भावानां प्रतिष्ठोपपद्यते।

जीवगत पाँचों की प्रतिष्ठा ईश्वरगत पाँचों हैं–इस बात को स्वयं कृष्ण भगवान् अपने मुँह से कहते हैं—

"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्म्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।" (गीता १४।२७)

भगवान् कहते हैं कि मैं अर्थात् सत्यकृष्ण-अव्यय ईश्वर (१) ब्रह्म (२) अमृत (३) अव्यय (४) शाश्वतधर्म और (५) एकान्तिक सुख, इन पाँचों की प्रतिष्ठा हूँ।

---

१. 'यो यदिच्छति तस्य तत्' के स्थान पर पाठ-भेद है–'ब्रह्म लोके महीयते'।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

श्रुति कहती है—

"अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीदर्द्धममृतम् ।"

प्रजापति से अव्यय पुरुष अभिप्रेत है। मायावच्छिन्न जो रस है, उसी का नाम प्रजापति है। माया की पकड़ में आने पर भी रस का वास्तव में कुछ नहीं बिगड़ता। इसलिए मायावच्छिन्न रस को "अव्यय" कहा जाता है। इसीलिए—

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येतितदव्ययम् ।।" (गो० ब्रा० पू०१।२६)

यह लक्षण अव्यय का बतलाया जाता है। इस अव्यय प्रजापति के अक्षर और क्षर, ये दोनों ही शरीर हैं, अर्थात् दोनों की समष्टि का नाम ही शरीर है। इन दोनों में से—जो अक्षर है—वह 'अमृत' है। अक्षर निमित्त-कारण है अतएव हम इसे अमृत कहने के लिए तय्यार हैं एवं जो क्षर-भाग है—वह 'मर्त्य' कहलाता है। क्षर-भाग है—नष्ट होने वाले का नाम। जो नष्ट होता है उसी को मर्त्य कहते हैं। बस, इसी अभिप्राय से—"अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीदर्द्धममृतम्" यह कहा जाता है। ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च—में ब्रह्म शब्द से—आत्मा का अर्थात् प्रजापति का क्षर भाग ही अभिप्रेत है। ब्रह्मनाम है—मूलतत्त्व का। जिस तत्त्व से हजारों वस्तुएँ पैदा हो जाएँ किन्तु वह स्वयं अपनी स्थिति से कभी भी च्युत न हो—उसे ब्रह्म कहा जाता है। अव्यय-अक्षर-क्षर इन तीनों में से जो क्षर है वह आत्मक्षर, विकारक्षर एवं यज्ञक्षर भेदेन तीन प्रकार का है। अक्षर के साथ जो क्षर-भाग सदा संश्लिष्ट रहता है उसे आत्मक्षर कहा जाता है। इसी आत्मक्षर से—विकारक्षर उत्पन्न होते हैं। अक्षर और आत्मक्षर दोनों का एक स्वरूप है। सृष्टि, क्षर से अर्थात् आत्मक्षर से उत्पन्न होती है परन्तु आत्मक्षर-अक्षर समान-धर्म्मा हैं अतएव इसी समान भाव को बतलाने के लिए अक्षर से सृष्टि होना बतला दिया जाता है। जैसा कि श्रुति कहती है—

"यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाःसहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ।
तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ।"

(मुण्डक उप० २।१।१)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC-0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यह आत्मक्षर-विकारक्षरों का और स्वयम्भू आदि यज्ञक्षरों का मूल है अतएव इस क्षर को—विकारयज्ञक्षरापेक्षया हम—ब्रह्म कहने के लिए तय्यार हैं। इस आत्मक्षर में से चाहे जितने विकार-क्षर निकल जाएँ तथापि यह अपने स्वरूप से कभी च्युत नहीं होता अतएव हम इस आत्मक्षर को अवश्य ही ब्रह्म कहने के लिए तय्यार हैं। यह क्षर अक्षर से उत्पन्न होता है, जैसा कि प्रकरण के प्रारम्भ में हम बतला आए हैं। इसीलिए—"ब्रह्माक्षर समुद्भवम्" यह कहा जाता है। गीता में जहाँ विशेषणरहित केवल ब्रह्म शब्द आए—उस से— अक्षर से उत्पन्न होने वाला आत्मक्षर ही अभिप्रेत है। इस सामान्य परिभाषा को बतलाने के लिए भगवान् ने—"किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मम्" अर्जुन के यह पूछने पर—'ब्रह्माक्षर समुद्भवम्' ब्रह्म का लक्षण बतलाया है। इस भगवद् वाक्य से यह सिद्ध हो जाता है कि अव्ययात्मा का जो क्षर-भाग है उसी अर्थ में यह ब्रह्म शब्द रूढ़ है। इसी अभिप्राय से भाष्यकार कहते हैं—

"अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासीदर्द्धममृतम्" इति श्रुतेः। षोडशिनः प्रजापतेरसस्याव्ययालम्बनोऽयमात्मा मर्त्यामृत भागभ्यां द्वेधाविभक्तः प्रत्येतव्यः। तत्र मर्त्यं क्षर शब्देन अमृतं पुनरक्षर शब्देनाहुः। "ब्रह्माक्षर समुद्भवम्" इति भगवदुक्तेरात्मनःक्षरभागेऽयं ब्रह्म शब्दः।"

प्रजापति को षोडशी कहा है। इस में पञ्चकल-अव्यय है, पञ्चकल अक्षर हैं, पञ्चकल क्षर हैं एवं १६ वाँ परात्पर है। निर्विशेष, एकान्ततः प्रविविक्त है अतएव उस की गणना प्रजापति में नहीं की जाती। अस्तु, कहना हमें यही है कि 'ब्रह्मणो हि' इत्यादि में ब्रह्म से क्षरपुरुष अभिप्रेत है।

अमृत शब्द अक्षर भाग में रूढ़ है। ये अक्षर और क्षर, जिस प्रजापति की प्रकृति हैं वही अव्ययपुरुष है। यह अव्यय पुरुष जहाँ तक मायाबल का घेरा है, वहीं तक रहता है। इस अव्यय के बाहर जो सर्वबलविशिष्ट रस नाम का परात्पर है वही—शाश्वतिक अर्थात् नित्य धर्म्म है। जो असीम होता है—वह एक होता है एवं वह सर्वथा अविनाशी है। भूत अव्यय शाश्वतिक धर्म्म नहीं है क्यों कि वह परिच्छिन्न है। परात्पर, मायादि उपाधि से अनवच्छिन्न है—एकरस है अतएव परात्पर को ही हम शाश्वतिक धर्म्म कह सकते

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हैं। जो ऐकान्तिक सुख है वही निर्विशेष रस है। रस को ही आनन्द कहते हैं। इसीलिए— "रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति" (तै० उ० २।६।१) यह कहा जाता है। जब-तक रस के साथ वल रहता है तव-तक वह रस अर्थात् वह आनन्द ऐकान्तिक नहीं कहा जा सकता। चूंकि परात्पर सर्व्वबल-विशिष्ट है अतएव हम उसे ऐकान्तिक सुख नहीं कह सकते। सर्वबल रहित जो शुद्ध निर्विशेष-रस है, उसी को ऐकान्तिक सुख कह सकते हैं। इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि ब्रह्म क्षर-पुरुष का नाम है, अमृत अक्षर पुरुष का नाम है, अव्यय प्रजापति का नाम है। शाश्वतिक धर्म्म परात्पर का नाम है एवं ऐकान्तिक सुख निर्विशेष का नाम है। वस, गीता में उक्त श्लोक के इसी अर्थ को वतलाते हुए भाष्यकार कहते हैं—

"अक्षर भागेत्वमृतशब्दः। यस्यैतेप्रकृती सोऽव्ययपुरुषः। स माया वैशिष्ट्यादिह यावन्मात्रं प्रवर्त्तते। यस्त्वन्यः परात्परः सोऽयं शाश्वतो धर्म्मः। मायादुपाध्यवच्छेदेन शाश्वदेकरसत्वात्। अथैकान्तिकं सुखं निर्वि-शेषो रसः।"

इन जीवगत पाँचों-भावों की प्रतिष्ठा यह परमात्मा (सत्यकृष्ण) ही है। भगवान् श्री कृष्ण अहं शब्द से उस का अभिनय कर रहे हैं। अपने नाम से अर्थात् कृष्ण नाम से उस अन्तर्य्यामी का अभिनय कर रहे हैं। अतएव वह अन्तर्य्यामी सच्चिदानन्दघन-सर्वजगतप्रभव-सर्वजगन्नियन्ता भगवान् सत्य-कृष्ण ही है—यह वात हम अवश्य ही मानने के लिए तैय्यार हैं। हमारी प्रतिष्ठा अर्थात् विश्व की प्रतिष्ठा यही सत्यकृष्ण है।—"तेषामेषां जीवादि-गतानां प्रतिष्ठाऽयं परात्मा सत्यः। तस्याहं शब्देनाभिनयादयमेवान्तर्य्यामी सत्यपुरुषो भगवान् श्री कृष्ण इति प्रतिपद्यामहे॥"

जिस सच्चिदानन्द भगवान् का—अब-तक हमने वर्णन किया है, वह सर्वजगतप्रभव-सर्वजगन्नियन्ता-अव्ययेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। मायावल से परि-च्छिन्न सदा सृष्टि में व्याप्त रहने पर भी वह एकदम वेलाग रहता है—जो "तिष्ठ-न्नपि न तिष्ठति—न करोति न लिप्यति" है अतएव उसे अव्ययेश्वर कहा जाता है। यह अव्यय कर्म्म और अकर्म्म इन दो धातुओं से युक्त रहता है। आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण-वाक् अव्यय की पाँच कलाएँ वतलाई गई हैं। इन में से

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आनन्द-विज्ञान-मन—इन तीनों की समष्टि का नाम ब्रह्म है। ब्रह्म निष्क्रिय है अतएव अव्यय के इस पहले धातु को हम-"अकर्म्म" कहेंगे। आनन्द-मन-विज्ञान तीनों ही ज्योतिस्वरूप हैं, इनमें गति का क्या काम ? गति इन पर होती है, न कि ये गति हैं एवं मन-प्राण-वाक् की जो समष्टि है—उसे 'कर्म्म' कहते हैं। यह कर्म्म उस अकर्म्म से सर्वथा अविनाभूत रहता है। विद्या सदा अविद्या-सहकृता रहती है। अमृत-मृत्यु दोनों अविनाभूत हैं। ज्ञानाज्ञान का जोड़ा है। न ज्ञान, कर्म्म अर्थात् अज्ञान के बिना रहता है, न अज्ञान अथवा कर्म्म, ज्ञान के बिना रह सकता है। इसीलिए तो भगवान् ने—केवल ज्ञानयोग का अर्थात् सांख्ययोग का एवं केवल कर्म्मयोग का अर्थात् आसक्तियुक्त कर्म्मयोग का—दोनों का खण्डन किया है। भगवान् का कहना है कि आत्मा अव्ययस्वरूप है एवं अव्यय, कर्म्म-अकर्म्म, इन दो धातुओं से सदा युक्त रहता है। अमृत और मृत्यु दोनों ही आत्म-प्रजापति के शरीर हैं। तो ऐसी अवस्था में—शुद्धज्ञान का और शुद्ध कर्म्म का आश्रय क्यों कर लिया जा सकता है ? हम कर्म्म से सर्वथा मुक्त हैं, हम तो शुद्ध-ज्ञान के ही उपासक हैं—ऐसा कहने वाले के लिए भगवान्—"मिथ्याचारः स उच्यते" यह कहते हैं—

"न कर्म्मणा मनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।"

"न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्म कृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥" (गीता ३।४-५)

इत्यादि श्लोकों से अन्त में भगवान् ने शुद्ध ज्ञान—योग का खूब ही खण्डन किया है। इसी प्रकार— "ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत" इत्यादि विधि—वाक्यानुसार जो आसक्ति-युक्त, फल-कामना-युक्त कर्म्म करते हैं, भगवान् उन को भी नीची दृष्टि से ही देखते हैं—

"त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।" (गीता २।४५)

"कर्म्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" (गीता २।४७)

इत्यादि वाक्यों से आसक्ति युक्त कर्म्मयोग का भी खूब ही खण्डन किया है। अन्त में भगवान् कहते हैं कि न केवल ज्ञानयोग ही अच्छा है, न

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कोरा कर्म्मयोग ही अच्छा है– अच्छी है दोनों की समष्टि । ज्ञान-कर्म्म की जो समष्टि है–जिसे कि बुद्धियोग कहते हैं–वही श्रेयस्कर मार्ग है । ज्ञानमार्ग का आश्रय लो परन्तु उसमें बुद्धियोग को कर्म्मयोग सहित शामिल करो, तब ज्ञानयोग उपयोगी बनेगा । बुद्धियोग शामिल करो, तभी सच्चे कर्म्मयोगी कहलाओगे । अकर्म्म को कर्म्म से गुँथा हुआ समझो अर्थात् ब्रह्म को (ज्ञान को) कर्म्माविनाभूत समझो एवं कर्म्म को ज्ञानाविनाभूत समझो । बस, यही गीता का सार है । बुद्धियोग-स्थापन करना ही गीता का प्रातिस्विक विषय है । इसी बुद्धियोग के आशय को व्याख्यायित करते हुए भगवान् कहते हैं—

"कर्म्मण्यकर्म्म यः पश्येदकर्म्मणि च कर्म्म यः ।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्म्मकृत् ।।" (गीता० ४।१८)

अपिच—"ब्रह्मण्याधाय कर्म्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।" (गीता० ५।१०)

अस्तु, गीता का प्रतिपाद्य विषय क्या है–यह आगे जा कर मालूम हो जाएगा । यहाँ सिर्फ यही कहना है कि कर्म्म और अकर्म्म (ब्रह्म-कर्म्म) से द्विधातु-युक्त जो अव्यय पुरुष है–उस का मन-प्राण-वाक् समन्वित कर्म्मस्वरूप त्रितय से अनुसंहित जो रूप है–उसी का नाम "सत्ता ब्रह्म" है । मन-प्राण-वाक्समष्टि का नाम 'अस्ति' है । अव्यय को सच्चिदानन्द कहा जाता है एवं आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण-वाक् ये उसकी पाँच कलाएँ हैं । पाँचों में से आनन्द को तो आनन्द ही कहते हैं, विज्ञान को–चित् कहते हैं एवं अवशिष्ट मन-प्राण-वाक् को, जिन को कि हमने कर्म्मस्वरूप बतलाया है–'सत्ता' कहते हैं। इसीलिए पञ्चकल अव्यय को 'सच्चिदानन्द' भगवान् कहा जाता है । यह घड़ा है, पर्वत है, सूर्य्य है, इत्यादि में एक 'है' को हम देखते हैं–वह मन-प्राण-वाक् की समष्टि ही है । जब मन-प्राण-वाक् एक स्थान पर समुच्चित हो जाते हैं तो वहाँ–'है' यह व्यवहार होने लग जाता है । 'है'–यह ब्रह्म का ही स्वरूप है । ब्रह्म अविनाशी है । 'है' तत्त्व भावाभाव में सर्वत्र समानरूपेण व्याप्त रहता है । इस 'है' का नाम ही सत्ता है । इस सत्ता-ब्रह्म का स्वरूप पूछना हो तो यह मन-प्राण-वाक् की समष्टि ही है । मन-प्राण-वाक् तीनों कर्म्म हैं–तीनों जब एकत्र

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हो जाते हैं, अर्थात् तीनों मिल जाते हैं, तो उसका नाम "है" हो जाता है। इसीलिए हम मन-प्राण-वाक्स्वरूप अनुसंहित (समुच्चित) कर्म्म-त्रितय को "सत्ता ब्रह्म" कहने के लिए तय्यार हैं—

"कर्म्माकर्म्माभ्यां द्विधातुकस्याव्ययपुरुषस्य मनः प्राणो-
वागिति कर्म्मरूप त्रितयमनुसंहितं सत्ता ब्रह्म"।

सूर्य्य है, चन्द्रमा है, नक्षत्र है, मनुष्य है, गाय है, बैल है, उस 'है' का नाम ही सत्ता है, यह बात पूर्व के प्रकरणों से सिद्ध हो जाती है। उस 'है' में—यदि हम ढूँढते हैं तो—तीन ही वस्तुएँ हमें मिलती हैं। उन तीनों का नाम, नाम-रूप-कर्म्म है। सूर्य्य गोल है—इस में एक तो इस 'है' का 'सूर्य्य' यह नाम है एवं गोल इस का रूप है। आयतन को ही रूप कहते हैं—यह हम पूर्व के प्रकरणों में सिद्ध कर आए हैं एवं जिस के ये नाम और रूप हैं—जो कि 'पदार्थ' नाम से व्यवहृत होता है—उसी का नाम शक्ति है। शक्ति का नाम ही गुण है। ऐसे-ऐसे अनन्तगुण-अनन्त शक्तियाँ जब एकत्र हो जाती हैं तो उस पदार्थ का नाम 'द्रव्य' पड़ जाता है। 'गुणकूटो द्रव्यम्'—यह सिद्धान्त है। हजारों वृक्ष मिल कर जैसे—'वन' द्रव्य से व्यवहृत होने लगते हैं, ठीक इसी प्रकार हजारों गुणों की समष्टि ही द्रव्य पदार्थ से व्यवहृत होने लगती है। पदार्थ, कर्म्म का समुच्चय मात्र ही है अतएव हम उसे कर्म्म भी कह सकते हैं। बस, संसार के यच्चयावत् पदार्थों में नाम-रूप-कर्म्म के अलावा और कोई चौथी वस्तु नहीं है यह सिद्धान्त समझ लेना चाहिए। मन-प्राण-वाक् की समष्टि में मन का जो परिणाम विशेष है— उसी का नाम रूप है। हमारा आत्मा मन-प्राण-वाङ्मय है। इन तीनों में से रूप का अधिष्ठाता मन है। मन का स्वभाव है कि वह जिस वस्तु से युक्त होता है—उसी के आकार में परिणत हो जाता है। मन, ब्रह्मणस्पति के सोम का नाम है। ब्रह्मणस्पति का सोम स्वयम्भूचित् से जब अनुगृहीत हो जाता है तो वही सोम 'मन' कहलाने लगता है। सोम एक प्रकार का पानी है। पानी का स्वभाव है कि उसे जिस आकार के बर्तन में डाला जाएगा उसका वही आकार हो जाएगा। यदि गोल शीशी में पानी भर दिया जाता है तो पानी का आकार गोल ही हो जाता है। चौकोर शीशी में पानी भर दिया जाता है तो उस का भी आकार चौकोर

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हो जाता है। कहना यही है कि जैसे पानी का अपना कोई प्रातिस्विक आकार नहीं है, पात्र ही उसका आकार है; ठीक इसी प्रकार मन का कोई अपना प्रातिस्विक आकार नहीं है। पुरोवस्थित घट-पट-अश्व-हाथी-गाय-बैल इन का जो स्वरूप है, वही प्रज्ञामन का आकार है। घोड़े से जब इस मन का सम्बन्ध होता है तो यह घोड़े के आकार में परिणत हो जाता है। पर्वत से सम्बन्ध होता है तो पर्वतकाराकारित बन जाता है। इस से यह भी सिद्ध हो जाता है कि मन सर्वथा अनवच्छिन्न है अर्थात् व्यापक है। यदि मन ससीम होता तो अपने से नियतस्वरूप से अधिक आकार की वस्तु को ग्रहण नहीं करता एवं आयतन से छोटी को ग्रहण करता तो जगह खाली रहती–परन्तु ऐसा होता नहीं। चाहे पदार्थ छोटे-से-छोटा हो अथवा बड़े-से-बड़ा हो। मन पदार्थानुसार छोटे से छोटा बन जाएगा एवं बड़े से बड़ा बन जाएगा। यही इसकी असीमता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इतना और समझ लेना चाहिए कि हमारा मन घट-पट-मठ-सूर्य्य-चन्द्रमा इत्यादि में से जिस पदार्थ को देख रहा है, वह उस मन की अपनी वस्तु है। बाहर का घड़ा, बाहर का हाथी–हमारे मन में घुस आया एवं हम उसे देख रहे हैं, यह बात कभी नहीं माननी चाहिए। पानी शीशी के आकार से तदाकाराकारित अवश्य होता है। परन्तु शीशी का हिस्सा–उस पानी में थोड़े ही घुस जाता है? ठीक इसी प्रकार प्रज्ञामन घट-सम्बन्धेन तदाकाराकारित हो गया है, न कि बाहर के घट की कोई वस्तु हमारे घटाकाराकारित मन में घुस गई है। यदि बाहर के पदार्थ हमारे मन में घुस जाते तो हम उन पदार्थों के बोझ से ही दब कर मर जाते। बाहर के पदार्थ हम में नहीं आते इसका इस से अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है? अपि च यदि बाहर के पदार्थों का अंश हमारे मन में आता तो कालावच्छेदेन पुरोवस्थित हाथी को दस हजार आदमियों के देखने से–गायब हो जाना पड़ता। अंशरूप से सारे मनुष्यों के मन में हाथी घुस पड़ता, बाहर उस का पता ही नहीं रहता। परन्तु हम देखते हैं कि दस हजार तो क्या यदि दो करोड़ भी देखते हैं तो उस का कुछ भी नहीं बिगड़ता। वह उतनी मात्रा में ही रहता है, जितनी मात्रा में--कि उन मनुष्यों द्वारा देखने से पहले था। अतएव मानना पड़ता है कि बाहर के पदार्थों का अंश हम में नहीं आता। हम जो हाथी-घोड़ा-सूर्य्य-चाँद देखते हैं वह मन का ही परिणाम है। मन का जहाँ हाथी से

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सम्बन्ध हुआ कि वह शीघ्र ही शीशी के पानी की तरह तदाकाराकारित हो जाता है। मन सर्वात्मना हाथी बन जाता है। इस हमारे मन के हाथी को हम देखा करते हैं। हम जब भी किसी वस्तु को देखते हैं, हमारे मन से बनी हुई वस्तु को ही देखते हैं। मन के द्वारा तदाकार रूपेण परिणत पदार्थ-समष्टि को—"अन्तर्जगत्" कहा जाता है एवं सत्तासिद्ध जो बाहर के घट-पटादि पदार्थ हैं, जिन्हें कि हम नहीं देखते, उनकी समष्टि बहिर्जगत् नाम से प्रसिद्ध है। यह अवश्य है कि हमारे अन्तर्जगत् का निर्माण बहिर्जगत् के आधार पर ही होता है। यदि बाहर घोड़ा-हाथी न हो तो—मन किस के आकार में परिणत हो ? परन्तु हम देखते हैं—हमारे अन्तर्जगत् को ही। अन्तर्जगत् के निर्म्माण में बहिर्जगत् कारण है, एवं प्रत्यक्ष के विषय में—अन्तर्जगत् कारण है। इस विषय का वितृत विवेचन—"संशयतदुच्छेदवाद" में देखना चाहिए।

मन जब हाथी से युक्त होता है तो तदाकाराकारित हो जाता है। उसी समय यदि पर्वत पर आँख चली जाती है तो मन घोड़े के आकार को छोड़ पर्वताकार में परिणत हो जाता है। इस से यह भी सिद्ध होता है कि मन असीम होने के साथ ही असंग भी है। मन के परिणाम विशेष को हमने रूप बतलाया है। इस परिणाम विशेष को भावाभावमूलक समझना चाहिए। मन, तदाकाराकारित हो जाता है—मन ही रूप का कारण है परन्तु इस रूप का कारण—केवल भावाभाव ही है। आँख मींच कर यहाँ किसी वस्तु पर हाथ का स्पर्श करते जाइए। जहाँ पर वस्तु की समाप्ति हो जाएगी वहीं हाथ एकदम नीचे खिसक जाएगा। इसी प्रकार जब आप उसके चारों ओर टटोल कर उस पदार्थ के अभाव का अनुभव कर लेंगे तो आपको—'इदमस्ति' का ज्ञान हो जाएगा। हम जो हाथी-घोड़े का रूप देखते हैं, वह हाथी-घोड़े के भाव और अभाव की समष्टि पर अवलम्बित है। यदि घोड़ा इतना बड़ा होता जिसकी कि कोई सीमा ही न रहती, जिस का अभाव ही न होता, तो घोड़े के रूप का पता ही न लगता। फिर तो सारा प्रपञ्च एक हो जाता। वस्तु का जो अभाव है—वही उस के रूप-प्रत्यक्ष का कारण है। नास्ति से अस्ति भाव का प्रत्यक्ष होता है। अतएव हम कह सकते हैं कि—भावाभावमूलक वस्तु-परिणाम-विशेष जो मानस-भाव है—उसी का नाम रूप है। हमारे भीतर जो मन

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नाम का एक पदार्थ है– वही घट-पट-मठ सूर्य्य-चन्द्र इत्यादि यच्चयावत् पदार्थों के रूप का अधिष्ठाता है। इसी अभिप्राय से भाष्यकार कहते हैं—

"तत्र मनसः परिणामविशेषो रूपम्" इति।

मन के अनन्तर तीसरा क्रम है—वाक् का। हमने बतलाया था कि नाम-रूप का ही जगत् में प्रत्यक्ष होता है। 'अस्ति'-नामरूपकर्म्म के अलावा भिन्न वस्तु नहीं है एवं साथ ही यह भी कहा था कि मन-प्राण-वाक् की समष्टि का नाम ही 'अस्ति' है। इससे संशय से नहीं पड़ जाना चाहिए। नाम-रूप-कर्म्म ये तीनों मन-प्राण-वाक् से पृथक् नहीं हैं। तीनों मन-प्राण-वाक् की अवस्था-विशेष का नाम है। अतएव जैसे हम मन-प्राण-वाक् समुच्चय को सत्ता कह सकते हैं, तद्वत् तीनों की अवस्थाविशेषस्वरूप नाम-रूप-कर्म्म की समष्टि को भी 'सत्ता' कह सकते हैं एवं मन-प्राण-वाक्-नाम-रूप-कर्म्म, इन छहों की समष्टि को भी सत्ता कह सकते हैं। उसमें जरा भी विरोध नहीं आता है। नाम-रूप-कर्म्म तीनों मन-प्राण-वाक् की अवस्थाविशेष मात्र हैं। इन में से रूप का मन के साथ सम्बन्ध है। नाम का वाक् के साथ सम्बन्ध है। कर्म्म का प्राण के साथ सम्बन्ध है। तीनों में से—रूप कैसे मन का परिणाम-विशेष है? यह बतला दिया गया है। रूप के बाद क्रम आता है—नाम का। इसी अभिप्राय का आगे स्पष्टीकरण किया जाता है।

वाक् की परिणाम विशेषावस्था का नाम ही—'नाम' है। देवदत्त-यज्ञदत्त-हाथी-घोड़ा-गाय-बैल-ऊँट-दवात-कलम-पुस्तक-कुर्सी-मेज-टेबल-मदरसा-पुस्तकालय इन्हीं को तो 'नाम' कहते हैं। इन नामों के सिवाय क-च-ट-त-प-स्वरूप-युक्ता वर्णात्मिका-वाक् के अलावा और है ही क्या? हमारी जो क-च-ट-त-प-स्वरूप-युक्ता वर्णात्मिका वाक् है—वही तो—देवदत्त, यज्ञदत्तादि-स्वरूप में परिणत होती है। सामने एक घड़ा रखा है, हमारा मन उस से युक्त होते ही तदाकाराकारित हो जाता है। बस, उस रूप के अनुसार हमारे मुँह से—उस रूप का घट-पट-इत्यादि नाम निकल पड़ता है। सिवाय क-च-ट-त-प-स्वरूप वाक् के परिणाम विशेष के, नाम और है ही क्या? वाक् का परिणामविशेष ही तो नाम है। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"वाचः परिणामविशेषो नाम ।"

ये नाम-रूप—उस बीच वाली प्राणप्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होते हैं। रूप और नाम वाच्य-वाचक हैं। वाचक की स्थिति वाच्य-अर्थ पर निर्भर है। नाम और रूप तीसरे आधार (प्रतिष्ठा) की अपेक्षा रखते हैं। नाम और रूप किसी स्थिर वस्तु के हुआ करते हैं। नाम और रूप किसी इतर वस्तु का हुआ करता है, जो कि नामरूप से भिन्न है। देवदत्त नाम है एवं रूप गोरा है—प्रश्न होता है कि देवदत्त नाम किसका है? एवं गोरा रूप किसका है? बस, जिसका यह नाम और रूप है—उसी का नाम प्राण है। उसी पर नामरूप रहते हैं, अतएव इस प्राण को हम नानारूप की प्रतिष्ठा कहने के लिए तय्यार हैं। यह प्राण ब्रह्मप्रतिष्ठा नाम से व्यवहृत होता है। जिसे हमने कर्म्म कहा था वह इसी नाम का परिणामविशेष है। क्रिया समष्टि का नाम द्रव्य है—इसी को पदार्थ कहते हैं। यह क्रियासमष्टि तब-तक नहीं बन सकती, जब-तक कि इस का आलम्बन कोई अपरिवर्त्तनीय तत्त्व न माना जाए। बस, उस अपरिवर्त्तनीय निजतत्त्व को ही हम 'प्राण' कहने के लिए तय्यार हैं। विश्व के प्रत्येक नाम-रूप-कर्म्म की प्रतिष्ठा वही प्राण है। सृष्टि से पहले भी यही रहता है एवं सृष्टि में भी यही रहता है। प्राण विश्वातीत तत्त्व है अतएव इसे हम—'अमृत' कहने के लिए तय्यार हैं। जिस में प्राण रहा करता है, उसे 'सत्' कहा जाता है। शरीर में जब-तक प्राण रहता है तब-तक शरीर सत् कहलाता है। "सामान्ये सामान्याभावः" इस नियम के अनुसार चूंकि प्राण में प्राण नहीं रहता अतएव इस प्राण को 'असत्' कहा जाता है। इसी असत् प्रतिष्ठा-प्राण को "ऋषि" शब्द से भी व्यवहृत किया जाता है, जैसा कि श्रुति कहती है—

"असद्वाऽइदमग्रऽआसीत्। तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वाव तेऽग्रेऽसदासीत्तदाहुः के तऽऋषय इति प्राणा वाऽऋषयस्ते यत्पुरास्मात्सर्वस्मादिदं (विश्वम्) इच्छन्तः श्रमेण तपसारिषंस्तस्मादृषयः।"

(शत० ब्रा०—६।१।१।१)

मन-प्राण-वाक् की समष्टि को नाम की सत्ता बतलाया गया है। इस सत्ता का नाम ही ब्रह्म है। इस सत्ताघन से—प्रतिष्ठा-ज्योति-यज्ञ ये तीन भाव

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रादुर्भूत होते हैं, जिनका विस्तृत-विवेचन पूर्व प्रकरण में कर दिया गया है। जो प्रतिष्ठा है—उसी का नाम— ब्रह्म है। भिद्यमान सत्ता का, विषयावच्छिन्न सत्ता का, नाम ही प्रतिष्ठा है। यह भिद्यमान प्रतिष्ठा—उस सत्यकृष्ण की रश्मियों से निर्मित प्रतिविम्बस्वरूप है। प्रतिष्ठा नाम ही वेद है। चूंकि रश्मियाँ अनन्त हैं—प्रत्येक रश्मि की एक-एक प्रतिष्ठा है एवं प्रतिष्ठा को ही कहते हैं—वेद अतएव—

"अनन्ता वै वेदाः" (तै० ब्रा० ३।१०।११।३)

यह कहा जाता है। इस वेद-प्रतिष्ठा पर ही— ऋक्-यजुः-सामात्मक अमृत प्राण हैं—ज्योति और यज्ञ की अर्थात् नामरूप की स्थिति है। अस्ति का नाम ही प्रतिष्ठा है। बस, जो है, उसी का तो नाम-रूप है। यदि वस्तु ही नहीं है, प्रतिष्ठा ही नहीं है, तो फिर नामरूप किस का? मन-प्राण-वाक्-नाम-रूप-कर्म्म का नाम सत्ता वतलाया जाता है। इन में से—मन-प्राण-वाक् ये तीनों तो अमृत पदार्थ हैं एवं नाम-रूप-कर्म्म मृत्यु हैं। मन-प्राण-वाक् नहीं बदलते—नाम-रूप-कर्म्म बदलता है। जो वस्तु नहीं बदलती उस का नाम—अमृत है, वही ब्रह्म कहलाता है एवं बदलने वाले तत्त्व का नाम मृत्यु है, उसे ही कर्म्म कहते हैं। मन-प्राण-वाक् की समष्टि का नाम प्रतिष्ठा है। इसी का नाम है—वेद। यह कभी नहीं बदलता अतएव इस प्रतिष्ठा-तत्त्व को अमृत शब्द से—ब्रह्म शब्द से—व्यवहृत किया जाता है। इसीलिए—"ब्रह्म वास्य सर्वस्य प्रतिष्ठा" यह कहा जाता है। नाम-रूप जगत के पहले जगत् की प्रतिष्ठा-स्वरूप वेदमय ब्रह्म प्रादुर्भूत होता है अतएव—"ब्रह्म वास्य सर्वस्य प्रथमजम्" यह कहा जाता है। मन-प्राण-वाक्, नाम-रूप-भेद से बदल जाते हैं। इसीलिए इस प्रतिष्ठा को—मन-प्राण-वाक् समष्टि को—कर्म्म शब्द से व्यवहृत कर दिया जाता है। यदि मन विषयों को छोड़ दे तो फिर वह वास्तव में ब्रह्म ही है। घड़ा है, सूर्य्य है, चाँद है, में जो मन-प्राण-वाक् स्वरूप है, वह सत्ता-प्रतिष्ठा है। वह स्वरूप से यद्यपि अमृत-स्वरूप ही है तथापि घट-पटादि विषयावच्छेदेन अनित्य हो रही है, नाना भाव में परिणत हो रही है। इसीलिए तो हम प्रतिष्ठा को—मन-प्राण-वाक् को—कर्म्म कहने के लिए तय्यार हैं। परन्तु विश्वास कीजिए—मन-प्राण-वाक् अमृत-भाग है; नाम-रूप-कर्म्म मर्त्यभाग है। एक ही

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

'है'—जब विषयावच्छेदेन नाना 'है' में परिणत हो जाता है तो वह प्रतिष्ठा कहलाने लगता है। भिद्यमान सत्ता का नाम ही प्रतिष्ठा है। इसी को अमृत कहते हैं। नाम-रूप की स्थिति इसी प्राणप्रतिष्ठा पर—अस्ति पर—होती है। यदि कोई पदार्थ है, तो उस का नाम और रूप भी है। चूंकि-वह 'है' प्रतिष्ठा नित्य है, नामरूप बदलते रहते हैं—'है' नहीं बदलता, अतएव हम इस अमृत-प्राण को—प्रतिष्ठा-वेद को—'अमृत' कहने के लिए तय्यार हैं। बस, इसी अभिप्राय से भाष्यकार कहते हैं—

"ते है ते नामरूपे प्राणे प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठिते।"

उस प्राण का ही नाम सत्ता है। मन-प्राण-वाक् समष्टि का नाम ही प्राण-प्रतिष्ठा है। इसी प्रतिष्ठा का नाम सत्ता है। नाम-रूप-कर्म्म इसी सत्ता के आधार पर रहते हैं। अतएव "सत्ताधायकत्वात्"—नामरूप भी सत्य कहलाने लगते हैं। 'अस्ति' इस प्रत्यय का जो कारण है, वही सत्य कहलाता है। अस्ति, इस सत्ता-व्यवहार के स्वरूपाधायक जैसे—मन-प्राण-वाक् हैं तद्वत् सत्ताव्यवहार के—अस्ति—इस व्यवहार के साक्षी, अस्ति इस प्रत्यय के मूल-कारण, नामरूप ही हैं। अतएव—'अस्तीति प्रत्यय हेतुः सत्यम्" इस लक्षण के अनुसार नाम-रूप को हम सत्य कहने के लिए तय्यार हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—

"सत्ताधायकत्वात् सत्यमित्याख्यायते—(नामरूपे)"

नामरूप सत्य है एवं ये नामरूप भिद्यमान सत्ता पर—अमृत प्राण प्रतिष्ठा पर—प्रतिष्ठित रहते हैं—इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"त्रयं वाऽइदं नामरूपंकर्म्म। तदेतत्त्रयं सदेकमयमात्मा। आत्मोऽएकः सन्नेतत्त्रयम्। तदेतदमृतं सत्येन छन्नम् प्राणो वाऽअमृतम् नामरूपे सत्यम्। ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः।"

(शतपथ ब्रा० १४।४।४।१-३)

श्रुति कहती है कि संसार की तरफ यदि दृष्टि डाली जाती है तो सिवाय नाम-रूप-कर्म्म के और कोई चौथी चीज दिखलाई ही नहीं पड़ती।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बस, इन तीनों की जो एक समष्टि है–उसी का नाम–'आत्मा' है। मन प्राण-वाक् के परिणाम–विशेष का ही तो नाम–नामरूपकर्म्म है जब ये तीनों एकत्र अपीत हो जाते हैं अर्थात् न जहाँ नाम रहता है–न रूप रहता है–न कर्म्म रहता है–सारा भेद गायबगुल्ला (तुरन्त विलीन) हो जाता है–उस अवस्था का नाम 'आत्मा' है। वह अवस्था–मन-प्राण-वाक् की समष्टि ही है जो कि सत्ता कहलाती है। "है" इसमें नाम-रूप-कर्म्म, तीनों डूब रहे हैं। "है" एक विकास-स्वरूप तत्त्व है। मन-प्राण-वाक् की समष्टि का नाम ही "है" है–एवं इस है का नाम ही–नामरूप-कर्म्म की समष्टि का नाम ही–कर्म्मात्मा है। इसीलिए–

"स वा एष आत्मा वाङ्मयो मनोमयः प्राणमयः"

(शतपथ १४।४।३।१०)

कहा जाता है। इसी अभिप्राय से—

"तदेतत् त्रयं सदेकमयमात्मा" यह कहा जाता है। "तदेतत् त्रयं" इत्यादि से श्रुति, ज्ञानपक्ष की ओर ध्यान दिलाती है। अनेक से एक की ओर जाना ही ज्ञान है एवं वही आत्मा अर्थात् मन-प्राण-वाक् संहति–नाम-रूप-कर्म्म में परिणत हो जाती है—

"आत्मो एकः सन्नेतत्त्रयम्" इससे, विज्ञान–पक्ष की ओर ध्यान दिलाया जाता है।

आगे जा कर श्रुति कहती है कि यह अमृत–तत्त्व अर्थात् प्रतिष्ठा-ब्रह्म-आत्मा, सत्य से ढका हुआ है। अमृतात्मा को सत्य ने ढक रखा है। प्राण ही तो अमृत है, जो प्रतिष्ठा-ब्रह्म है। अस्ति–अमृत-प्राण है, उसी का नाम अमृत है। वही प्राणवाङ्मनोमय आत्मा है एवं इस अमृत–सत्ता पर प्रतिष्ठित रहने वाले जो नामरूप हैं–वे भी सत्य हैं।

इन्हीं नामरूप सत्यों से यह अमृतप्राण मन–प्राण-वाङ्मय आत्मा ढका हुआ है।

"तदेतदमृतं सत्येन छन्नम्। प्राणो वा अमृतम्। नामरूपेसत्यम्। ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बात वास्तव में ठीक है। संसार के यच्चयावत् पदार्थों पर यदि हम दृष्टि डालते हैं तो हमें नाम-रूप का ही प्रत्यय होता है। रूप और नाम के अलावा, आप और देखते ही क्या हैं? देखें भी कैसे—जब कि इन दोनों से-वह तत्त्व ढका हुआ है। नामरूप ने ही उस आत्मा को छुपा रखा है। जगत् में सारे पदार्थों को गौर से देखने पर भी नाम-रूप के अलावा और कुछ नहीं दीखता। नाम-रूप को छोड़ दीजिए। घट-पट-मठ के घट-पटादि विशेषभावों को छोड़ दीजिए, भेद-बुद्धि को हटा दीजिए, अभी आत्मसाक्षात्कार हो जाएगा। बस, इसीलिए—

"तदेतदमृतं सत्येन छन्नम्"

यह कहा है। यह प्राणतत्त्व अर्थात् अमृत तत्त्व "है"—यद्यपि एक है, व्यापक है, अविनाशी है—तथापि अन्यान्य नामरूपों से—अन्य-अन्य स्वरूपों में परिणत हो जाता है। एक ही सत्ता—विषयस्वरूप-नामरूपों के आनन्त्य से अनेक स्वरूपों में परिणत हुई दिखलाई पड़ने लगती है। एक ही "है"—घट-पट-मठादि विषय-भेद से अन्यान्य स्वरूप धारण कर लेता है। घट का "है"-पट के "है" से भिन्न है। पट का अस्तित्व घट के अस्तित्व से भिन्न है। घड़ा फूट जाता है तो घट का अस्तित्व तिरोभूत होता है, न कि पट का। पट-विनाश से पट के अस्तित्व का तिरोभाव होता है—न कि घट का। इस भेद का एकमात्र कारण नाम-रूप-कर्म्म ही है। इतना होने पर भी हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि प्रातिस्विकरूपेण आत्मा एक ही है। वह समान-अमृतत्त्व ही अन्यान्य नामरूपों से—अन्य-अन्य स्वरूपों में परिणत दिखलाई पड़ता है। घड़ा है, कपड़ा है, सूर्य्य है, मठ है, घट है, मनुष्य है—में घट-पटादि सब भिन्न हैं। सब को नष्ट कर दो—अस्ति एक है। सर्वत्र—"है"—ही है; इसीलिए हम इसे अमृत कहने के लिए तय्यार हैं।

मिट्टी पर दृष्टि डालिए। इस समय मिट्टी का नाम-रूप कुछ और है। उसी मिट्टी का नामरूप बदल जाता है तो वह मिट्टी, लकड़ी कहलाने लगती है। लकड़ी—कोयला कहलाने लगती है, कोयला पानी कहलाने लगता है। इस प्रकार—अन्यान्य नाम-रूपों से वह एक ही अमृततत्त्व नाना भावों में

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

परिणत हो जाता है। यदि उन नानारूपात्मक विषयों को अलग कर दें, तो वह एक प्राणतत्व ही बच जाएगा। एकत्व का बाधक—नामरूप ही है। इसी अभिप्राय से भाष्यकार कहते हैं—

"समानं हीदं प्राणतत्त्वमन्यान्यैर्नामिरूपैरन्यदन्यदिवेहानुभूयते—घटः पटः इत्यादि"।

लोक—व्यवहार का, नाना-भाव का, एकमात्र कारण नामरूप—भेद ही है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"सर्वाणि रूपाणि विविच्यधीरो नामानि कृत्वाभिषदन् यदास्ते।"

संसार में जितने भी पदार्थ हैं—उन सब के रूपों को अलग छोड़ कर विद्वान् उन पदार्थों के रूपानुसार नाम रख कर संसार का व्यवहार चलाते हैं। अर्थात् नाम-रूप ही व्यवहार का कारण है। रूप-भेद से ही नाम-भेद होता है। स्वरूप से नाम-भेद हो जाता है। कर्म्म-भेद, रूप-भेद का कारण है—रूप-भेद, नाम-भेद का कारण है एवं नामरूप-भेद सत्ता-भेद का कारण है।

अमृतस्वरूप जो यह प्राण तत्त्व है—जिसे कि हमने आत्मा कहा है, वह उस नाम—रूप से ही—'अस्ति', इस प्रकार व्यवहृत होता है अर्थात् अस्ति इस व्यापार का कारण वह नामरूप ही है। यदि नामरूप न हो तो ससीमता हट जाए एवं असीमता आ जाए। असीम भाव के लिए—न 'अस्ति', कहा जा सकता है—न 'नास्ति' कहा जा सकता है। असीम—व्यापकत्व तो वाङ्मनसातीत है। हम जो अस्ति—अस्ति बोलते हैं, यह ससीम भाव पर निर्भर है। ससीमता नामरूप पर निर्भर है। अतएव हम कह सकते हैं कि अमृत-तत्त्व नामरूप से ही "अस्ति" कहलाने में समर्थ होता है। चूंकि सत्ताव्यवहार का साक्षी—यही नामरूपहै, अतएव—

"अस्तीति प्रत्यय—हेतुः सत्यम्"

इस लक्षण के अनुसार—इन तीनों की जो मिलितावस्था है उसें हम—"सत्य" कहने के लिए तय्यार हैं। 'इदमस्ति'—यह 'है'—इसी का तो नाम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सत्य है। मौजूदगी का नाम ही तो सत्य है। जो नहीं है-वह मिथ्या है। अस्ति-ही सत्य है। इस सत्यव्यवहार का कारण नाम-रूप-कर्म की समष्टि है। अतएव अवश्य इसे हम सत्य कह सकते हैं—

"अमृतं हीदं प्राण तत्त्वं तेन-तेन नामरूपेणैवास्तीति व्यपदिश्यते। तस्मादेतत्त्रितयमनुसंहितं सत्यम्।"

सर्वबलविशिष्ट रस का नाम परात्पर है। इस रस में सर्वप्रथम एक मायाबल प्रादुर्भूत होता है जो मायाबल अमित को मित बना डालता है-बस, इस मायावच्छिन्न रस का नाम ही "अव्यय-पुरुष" है। इस अव्यय-पुरुष में अक्षर और क्षर-ये प्रकृतियाँ भी शामिल रहती हैं। अक्षराक्षर विशिष्ट अर्थात् प्रकृतिविशिष्ट जो यह अव्यय-पुरुष है, वही प्रजापति नाम से व्यवहृत होता है। इस प्रजापति का जो सोलर सिस्टम है-जिसका कि नाम महिमा-मण्डल भी है-स्वयम्भूमण्डल नाम से व्यवहृत होता है। महिमा-विशिष्ट, क्षराक्षर-विशिष्ट, जो प्रजापति है-उसी का नाम ईश्वर है। यह ईश्वर ही अश्वत्थवृक्ष नाम से व्यवहृत होता है। इसी का वर्णन करती हुई श्रुति कहती है—

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किश्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्। (श्वेता उप० ३।६)

वही सत्य-कृष्ण ईश्वर भूः-भुवः-स्वः-महः-जनः-तपः-सत्यम्-इन सात लोकों में व्याप्त हो रहा है। इस अव्ययेश्वर अश्वत्थ वृक्ष की जो एक-एक टहनी है उस में स्वयम्भू-परमेष्ठी-सूर्य्य-चन्द्रमा और पृथिवी ये पाँचों मण्डल रहते हैं। पाँचों में जो स्वयम्भूमण्डल है, वह तो एक ही है। उसी का तो नाम ईश्वर है। इस एक स्वयम्भू के उदर में-अनन्तानन्त परमेष्ठी हैं। अनन्तानन्त-सूर्य्य हैं एवं अनन्तानन्त चन्द्रमा हैं, अनन्तानन्त पृथिवियाँ हैं परन्तु इतना अवश्य समझ लेना चाहिए कि स्वयम्भू के उदर में परमेष्ठी है। परमेष्ठी के उदर में सूर्य्य है। सूर्य्य के उदर में-पृथिवी है। पृथिवी के उदर में-चन्द्रमा है। उदर शब्द से सोलर-सिस्टम ही अभिप्रेत

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है। अव्ययेश्वर–ज्ञानघन–अन्तर्य्यामी की जो अनन्त किरणें हैं–उनमें से प्रत्येक किरण–जिसे कि अव्ययेश्वर को वृक्ष वतलाने के कारण वल्शा अर्थात् टहनी कहते हैं, उस (किरण) में परमेष्ठी–सूर्य्य–पृथिवी और चन्द्रमा, ये चार-मण्डल हैं। चूंकि यह रश्मि उस स्वयम्भू प्रजापति से वद्ध रहती है अतएव इस टहनी को–पञ्चपुण्डीरा प्राजापत्य वल्शा (शाखा) कह दिया जाता है। ऐसी–ऐसी अनन्त वल्शाएँ उस स्वयम्भू भगवान् के उदर में स्थित हैं। हमारा सम्बन्ध केवल एक वल्शा से है–एक टहनी से है–जिस टहनी में कि स्वयम्भू–परमेष्ठी–सूर्य्य–चन्द्रमा और पृथिवी ये पाँच मण्डल हैं। इन पाँचों में–जो सूर्य्य से ऊपर का भाग है–वह परार्द्ध–ब्रह्म एवं सूर्य्य से नीचे का भाग अपरार्द्ध–ब्रह्म कहलाता है। परार्द्ध–ब्रह्म ही अमृत-ब्रह्म कहलाता है–अपरार्द्धब्रह्म–मर्त्यब्रह्म कहलाता है। सूर्य्य से नीचे–जितनी भी वस्तुएँ हैं–सब मर्त्य हैं, विनाशी हैं। लकड़ी को जला दो–उसी समय लकड़ी का स्वरूप नष्ट हो जाएगा–कोयला उत्पन्न हो जाएगा। कोयले को जला दो, कोयला नष्ट हो जाएगा–वानी (राख) रह जाएगी। कहने का तात्पर्य्य यही है कि सूर्य्य से अर्वाक् जितने भी पदार्थ हैं–सब मर्त्य हैं। सूर्य्य ही अमृत–मृत्यु का विभाजक है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"सा या सा वागसौ स आदित्यः। स एष मृत्युस्तद्यत्किंचार्वाचीनमादित्यात् सर्वं तन्मृत्युनाप्तम्।" इति

(शतपथ १०।५।१।४)

जिस का आत्मा सूर्य्य–भेदन कर सूर्य्य से ऊपर अशोक-महिम नाम के पारमेष्ठ्य–लोक में चला जाता है–वह मृत्यु से अतिमुक्त हो जाता है। यद्यपि अमृत और मृत्यु दोनों ही ब्रह्म के स्वरूप हैं तथापि प्रधान भाग अमृत का ही माना जाता है। जो मृत्यु है, वह विश्व है; अमृत विश्वातीत है–परार्द्ध है–वही सत्य है। जो भूत–भविष्यत्-वर्तमान, तीनों कालों में रहता है वही वास्तविक सत्य है। मृत्यु तो इस सत्य की अपेक्षा से सत्य है, वास्तविक सत्य तो परार्द्ध–ब्रह्म अर्थात् अमृत–ब्रह्म ही है। इसी का नाम अव्यय-प्रजापति है। यही सत्य, सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। परात्पर, सत्य नहीं कहला सकता। सत्य उसे कहते हैं–जिसमें सत्ता हो। सत्ता मन-प्राण-वाक् का नाम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है। मन-प्राण-वाक् ससीमता की अपेक्षा रखते हैं एवं परात्पर है—असीम, इसीलिए परात्पर को हम सत्य नहीं कह सकते। सत्य नहीं कह सकते—इस का तात्पर्य्य यह नहीं है कि वह मिथ्या है। नहीं, सत्य नहीं कहने का तात्पर्य्य यही है कि वह अनिर्वचनीय है। वह सत्य है कि ऋत है, इस का पता हमें नहीं है। वह तो 'अतीतः पन्थानं' है। उस का सत्य से या ऋत् से निर्वचन क्यों कर किया जा सकता है? कहने का तात्पर्य्य यही है कि वह जो परार्द्ध—ब्रह्म है अर्थात् अमृत-स्वरूप स्वयम्भू—ब्रह्म है—जो कि सर्वत्र व्याप्त हो रहा है—वही सत्य ब्रह्म है। जिस का भान होता है उसे शुक्ल कहा जाता है। विश्व का भान होता है अतएव विश्व को शुक्ल कहा जाता है परन्तु वह सत्यामृत तत्त्व नाम-रूप से ढँका हुआ है अतएव प्रच्छन्न है। जो प्रच्छन्न होता है उसे ही कृष्ण कहा जाता है। इसीलिए परार्द्ध अमृत—सत्य को हम "कृष्ण" कहने के लिए तय्यार हैं। जो अँधेरा है—वही मूल तत्त्व है। अँधेरे से उजाला पैदा होता है। अँधेरा सर्वव्यापी तत्त्व है। इसीलिए अन्धकार को जानने के लिए कोशिश नहीं करनी पड़ती। प्रकाश के लिए दीपक की जरूरत होती है किन्तु अन्धकार के लिए किसी की आवश्यकता नहीं, यही सत्य है। विश्व आज है, कल नष्ट हो जाएगा परन्तु यह कृष्णतत्त्व सदा ज्यों—का—त्यों ही बना रहता है अतएव विश्वातीत अथच परार्द्ध नाम से व्यवहृत इस कृष्ण को हम सत्यब्रह्म कहने के लिए तय्यार हैं। यही कृष्ण—इस विश्व—शुक्ल का कारण है। विश्व, कार्य है—यह परार्द्ध सत्य-ब्रह्म कारण है।

इसी अभिप्राय को लक्ष्य में रख कर भाष्यकार कहते हैं—

"परार्द्धं हीदं सत्यं—ब्रह्म।"

बस, इस सत्य—कृष्ण का अपने से नीचे परमेष्ठी आदि लोकों में भिन्न—भिन्न रूप से अपनी स्थिति कायम करने का नाम ही अवतार है। अवतार नाम है—उतरने का। वह एक ही सत्य—परमेष्ठी-सूर्य्य-चन्द्र-जीवात्मादि अनन्तानन्त पदार्थों में उस स्वयम्भू में से आ कर विराजमान हो रहा है। यह सत्य, ईश्वर और जीव भेदेन अपनी दो संस्थाएँ कायम कर लेता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जो स्वयम्भू प्रजापति है, वही तो अवतारी कहलाता है। वही मुख्य सत्य है एवं ये सारे जीव उसी सत्य के अवतार हैं। विश्व में उसी सत्य के अवतार भरे हुए हैं। इसीलिए भगवान् कहते हैं—

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।" (गीता १५।७)

घट–पट–शरीर–सूर्य्य–चन्द्र इत्यादि यच्चयावत् पदार्थ उसी सत्य के अवतार हैं। वही सत्य–स्वयम्भू, अन्तर्यामी, प्रजापति,–यच्चयावत् पदार्थों के केन्द्र में बैठा हुआ है इसीलिए तो–**प्रजापतिश्चरति गर्भे"** (यजुः ३१।१६) एवं **"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"** (गीता १८।६१) यह कहा जाता है–

"तस्यैतस्या वरस्मिन् लोके भिन्न–भिन्न रूपेणावस्थानमवतारः।

सर्वव्यापक इस सत्यकृष्ण की यत्किञ्चिदवच्छेदेन–उस व्यापक-भाव से पार्थक्येन जो उपलब्धि है, उसी का नाम अवतार है। एक ही व्यापक सत्य जब पृथक्त्वेन मनुष्यादि रूपेण उपलब्ध हो जाता है तो हम उस उपलब्ध सत्य को अवतार कहने के लिए तय्यार हैं। क्योंकि वही सत्य तो उसमें उतरा है। जो सत्य, अवतार बनता है–उस अवतारी सत्य–कृष्ण का स्वरूप बतला दिया गया। जिस का अवतार होता है–उस कारण–ब्रह्म का स्वरूप बतला दिया गया। वह कारण–सत्य किन-किन अवतारों को धारण करता है, हमें अब यही बतलाना है। आगे के प्रकरणों में इन अवतारों का स्वरूप ही बतलाया जाएगा।

इस सत्यकृष्ण की ही उपासना करनी चाहिए। सत्यकृष्ण व्यापक है। जिधर देखो उधर वही वह तो है। सूर्य्य–चन्द्र–गृह–नक्षत्र–आकाश–जमीन–गाय–बैल–पशु–पक्षी–मनुष्य–देवता–गन्धर्व–यक्ष–किन्नर इत्यादि यच्चयावत् प्राणि–मात्र सत्य–स्वरूप ही तो हैं। अखिल–ब्रह्माण्ड सत्यस्वरूप ही है। बस, इस प्रकार सारे ब्रह्माण्ड को सत्य समझना–त्रैलोक्य में व्याप्त यच्चयावत् पदार्थों को सत्य समझना–यही उस सत्य–कृष्ण की सच्ची उपासना है अर्थात् संसार को–विश्व को–परमेश्वर समझना–किसी से भी द्रोह

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

न करना–यही सच्ची कृष्णोपासना है। यदि मनुष्य किसी को गाली देता है–तो समझ लो वह कृष्ण-भक्त नहीं है, क्योंकि जिस को गाली दे रहा है, वह भी तो सत्य ही है। उसको गाली देना, उस से द्रोह करना–अपने उपास्य देव को गाली देना है, उपास्यदेव से द्रोह करना है। जब कि तुम वास्तव में सत्य के उपासक हो तो सारे विश्व को सत्य समझो। किसी से द्रोह न करो। विश्वहितचिन्तक बनो। सारे प्रपञ्च को सत्य समझ कर उसकी सेवा करो। यही उस विश्वात्मा सत्यभगवान् की, सत्य-कृष्ण की, सच्ची उपासना है।

मनसावाचाकर्म्मणा–सदा सत्य को ही आत्मसात् किए रहो। कभी मिथ्या मत बनो। सत्य भावना रखो, सत्य बोलो। विश्व को सत्य समझ कर उससे प्रेम करो–विश्व की सेवा करो एवं सदा सत्य बोलो। मनसा-वाचाकर्म्मणा सत्य से कभी, किसी भी तरह,–हजार आपत्तियाँ आने पर भी मत डिगो। यही सच्ची कृष्णोपासना है। जो त्रैलोक्य में–प्रत्येक दिशा में सर्वत्र सत्य ही सत्य के दर्शन करता है, जो मनसि-वचसि और क्रिया-रूप तीनों में उस सत्य-कृष्ण को ही प्रतिष्ठित रखता है–उसी को सत्यकृष्ण का सच्चा भक्त समझना चाहिए। जो ठाकुर जी के नाम से माल उड़ाने की चिन्ता किया करता है, जो द्रव्योपार्जन हेतु भगवान् की उपासना करता है–वह उपासना नहीं करता–उपासना का ढोंग रचता है। वह तो भोग्य पदार्थों का उपासक है, द्रव्य का उपासक है–न कि कृष्ण का। ऐसे उपासक को जो कि केवल उदराम्भरि है, मिथ्योपासक समझना चाहिए—

"त्रैलोक्ये दिशि-दिशि सत्यमीक्षते यस्तद्धत्तो मनसिवचस्यपि क्रियायाम्। तं विद्यादिह खलु सत्यकृष्ण भक्तं मिथ्योपासक उदराम्भरिः स योऽन्यः।

कितने ही विद्वान् पूर्वोक्त लक्षणोपेता उपासना को ही उपासना समझते हैं। परन्तु हमारे खयाल से वे भूल कर रहे हैं। उनको समझ लेना चाहिए कि वह अन्तर्य्यामी भगवान् ही सर्वत्र विभूत हो रहा है। वही सत्य सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। आप कहते हैं–द्रोह नहीं करना चाहिए–ढोंग नहीं करना चाहिए। हम कहते हैं–क्यों? द्रोह सत्य नहीं है?–ढोंग सत्य नहीं है?

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यदि कहो, नहीं; तो फिर सत्य–तत्त्व आपके मतानुसार व्यापक नहीं हुआ। वाह-वाह ! कैसा वदतोव्याघात है ? सारा प्रपञ्च सत्यमय है परन्तु द्रोह-सत्य नहीं है–भला, सत्य के विषय में, जो कि व्यापक है, कभी यह कहा जा सकता है कि वह असत्य है ? हर्गिज नहीं। गला काटना भी सत्य है, तलवार भी सत्य है–गला भी सत्य है। क्या सत्य से सत्य कट सकता है ? भगवान् स्पष्ट ही इस सत्य के लिए–"नायं हन्ति न हन्यते" यह कह रहे हैं। इस सत्य से खाली कोई भी पदार्थ नहीं है। कहीं भी, कभी भी सत्य का व्यभिचार नहीं है। हमारे हिसाब से सारा विश्व ही इस सत्य का उपासक है। भगवान् कृष्ण की उपासना कौन नहीं करता ?–सब करते हैं—

"इत्याहुः कति च न किन्तु तत्रमन्येऽन्तर्य्यामी विभवति विश्वतः स सत्यः। सत्यान्नव्यभिचरति वृथापि कश्चित् सत्योपासक उदितोऽखिलोऽपि-लोकः।"

॥ इति सत्यकृष्ण रहस्यं समाप्तम् ॥

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ग्रन्थ प्राप्ति :-

कृष्णचन्द्र शर्म्मा,
"मानवाश्रम विद्यापीठ"
दुर्गापुरा रोड, जयपुर-३०२०१५

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji